ऋग्वेद

[प्रथम—खण्ड]

(सायण-भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित)

सम्पादक:

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन, योग वशिष्ठ,
२० स्मृतियाँ, व १८ पुराणों
के प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

...ेली २४३००१ (उ०प्र०)

भूमिका

'वेद ही समस्त धर्मों का मूल है'– यह घोषणा अब से हजारो वर्ष पहले ऋषि महर्षियो ने की थी और आज सब प्रकार की वैज्ञानिक उन्नति कर लेने पर भी हम उस प्राचीन सत्य से इन्कार नही कर सकते। वेदो का ज्ञान नित्य है और उसे ईश्वरीय प्रेरणा से उन ज्ञानी जनो ने प्रकट किया है जो काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि पर पूर्ण विजय प्राप्त करके मनुष्य मात्र को आत्मवत देखते थे और इसलिये जो कुछ वे कहते थे उसमे मानवमात्र ही नही, समस्त सृष्टि के कल्याण और सुख की भावना सन्निहित रहती थी। उन्होने जो उपदेश दिये हैं, जीवन का जो मार्ग प्रदर्शित किया है, आचार-विचार व्यवहार के जो नियम बतलाये हैं, वे सब त्रिकालबाधित सत्य सिद्धान्तो पर आधारित है। उन्होंने समाज और व्यक्तियों के आचरण और पारस्परिक सम्बन्धों के लिये जो विधान बनाया है, उसके मूल तत्व अपरिवर्तनीय है और जब कभी मनुष्य उन तत्वो से दूर हटता है अथवा उनके विपरीत चलने लगता है, तभी ससार के ऊपर कष्ट और नाश की काली घटायें छा जाती हैं। वेदो के नियम स्वाभाविक और प्राकृतिक हैं, और वे पूर्णतया परमात्मा के आदेशो के आधार पर निश्चित किये गये हैं, इसलिये वे किसी भी दशा मे मनुष्य के लिए हानिप्रद सिद्ध नही होते। इसके विपरीत जो धर्म-ग्रन्थ या धर्म प्रचारक केवल अपने समुदाय या समाज के हित का ध्यान रखकर उपदेश देते हैं और नियम बनाते हैं, उनमे स्वार्थ की भावना किसी न किसी रूप मे सन्निहित हो जाती है और उसका अन्तिम परिणाम राग द्वेष की उत्पत्ति होना है जिसमे लोगों को कष्ट सहन करना पडता है। कहना नही होगा कि ससार के अन्य सभी धर्म एक-एक विशेष सम्प्रदाय या समुदाय के हितो की दृष्टि से बनाये गये हैं, इसलिये मनुष्य मात्र के लिये एक समान उपयोगी सिद्ध नही हो

सकते। इतना ही नहीं उनके द्वारा प्रायः बड़े-बड़े वैमनस्यों और कलह की उत्पत्ति होते हुए भी हम देख चुके हैं। पर वेदों में कहीं एक विशेष धर्म या सम्प्रदाय को दृष्टिगोचर रखकर उपदेश नहीं दिया गया है, वरन् स्थान स्थान पर प्राणीमात्र के कल्याण और हित-साधन का ही उपदेश दिया है। यही कारण है कि वेद अनादिकाल से एक ही रूप में चले आए हैं और उनकी शिक्षायें निरन्तर एक-सी कल्याणकारी रही हैं।

पर यह देखकर प्रत्येक धर्माभिमानी के मन मे एक प्रकार के खेद का भाव उदय होगा कि इतना महत्वपूर्ण होने पर भी वेद का प्रचार नाम मात्र को ही है। ईसाइयों की "बाईबिल" की प्रतिवर्ष कई करोड़ प्रतियाँ बिक जाती हैं और ससार की डेढ़-दो सौ भाषाओं में उनके अनुवाद करके घोर जङ्गलो तथा बर्फिस्तानों और रेगिस्तानों के मुट्ठी भर निवासियों तक उसका सन्देश पहुँचाया जा रहा है। कुरान का प्रचार भी कम नहीं है और प्रत्येक धार्मिक मुसलमान अपना यह कर्तव्य समझता है कि कुरान को नित्य पढ़े और उसे पास रखे। एक लेखक ने तो लिखा है कि कुरान के ऊपर गीता से भी अधिक संख्या में भाष्य हो चुके हैं। कुरान का अनुवाद भी ससार की समस्त प्रमुख भाषाओं में हो चुका है और उसका सर्वत्र प्रचार है। पर वेदो के सम्बन्ध मे हमको संकोच पूर्वक स्वीकार करना पड़ता है कि उनका जैसा होना चाहिये वैसा प्रचार तो दूर रहा, अधिकांश हिन्दुओं ने आज तक वेदों के दर्शन भी नहीं किये। विदेशी लेखकों ने वेदों पर किसी जमाने में बड़ी खोज-बीन की थी, पर सब आलोचनात्मक साहित्य है। इनमे से अनेक लेखकों ने वेदों के अर्थ का अनर्थ करके उनको बदनाम करने की चेष्टा की है। हम विदेशी और विधर्मी लोगों से यह आशा भी नहीं कर सकते कि वे धार्मिक श्रद्धा के साथ वेदों का [illegible] पाठ करेंगे। उन्होंने किसी भी [illegible] "बी [illegible] ससार" में फैला दिया अ [illegible] न कर

किया, इतना ही उनके लिए बहुत है और वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। पर प्रश्न तो यह है कि वेदों की संरक्षता के नीचे पले हुए हम हिन्दुओं ने उनके प्रचारार्थ क्या किया ? यह सत्य है कि वेद की मूल संहिताएँ कई जगह छप चुकी हैं और पूरा या अधूरा हिन्दी अनुवाद भी दो-चार जगह से प्रकाशित किया गया है, पर इनमें से अधिकांश पुस्तकें बीसियों वर्षों तक रहकर अब अप्राप्य हो चुकी हैं। न उनके प्रचार का यथोचित उद्योग किया गया और न पुनर्मुद्रण की कोई व्यवस्था हो सकी। पुस्तकालयों में भी जहां जो पुस्तक पड़ी है उसे शायद ही कभी कोई खोलकर देखता हो। इस दुरवस्था का मात्र कारण यही है कि न तो जनता को ही किसी ने वेदों का महत्त्व ठीक ढङ्ग से समझाने का प्रयत्न किया और न उनको सुलभ रूप में उनके पास पहुंचाने की व्यवस्था की गई। इसलिये सब प्रकार से मनुष्यमात्र के लिये बहुमूल्य और कल्याणकारी होने पर भी वेद एक छिपे हुए खजाने की तरह अभी तक अधिकांश में अज्ञात जैसे अवस्था में पड़े हुए हैं।

वेदों का भाष्य—

इसमें सन्देह नहीं कि उपर्युक्त अवस्था का एक कारण वेदों के अर्थ की दुरूहता और उसके सम्बन्ध में फैला हुआ मतभेद भी है। आज की बात छोड़ दीजिये, हजारों वर्ष पूर्व भी विद्वानों में वेदार्थ के विषय में वाद विवाद हुआ करता था और उनके सम्बन्ध में कई प्रकार के मत प्रचलित थे। सांख्य योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा आदि सभी दर्शन शास्त्रों में वेद के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये हैं। कोई उनके ज्ञान को ही नित्य मानता है और कोई शब्दों को भी नित्य कहतो है। मीमांसा दर्शन के कर्ता जैमिनि ने तो वेदों के प्रत्येक शब्द और उनके अर्थ को अनादि और अटल रूप से निश्चित बतलाया है।

यही कारण है कि अब वेदों पर अनेक भाष्य किये गये हैं और उनमें काफी मतभेद हैं। प्राचीन ग्रन्थों में स्कन्द, भास्कर मिश्र, भरत स्वामी, वेंकट माधव, उद्गीथ स्कन्द स्वामी नारायण, रावण, मुद्गल

महीधर उव्वट आदि कितने ही भाष्यकारों के भाष्य मिलते हैं। पर न तो उनके कोई प्रामाणिक ग्रन्थ मिलते हैं और न यही कहा जा सकता है कि उन्होंने चारों वेदों पर विस्तारपूर्वक भाष्य किया था। ऐसी दशा में प्राचीन समय के विद्वानों में केवल एक सायणाचार्य ही ऐसे हैं जिनके चारों वेदों के भाष्य पूर्णरूप में मिल सके हैं और जिनका आधार लेकर ही देश-विदेश के विद्वानों ने आधुनिक वेद सम्बन्धी साहित्य की रचना की है। सायण भाष्य पर्याप्त विस्तृत है और उसमें सर्वत्र प्राचीन परम्परा के अनुकूल अर्थ किया गया है। वेदों के प्राचीन भाष्यकार स्कन्द स्वामी, भट्ट भास्कर आदि के मत का भी उन्होंने ध्यान रखा है और बीच में उनके भाष्यों से अपने भाष्य का समर्थन किया है।

आजकल कुछ लोग यह आक्षेप करने लगे हैं कि सायण को वेदार्थ की कुन्जी-स्वरूप पानिनी के अष्टाध्यायी और यास्क के निरुक्त आदि का ज्ञान न था और इसलिये उन्होंने केवल पौराणिक कथाओं के अनुकूल ही वेद-भाष्य कर दिया है। पर यह विचार निराधार है। अभी हाल में आर्य समाज के एक मानवीय विद्वान तथा नेता पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय ने अपनी "सायण और दयानन्द" नामक पुस्तक में इस विषय पर विचार करते हुए लिखा है—

"साधारण आर्यसमाजी समझता है कि सायणाचार्य पानिनी की अष्टाध्यायी और यास्क के निरुक्त से परिचित नहीं थे और न उन्होंने वेद-भाष्य का आधार इन प्राचीन ग्रन्थों को माना है। उन्होंने केवल पौराणिक आख्यायिकाओं के आधार पर ही मन्त्रों का भाष्य कर दिया है। पर जिन्होंने सायण के भाष्य का अवलोकन किया है वे जानते हैं कि सर्व साधारण की यह धारणा निराधार है। सायण के भाष्य में पाणिनि के सूत्रों तथा यास्क के वचनों की भरमार है। सायण की इन प्राचीन मौलिक ग्रन्थों पर श्रद्धा है। इस विषय में सायण भाष्य में वेद के समझने के लिए पर्याप्त सामग्री विद्यमान है।

वेदार्थ की शैली—

हमने अपने इस संस्करण मे वेद मन्त्रो का जो संक्षिप्त अर्थ दिया है वह सायण भाष्य के आधार पर ही है। सायण ने सर्व साधारण के समझने लायक अधिकांश मन्त्रो का अर्थ आदिभौतिक दृष्टि से ही किया है क्योंकि बहुसंख्यक जनता द्वारा वेदो का उपयोग विविध प्रकार के काम्य यज्ञो के लिए ही होने लगा था और लोग उसी आधिभौतिक दृष्टि से किये गये अर्थ को स्वाभाविक मानने लगे थे तो भी सायण ने जहां उचित प्रसङ्ग समझा है, वहां मन्त्रों का अर्थ आधिदैविक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी किया है। हमने भी यथाशक्ति इसी शैली का अनुसरण किया है और आशा है कि इसके द्वारा पाठकों को वेद मन्त्रों के स्थूल अर्थ का सामान्य बोध हो सकेगा।

इसके साथ ही हम यह भी कह देना चाहते हैं कि वेदार्थ अत्यन्त गूढ़ विषय है और वह इतने संक्षेप में स्पष्ट रूप से कदापि प्रकट नहीं किया जा सकता। वेद के अधिकांश मन्त्रो के आदिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक अर्थ होते हैं जिनको हम स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप भी कह सकते है। स्थूल मे बाह्य क्रियाकाण्ड, पूजा, उपासना, प्रार्थना, भिक्षा आदि का समावेश होता है। सूक्ष्म से प्रत्येक पदार्थ या कार्य के वैज्ञानिक रहस्य प्रकट होते हैं और उनकी शक्ति रूप मे परिणत करके सांसारिक उन्नति के नये-नये मार्गों का ज्ञान होता है। तीसरा कारण रूप अर्थ सबसे अधिक गूढ़ है, क्योंकि बिना आत्मज्ञान के वह भली प्रकार हृदयङ्गम नही हो सकता। हर तरह के शाप, वरदान अणिमा महिमा, लघिमा आदि अष्ट सिद्धियां इत्यादि कारण शक्ति के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार वेदार्थ का जितना अधिक विस्तार किया जायेगा, उतने ही उसके नये-नये और गूढ़ रहस्य प्रकाशित होते चले जायेंगे। पर प्रस्तुत ग्रन्थ मे इसके लिए कोई साधन नही है। अत्यन्त संक्षिप्त भावार्थ देने पर भी वह चार हजार पृष्ठ के लगभग हो गया है। यदि वेद मन्त्रों के आधिदैविक और आध्यात्मिक दृष्टि से अर्थ किए जायें और उनका

विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण किया जाय तो इसके दस, बीस पृष्ठ भी पर्याप्त नहीं हो सकता। यदि पाठकों ने इस प्रथम प्रयत्न को सराहा और इससे लाभ उठाया तो समय आने पर विस्तृत भाष्य प्रस्तुत करने का भी प्रयत्न किया जायेगा।

वैदिक स्वर चिन्ह—

वेदों की ऋचाओं में अक्षरों के ऊपर और नीचे कई प्रकार की खड़ी और आड़ी रेखायें देकर उनके अनुसार उन अक्षरों के उच्च मध्यम और मन्द स्वर में बोलने के नियम बनाये गये हैं, इनको "स्वर" कहा जाता है। इनके मुख्य तीन भेद तीन माने हैं, अर्थात् उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित। पर इनमें से भी प्रत्येक स्वर अधिक अथवा न्यून रूप में बोला जा सकता है, इसलिये प्रत्येक के दो भेद हो जाते हैं, जैसे उदात्त, उदात्ततर, अनुदात्त, अनुदात्ततर, स्वरित स्वरितोदात्त। इनके अतिरिक्त एक स्वर और माना गया है 'एक श्रुति' जिसमें तीनों का तिरोभाव हो जाता है। इस प्रकार सब मिलाकर सात स्वर माने गये हैं। इसकी व्याख्या महाभाष्यकार महामुनि पतंजलि ने इस प्रकार की है—

"स्वयं राजन्त इति स्वरा। आयामो दारुण्यमणुता खस्येत्युच्चैः कराणि शब्दस्य। आयामो गात्राणां निग्रहः दारुण्यं स्वरस्य दारुणता रूक्षता अणुता कण्ठस्य संवृतता, उच्चैः कराणि शब्दस्य।

'अन्ववसर्गो गात्राणां शिथिलता, मार्दवं स्वरस्य मृदुता, स्निग्धता, उरुता खस्य महत्ता कण्ठस्येति नीचैः कराणि शब्दस्य।

त्रैस्वर्येणाधीमहे, त्रिप्रकारैरज्भिरधीमहे, कैश्चिदुदात्तगुणैः, कैश्चिदनुदात्तगुणैः, कैश्चिदुभयगुणैः। तद्यथा शुक्लगुण, शुक्लः कृष्ण-[illegible] य इदानीमुभयगुण. स तृतीयामाख्यां लभते, कल्माष इति वा [illegible] वा।"

[illegible] जो बिना दूसरे की सहायता के स्वयं ही प्रकाशमान [illegible] स्वर कहे जाते हैं। अङ्गों का रोकना या वाणी को

ये सब बातें शब्द के 'उदात्त" करने वाली हैं अर्थात उदात्त स्वर इन्हीं नियमो के अनुकूल बोला जाता है।

"शरीर के अङ्गो या गात्रो का ढीला पन, स्वर की कोमलता, कण्ठ को फैला देना यह सब बातें शब्द को अनुदात्त' करने वाली है। इस प्रकार हम सब तीन प्रकार के स्वरो मे बोलते हैं,अर्थात कहीं उदात्त,कहीं अनुदात्त और कहीं उदात्तानुदात्त अर्थात स्वरित। जैसे श्वेत और काले रङ्ग अलग होते हैं, परन्तु इन दोनो को मिला देने से जो रङ्ग पैदा होता है, उसका नाम तीसरा ही होता है अर्थात खाकी अथवा आसमानी। इसी प्रकार उदात्त और अनुदात्त के गुण अलग-अलग हैं पर इन दोनो के मिला देने से एक तीसरा ही स्वर पैदा हो जाता है,

"एक श्रुति" मे भी उदात्त और अनुदात्त दोनो का सम्मिश्रण होता है,इसलिये 'स्वरित" और "एक श्रुति" का भेद करने मे कठिनाई पड़ती है। इस सम्बन्ध मे प्राचीन व्याख्याकारो ने यह मत प्रकट किया है कि 'स्वरित' मे उदात्त और अनुदात्त का सम्मिश्रण इस प्रकार होता है जैसे काठ और लाख का जोड़। ये दोनो एक जान पड़ने पर भी अलग अलग दिखलाये जा सकते हैं और अनुभव किये जा सकते है। पर एक श्रुति मे दोनो प्रकार के स्वरो का मेल इस प्रकार होता है जैसे दूध और पानी का, जिनको न अलग अलग किया जा सकता है और न अनुभव मे लाया जा सकता है।

इन सात भेदो मे भी एक दूसरे का सयोग होने से कई प्रकार के भेद पैदा होते है, जिसके लिये स्वर चिन्हो मे पुनः परिवर्तन किया जाता है।

'स्वरित के ही नौ भेद बतलाये है —

(१) सहितज, (२) जात्य, (३) अभिनिहित, (४) क्षैप्र, (५) प्रश्लिष्ट, (६) तैरोव्यञ्जन, (७) वैवृत्त अथवा पादवृत्त, (८) तैरोविराम, (९) प्रतिहित।

कई प्राचीक ग्रन्थो मे स्वरो के अठारह भेद लिखे हैं और कहते हैं कि आरम्भिक काल मे लोग उन सबका स्पष्ट उच्चारण कर लेते थे। पर जैसे-जैसे लोगों के रहन-सहन मे कृत्रिमता आती गई और उनका खान पान प्राकृतिक फल, मूल आदि के बजाय तरह तरह के स्वादिष्ट व्यजन और पकवान होने लगे, वैसे-वैसे ही उनके कण्ट स्वर में भी परिवर्तन होने लगा। इनके फल से विभिन्न प्रकार की सूक्ष्म ध्वनियों के निकालने मे उनको कठिनाइ होने लगी। तब स्वरो की सख्या सात करदी गयी। फिर जब इनका उच्चारण भी लोग ठीक-ठीक करने मे असमर्थ हो गये तब स्वर संख्या घटाते-घटाते तीन ही रह गई। पर वर्तमान समय में इनको भी शुद्ध रूप मे उच्चारण कर सकें, ऐसे वेदपाठी इने-गिने रह गये है। इसलिये अब हाथ को ऊपर नीचे करके ही स्वरो का बोध कराया जाता है।

स्वरो के लिए जिन चिन्हों का प्रयोग किया जाता है, उनके सम्बन्ध में भी बडा मतभेद दृष्टिगोचर होता है। साधारणतया अनुदात के लिये अक्षर के नीचे आडी लकीर देने तथा स्वरित के लिए अक्षर के ऊपर खडी रेखा बनाने का नियम है, उदात्त का कोई चिन्ह नहीं उसका इन्ही दो स्वरो के आधार पर उच्चारण किया जाता है। पर ये चिन्ह भी प्रत्येक स्थान मे एक से नही हैं। भिन्न-भिन्न वैदिक शाखा वालो ने उसमे बड़ा अन्तर कर रखा है। जिसमें साधारण पाठक को बडा भ्रम हो जाता है। इस विषय मे स्वर शास्त्र की खोज करने वाले एक विद्वान श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने अपनी पुस्तक में लिखा है:—

"वैदिक वाङ्‌मय के जितने ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उनमे उदात्त अनुदात और स्वरित स्वरो का अङ्कन सकेत अथवा चिन्ह) एक प्रकार का नहीं है। उनमें परस्पर अत्यन्त वैलक्षण्य हैं। एक ग्रन्थ मे जो स्वरित का चिन्ह देखा जाता है, वही दूसरे ग्रन्थ में उदात्त का चिन्ह माना जाता है। इसी प्रकार किसी ग्रंथ मे जो अनुदात्त का चिन्ह है, वह अन्य ग्रन्थों मे उदात्त का चिन्ह हो जाता है। 'साम संहिता' का स्वराङ्कन

प्रकार सबसे विलक्षण है । उनके वेदपाठ का स्वराङ्कन संहिता के स्वराङ्कन से भी पूर्णतया मेल नही खाता । इसलिए वेद के विद्यार्थी को पदे-पदे सन्देह और कठिनाई उपस्थित होती है ।"

इन बातो के अतिरिक्त स्वर चिन्ह युक्त छपी वेद की पुस्तको मे एक नई कठिनाई प्रेस सम्बन्धी हमारे अनुभव में आई है । इनके कारण एक साधारण पाठक के लिए मन्त्रो के पढने मे असुविधा होती है और अनेक बार वे गल्ती कर जाते हैं । प्रेस के कर्मचारी अक्षरो के ऊपर लगी छोटी रेखा को प्राय.अनुस्वार का चिन्ह समझकर वैसी ही कम्पोज कर देते हैं । इसी प्रकार जिस अक्षर के नीचे 'अनुदात्त'की आडी रेखा लगाई गयी है और उसमे छोटे न' की मात्रा भी लगी हो तो वह भी प्राय निगाह से ओझल हो जाती हैं ।

इन कारणो से हमने इस संस्करण में स्वर चिन्हो का प्रयोग नही किया है । इनकी आवश्यकता सस्वर वेद पाठ करने में होती है और इस कार्य के लिये कई स्थान से मूल संहिता की पुस्तक छपी है । हमारा मुख्य उद्देश्य वेदो के पठन-पाठन की प्रेरणा देने का है जिससे साधारण लोग भी हिन्दू धर्म के इस मूल को स्वय पढ सकें और उसका साधारण तात्पर्य समझ सकें । इस प्रकार 'स्वरो का परित्याग' कोई नवीन बात नही है । अब लगभग तीस वर्ष पूर्व बिहार की एक धार्मिक सस्था की तरफ से 'ऋग्वेद' का भाष्य-आठ खण्डो मे प्रकाशित किया गया था, जिसके लेखक 'भारतधर्म' महामडल' के महोपदेशक प० रामगोविन्द वेदान्तशास्त्री थे, उन्होने असामयिक जानकर उनमे स्वरों का प्रयोग नही किया था । इसी प्रकार अभी कुछ वर्ष पूर्व अहमदाबाद के परमहंस परिव्राजक श्री भगवदाचार्य ने सामवेद संहिता भाष्य प्रकाशित कराया । उसमे 'स्वरो को छोड दिया गया था । स्वामी जी ने स्पष्ट रूप मे लिखा था कि मैं वेदो के अक्षरो को अविकृत मानता हूँ । तभी 'अनन्ता वै वेदा.' की ध्वनि चरितार्थ हो सकती है स्वर मेरे साथ चल नहीं सकते ।" प्राचीन काल के विद्वानो ने भी उपनिषद् आदि ग्रन्थो

में जहां वेदमन्त्रों के उदाहरण दिये है, वहाँ स्वर चिन्ह नहीं लगाये हैं। इसका स्पष्ट उदाहरण यो 'ईशावास्योपनिषद्, है जो पूर्णतः 'यजुर्वेद' के अन्तिम अध्याय की प्रतिलिपी है और जिसे सर्वत्र बिना स्वर चिन्हों के लिखा व छापा गया है।

वेदों के ऋषि देवता और छन्द–

वेदो के प्रत्येक मन्त्र का कोई न कोई ऋषि माना गया है। अनेक लोग ऋषियो और देवताओ का एकीकरण करने की चेष्टा किया करते हैं, पर 'ऋग्वेद' के अध्ययन से स्पष्ट प्रकट होता है कि उसकी ऋचायें अवश्य ही कुछ प्रधान ऋषियो और उनके वंशजो द्वारा प्रकट की गई है। ऋग्वेद' मे दश मण्डल है, इनमे पहले और दसवें सबसे बडे हैं, इनमे से प्रत्येक मे १६१ सूक्त है और ये दोनो मिलकर इस वेद के एक तिहाई भाग के बराबर है। इन दोनो मण्डलो मे विविध ऋषियों द्वारा प्रगट किये गये सूक्तो का संग्रह किया गया है। अधिकांश सूक्त एक एक ऋषि के ही है, कहीं-कहीं ऐसे सूक्त भी मिलते हैं जिनके द्रष्टा एक से अधिक ऋषि है। इन दो मण्डलों के सिवाय दो से सात तक के मण्डलो मे तो प्राय एक ही ऋषि के द्वारा प्रकट किये गए सूक्त दिये गये है, अगर दो चार नाम और हैं तो बस उनके ही वंश वालो के हैं। इस प्रकार द्वितीय मण्डल में गृत्समद, तीसरे में विश्वामित्र, चौथे में वामदेव, पाचवें मे अत्रि, छठे मे भारद्वाज तथा सातवें मे वसिष्ठ के सूक्तों का संग्रह है। आठवें मे यद्यपि और भी बहुत से ऋषियो के सूक्त है, पर उसमे कण्व ऋषि के वंश की प्रधानता दिखाई पड़ती है। नौवें मण्डल मे भी अनेक ऋषियों का संग्रह ही है। इसका अर्थ यह नहीं समझ लेना चाहिये कि अन्य ऋषि जिनके सूक्त कम संख्या में हैं वे किसी भी दृष्टि से न्यून महत्व रखते है। इस प्रकार केवल ऋग्वेद के ऋषियो की संख्या लगभग ३०० है। अन्य वेदो के मन्त्रो के रचयिता भी लगभग ये ही हैं, यजुर्वेद और अथर्ववेद मे इसके अतिरिक्त बहुत थोडे नये नाम मिलते हैं। हमने प्रत्येक सूक्त पर उसके ऋषि का नाम दिया है, तो भी

यहाँ ऋषियों की नामावली देते हैं जिससे पाठकों को इस विषय का सादर परिचय प्राप्त हो सकेगा —

मधुच्छन्दा, जेत, मेधातिथि शुनःशेप, हिरण्यस्तूप, कण्व, सव्य, नोध, पराशर, गौतम, कुत्स, कश्यप, ऋज्राश्व कक्षीवन, परुच्छेप, दीर्घतमस, अगस्त्य, सोमाहुति, कूर्म, ऋषभ, उत्कील देवश्रवा, देवव्रत, प्रजापति, बुध, गविष्ठ, कुमार, ईश, सुतम्भरा, धरुण, पुरु, विश्वसाम, द्युम्न, विश्वचर्षणि, वसुयु विश्ववार, बभ्र, अवस्यु, पृथु, वसु, प्रतिरथ, प्रतिभानु, पुरुमीढ, गोपवन, सप्त वध्रु विप्र, उरुचक्रि, कृष्ण विश्वक, सुमेध, अपाला, श्रुतकक्ष, सुकक्ष, बिन्दु, पूतदक्ष जमदग्नि, नेम, प्रस्कण्व, त्रित, पर्वत, नारद, त्रिशोक, हविर्धान, अग्नि, दाम, दमन, मथित, विमद, वसुक्र, ऐलूष, मोजवान, पानाक, अमितपा, घोष, विश्ववारा, वत्सप्रि, सप्तगु, वैकुण्ठ, दुहदुक्थो गोपायन, मानव, प्लात, वसुकर्ण, अयास्य सुमित्र, बृहस्पति, गौरिवीति, जरत्कर्ण, स्यूमिरश्मि, सौचीक, विश्वकर्मा सूर्या, सावित्री, वायु, रेणु, नारायण, अरुण, शार्यात, तान्व, अर्बुद, वरु, भिषग्, मुद्गल अष्टक, भूताश, पणयोऽसुर, सरमा, अष्टादंष्ट्र, उपस्तु, भिक्षु, बृहद्दिव, चित्रमह, कुशिक, विहव्य, सुकीर्ति, शकपूत, मान्धाता अङ्ग, श्रद्धा, यामायिनी, यमी, शिरम्बिठ, केतु, भुवन, चक्षु, शची, पौलोमी, रक्षोहा, कपोत, अनिल, शबर, सवत, ध्रुव, पतग, अरिष्टनेमि, जय, प्रथ, उलो, सुपर्ण देवता, श्यावाश्व, रहूगण, भृगु, कर्णश्रुत, अम्बरीष, च्यवन, उर्वशी, द्रोण, राम, धर्म, शतहव्य, सुनहोत्र, सुनहोत्र, नर, गर्ग, कश्यप, नाभाग, त्रिशोक आदि आदि।

× × × ×

वैदिक देवताओं की सूची भी काफी लम्बी है। ऋग्वेद' में तो परमात्मा की शक्ति के विभिन्न अङ्ग रूप प्रकृति की संचालक शक्तियों की ही अधिकांश में स्तुति और प्रार्थना की गई है, पर अथर्ववेद में जहाँ ओषधियों, जड़ी-बूटियों, व्याधियों के निवारण के अन्य उपायों अथवा आध्यात्मिक विषयों का वर्णन किया है, वहाँ उन्हीं की अधिष्ठात्री शक्ति

को देवता मानकर उसी का नाम दिया गया है। यजुर्वेद और सामवेद में प्राय सभी देवता ऋग्वेद के ही हैं। नीचे ऋग्वेद के देवताओं की सूची दी जाती है

अग्नि, वायु, इन्द्र, वरुण, अश्विनीकुमार, विश्वेदेव, मरुत, सोम, ब्रह्मणस्पति, अर्यमा, आदित्य, सविता, त्वष्टा, सरस्वती, द्यावा-पृथिवी, ऋभुगण, सूर्य, रुद्र, विष्णु, उषा, वैश्वानर, ऋतु दक्षिणा पूषा, इन्द्राणि, अग्नपेयि, सिन्धु, स्वनय, बृहस्पति, वाक्, काल, रति, अन्न, वनस्पतिराका सिनीवाली, आप्यलयत, कपिञ्जल, यूप, पर्वत, उच्चैःश्रवस, क्षेत्रपति, सीता, पर्जन्य, धेनुः, प्रस्तोक, पण्डि, वास्तोष्पति, सोमयनमान, पितृ, मृत्यु धाता, वैकुण्ठ, आत्मा, निमृति ज्ञान, श्रद्धा, शचि, तदर्य आदि।

अथर्ववेद में इनमें ये सभी मुख्य-मुख्य देवताओं के स्तोत्रों के अतिरिक्त इन देवताओं के नाम भी मिलते हैं—

वाचस्पति, आप, असुर, यक्ष्म, नाशनम्, विद्युत, योषित, आसुरी, वनस्पति, यातुधान, मधुवनस्पति, हिरण्यम्, गन्धर्व और अप्सरायें, जङ्गडमणि, चन्द्र, पाश्विनपर्णी, पशु, दम्पति, पशुपति, पर्णमणि, अश्वत्थ, हरिण, अप्सरा, शाला, गोष्ठ, योनि, कामिनी, काम, सामनस्य, व्याघ्र, वृषभ, संयमणि, रोहिणी, वनस्पति, दिशायें, अपामार्ग, भव और शर्व, मन्यु, ब्रह्मौदन, जातवेद, लाक्षा, सवम, नाशनम्, सर्प, विषनाशनम्, ब्रह्मगवी, दुन्दुभिः, गर्भ कृत्या, प्रतिहरणम् ईर्ष्या विनाशनम् पाप्मा, शमी अन्ना, अर्क (मदार), वाजी (अश्व) काशा (खांसी), मेधा, पिप्पली, भग, स्मर, वश, दुःस्वप्न नाशनम् दशा, अक्षि, मन, कुहू, अरिनाशनम्, सुखम् अमावास्या पौर्णमासी, ब्रह्म वेदी, भेषज विराट, अध्यात्म, व्रात्य, अतिथि, विद्या, ब्रह्मचारी, शतौदन, आञ्जनम् आदि आदि।

'अथर्ववेद' का मुख्य विषय अध्यात्म तथा ब्रह्मज्ञान के साथ-साथ जीवन के विविध विषयों का ज्ञान प्रदान करना है। उसमें विविध प्रकार की व्याधियों को हटाने के लिए औषधियों और मन्त्र-तन्त्र का विधान है और इन्हीं सबको उसमें देवता मान लिया गया है। अनजान व्यक्ति औषधियों

तथा शारीरिक और मानसिक व्याधियों के निवारण के उपायों को देव-श्रेणी में देखकर आश्चर्य करते हैं, पर जैसा हम लिख चुके हैं प्रत्येक पदार्थ और विधान के जड़ और चेतन दो विभाग होते हैं। आत्मज्ञानी पुरुष मुख्यतः प्रत्येक पदार्थ में चेतन शक्ति को ही देखता है, क्योंकि वास्तविक कार्य और प्रभाव उसी का होता है। इसी तत्व को लक्ष्य करके एक विद्वान ने लिखा है—

"अभी भी यहाँ के या किसी भी अन्य देश के महात्मा ऐसे ही अनुभव करते हैं और जड़ पदार्थों से भी बातें मारते हैं। जो 'आत्मवत सर्व भूतेषु' को जीवन में ढाल लेते हैं, वे पशु, पक्षी, पत्थर मिट्टी से भी बातचीत करते हैं। भला जो वैद्य अपनी औषधियों से बातें करना नहीं जानता, वह भोजन का मार्ग क्या जानेगा ? जो वीर अपनी तलवार से बातें नहीं करता वह भी कोई वीर है ? सच्चाई तो यह है कि अपने से चेतना का जितना अधिक विकास होगा, मनुष्य उतना ही जड़ वस्तुओं से चेतनवत व्यवहार करेगा। इसके विपरीत जिसमें चेतनतत्व का विकास नहीं हुआ है, जिसके मन, मस्तिष्क और प्राण जड़ानुगत है, वह तो जघन्य व्यवहार करेगा। महात्माओं और जड़वादी मनुष्यों का यह भेद प्रतिदिन प्रत्यक्ष देखा सुना जाता है। फलतः वेदमन्त्रों की चैतन्यानुगत होना उनकी अद्भुत अध्यात्म-भूमिका का परिचायक है।"

वैदिक ऋषि भली प्रकार जानते थे कि शरीर की शक्ति से मन की शक्ति अनेक गुनी प्रबल है और उसकी अपेक्षा आत्मा की शक्ति बहुत अधिक प्रभावशाली है। इसलिये उन्होंने सभी मनुष्यों को मानसिक शक्ति के विकास कराने और सांसारिक कार्यों में उसका उपयोग करने का मार्ग दिखलाया और उसमें सन्देह नहीं कि आज भी वे ही मनुष्य वास्तविक सफलता प्राप्त करते हैं, जिनकी मानसिक शक्ति प्रबल है और उसी के द्वारा वे अन्य मनुष्यों को अभिभूत करके अपना अनुगामी बना सकते हैं।

× × × ×

सात्मा या अनन्त है । यह विश्व विराट, अनादि और अनन्त है, इसका स्रोत अविनाशी है । देश और काल, अथवा नाम और रूप के परिवर्तनशील स्वस्तिक मे इसका नित्य नया रूप प्रकट हो रहा । इस प्रकार ऋषि और वैज्ञानिक दोनो ही विश्व के रहस्य की व्याख्या करते हैं । पर ऋषियो का दर्शन इस ध्रुव विश्वासमे भरा हुआ है कि यह व्यक्त विश्व किसी अव्यक्त मूल स्रोत से उद्गत हुआ है । वह अव्यक्त मूल इस व्यक्त की सृष्टि करके इसी मे अनुप्रविष्ट हो रहा है—समाया हुआ है ।'

देवतवाद--

वेदो मे अनेक देवताओ की स्तुतिया और प्रार्थनायें मिलती हैं । वैदिक ऋषियो के मतानुसार प्रत्येक जड़ अथवा भौतिक पदार्थ का एक चेतन आत्मा भी होता है वही उसका देवता है । इस दृष्टि से वैदिक सृष्टि-विद्या दो भागो मे विभाजित ह, एक देव तत्व जिसे शक्ति तत्व भी कह सकते है और दूसरा 'भूत' अथवा स्थूल पदार्थ । बिना देवता अथवा शक्ति के किसी 'भूत' या भौतिक पदार्थ की स्वतन्त्र सत्ता सम्भव नही । जिस प्रकार मृत शरीर मे भी नेत्र रहते हैं, पर वे इस कारणनही देख सकते कि उनकी चेतन शक्ति पृथक हो गई है इसी प्रकार बिना देव-तत्व के केवल जड पदार्थ निरर्थक है । इस बात को जो व्यक्ति नही समझते वे इस बात पर सन्देह प्रकट करते है कि वेदों मे अग्नि, पानी वनस्पति, ओषधि, स्रुवा, चमस आदि सब पदार्थों की मनुष्यो के समान स्तुति क्यो की है और उनसे धन, सौभाग्य, वरदान आदि की याचना करने का क्या परिणाम हो सकता है ? इसका स्पष्टीकरण करते हुए एक प्राचीनता के पोषक लेखक ने कहा—

"ऋषियो ने जिन प्राकृत शक्तियो की स्तुति व प्रशसा की है वह उनके स्थूल रूप की नही है, प्रत्युत्त उनकी शासिका अथवा अधिष्ठात्री चेतन शक्ति की है । इस चेतनशक्ति को वे परमात्मा से पृथक नही मानते थे । परमात्मा रूप ही मानते थे । उन्होंने 'ऋग्वेद' के प्रथम मंत्र मे ही अग्नि की स्तुति की है, परन्तु अग्नि को परमात्मा से भिन्न मानकर नही

वे स्थूल अग्नि में रूप को जानते हुये भी सूक्ष्म अग्नि-परमात्मा शक्ति-रूप के स्तोता और प्रशंसक थे। वे मरणशील नाशवान) अग्नि मे व्याप्त अमरता के उपासक थे। वेद मे कहा गया है-"अपश्यमह महतो महित्वम् मर्त्यस्य विभु" म १०-७६-१) अर्थात "मरणशील मनुष्यो मे मैंने अमर अग्नि की महिमा को देखा।' इसी तरह 'इन्द्र' में भी वे परमात्मा शक्ति को देखते थे। कहा गया है कि "जो सृष्टिकर्ताओ के भी सृष्टिकर्ता हैं मैं उनकी स्तुति करता हूं (म० १०-१२८-७)। जितने देवता हैं उन सबको वे उसी प्रकार परमात्मा रूप समझते थे जिस प्रकार एक ही सूत्र मे माला के समस्त दाने ओत-प्रोत रहते हैं और सब मिलकर केवल एक माला ही समझे जाते हैं।"

वास्तविक बात यही है कि वैदिक ऋषिगण अध्यात्मवादी थे और सर्वदा चैतन्य जगत मे ही विचरण किया करते थे। अपने को किसी दशा मे केवल हाड-मास का पुतला समझने को तैयार न थे। इसलिये उन्होंने अपने सासारिक जीवन को पूर्णतया आधिदैविक और अध्यात्मिक रङ्ग मे रङ्ग दिया था और वे सर्वत्र सर्दव अपने को देवशक्तियो से घिरा हुआ अनुभव करते थे। वे उन शक्तियो से मौतिक मनुष्यो की तरह ही बातचीत और व्यवहार करते थे और उनको भी अपने जीवन और समाज का एक अविच्छिन्न अङ्ग मानते थे। इसका परिणाम यह होता था कि ससार मे रहते और उसके सब व्यवहारो को करते हुए भी उनकी भावनायें बहुत उच्च धरातल पर रहती थी और उसी के फलस्वरूप वे जीवन के परम सत्य को देख सकने मे समर्थ हो सकते थे। यही कारण था कि सब देवताओ के एक ही विराट शक्ति के अश होने पर भी वे उनमे पृथक-पृथक शक्तियो के रूप मे भी लाभ उठा सकते थे।

वैदिक समन्वयवाद—

उपर्युक्त विवेचन से वेदकालीन ऋषियो की समन्वयवादी प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है। समन्वयवाद भारतीय सस्कृति का एक बहुत बड़ा

गुण और यही कारण है कि जहाँ संसार की अन्य संस्कृतियाँ एक दो हजार वर्षों के भीतर ही लोप हो गई, वर्तमान भारतीय संस्कृति, विदेशी इतिहासज्ञों के हिसाब से भी, कम से कम आठ-दस हजार वर्ष पुरानी अवश्य हो चुकी हैं। इसमे सन्देह नहीं कि इसका श्रेय प्रधानता वैदिक आदर्शों को ही है। मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति के लिये जिन तीन बातो अर्थात ज्ञान, उपासना और कर्म की आवश्यकता होती है, उनका पूर्ण समन्वय वेदो मे पाया जाता है। विद्वानो में 'ऋग्वेद' को ज्ञान 'यजुर्वेद' को कर्म 'सामवेद' को उपासना और अथर्ववेद को अध्यात्म का विवेचन करने वाला माना है, पर स्वय वेदो में स्थान-स्थान पर यही घोषणा की गई है कि चारो वेद और उनका ज्ञान एक ही है—

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋच सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ ऋ० १०।१।६

अर्थात—ऋक् यजु साम, अथर्व चारो वेद एक ही ईश्वरीय ज्ञान मे प्रादुर्भूत हुए है, उनमे किसी का अन्तर करना अथवा भेदभाव प्रकट करना अनुचित और अनावश्यक है। पर मनुष्यो के प्राय: स्वार्थ बुद्धि की प्रधानता रहती है, जिसके कारण वे अपनी ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकाकर मतभेद और फूट का बीज बो देते है। यही कारण था कि बाद मे इसी देश मे ऐसे कितने विद्वान पैदा हो गये जिन्होंने वेद की इस सामन्जस्यवादी शिक्षा के मूलधार ज्ञान,उपासना और कर्म मे केवल एक को पकड़ कर दूसरे की निन्दा करनी आरम्भ कर दी शङ्कराचार्य जैसे महान व्यक्ति भी लोगो को ऐसा ही उपदेश देने लगे कि इन तीनों मे "ज्ञान ही उद्धार का मार्ग है। कर्म बन्धन मे डालने वाला है इसलिए ज्ञानी व्यक्ति को कभी कर्म नहीं करना चाहिये।" इधर उपासना का डङ्का पीटने वालों ने भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ बतला कर ज्ञान और कर्म की उपेक्षा करने की प्रेरणा दी गीताकार ने वेदो के आदर्श पर ज्ञान, कर्म और उपासना के समन्वय का उपदेश दिया पर इन प्रतिद्वन्दी मनोवृति के आचार्यों ने उनके भी बीसियो तर

अपने-अपने सिद्धान्त का पोषण करने वाले तैयार कर दिये। इसी सम्प्रदायवाद ने भारतीय समाज में फूट और निर्बलता को उत्पन्न किया जिसका अन्तिम परिणाम देश का पतन और विदेशियों की पराधीनता के रूप में प्रकट हुआ। यदि सङ्गठित, शक्तिशाली और कार्यक्षम बनाना है तो इसके लिए सर्वश्रेष्ठ आदर्श वेदों का समन्वय ही है। जिसका मार्ग 'वेद' ने स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दिया है—

सगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे सञ्जानाना उपासते॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः॥
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ऋ० १०।१९१।२।

इसका आशय यह है कि सब मनुष्य भली प्रकार मिल कर रहें, प्रेमपूर्वक आपस में वार्तालाप करें। सब के मनों में ऐक्य भाव हो और वे अविरोधी ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार विद्वान लोग सदा से ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करते हुये उनकी उपासना करते रहे हैं उसी प्रकार तुम भी ज्ञान और उपासना में दत्तचित्त रहो। सब लोगों के सङ्कल्प, निश्चय, अभिप्राय एक से हों सबके मन में एक सी उच्च भावना पाई जाय और सब लोग सहयोगपूर्वक अच्छी तरह से कार्यों को करें।

'अथर्ववेद' में यह भी समन्वययुक्त भावों और सहयोग का आदेश असंदिग्ध रूप से दिया गया है—

संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छताम्॥
सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा मा युष्महि मनसा दैव्येन।
मा घोषा उत्स्थुर्बहुले विनिर्हते मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते॥

अर्थात्—सब लोग एक मत हो [illegible]
[illegible]

पराये, दोनों प्रकार के मनुष्यों की समान मनोवृत्तियाँ हों। हम अपने मन को दूसरे के मन के साथ जोड़ मिलकर सत्कार्य करें।"

पाठकों को अनेक मन्त्र इसके विपरीत भी मिलेंगे, जिनमे शत्रुओं के नाश की उनका धन और पशु छीन लेने की, उनकी हर तरह से दुर्गति की बात कही गई है। विशेष रूप से 'अथर्ववेद' में तो 'शत्रुनाश' के अनेक मन्त्र तन्त्र और गूढ़ उपायों का वर्णन किया है। पर वहा उनका आशय विशेष परिस्थिति और विशेष व्यक्तियो से ही हैं। उनको सार्वजनिक रूप से ग्रहण करने और प्रचार करने की बात नही है। जैसे अन्यायो और अत्याचारी कौरवो के साथ युद्ध करने का समर्थन सबसे अधिक भगवान् कृष्णने किया और युद्ध-काल मे स्वय तरह-तरह की गुप्त योजनाओ, चालाकियो और असत्यपूर्ण दिखलाई पड़ने वाली युक्तियो से भी काम निकाला, उसी प्रकार वेद मे धर्म विरुद्ध आचरण करने वाले शत्रुओं, यातुधानो, राक्षसों के विरुद्ध ही प्राय. शत्रु भाव के उद्गार प्रकट किये गये है। अन्यथा ससार के सामान्य मनुष्यों को वेद भगवान् का उपदेश समन्वय, सहयोग, सङ्गठन, न्याय और सत्य के अनुकूल आचरण का ही है।

वेद और पशुहिंसा--

अनेक लोग वेदो के पशुहिंसा होने का आक्षेप करते हैं। कुछ भाष्यकारो ने वैदिक सूक्तों का अर्थ करते हुये, पशुओ के मास आदि से आहुति देने की बात लिखी है। पर जब हम मूल संहिताओं पर विचार करते हैं तो यही मानना पडता है कि वेदों ने तो हिंसा के बजाय अहिंसा का उपदेश दिया है और असहाय प्राणियो, पशुओं की रक्षा को परम धर्म माना है। इसलिये अगर किसी भाष्यकार ने अथवा किसी शाखा-वालों ने वैदिक मत्रो का पशुहिंसात्मक अर्थ किया है तो इसका कारण उसका व्यक्तिगत या साम्प्रदायिक विचार ही रहा होगा। जिस प्रकार वर्तमान समय मे हम भगवद्गीता के ज्ञान, भक्ति, कर्म, वैराग्य, अहिंसा के समर्थक विभिन्न भाष्य देख रहे हैं उसी प्रकार वेदो के भी लोगों ने

स्वमतानुयायी अलग-अलग तरह से भाष्य बनाये थे। मध्यकाल में भारत मे तांत्रिक सम्प्रदायो का बडा जोर रहा था और वे बलिदान आदि को अपने धर्म का अङ्ग मानते थे। उन्होने अपने सम्प्रदाय के समर्थन के लिये वेद मन्त्रों के वैसे ही अर्थ कर दिये हैं। प्राचीन काल मे रावण को वेदानुयायी लिखा है पर वह कदाचित वाममार्गी भी था, इसलिये जहाँ वेद मे सर्वत्र घृत, सोम जौ, तिल आदि की आहुति देने को बतलाया है, वहाँ मेघनाद आदि राक्षसो के लिये रामायण मे सदैव पशु अङ्गो द्वारा ही हवन करने की बात लिखी है। ऐसे व्यक्तियो को 'अथर्ववेद' मे एक स्थान पर साफ शब्दो मे 'मूर्ख' और 'निन्दनीय' लिखा है।

मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधायजन्त।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्रणो वोचस्तमिहेह ब्रवः॥
(काण्ड ७५-५)

"अविवेकशील और मूढ यजमान पशु अंगो से हवन करते है, यह निश्चय ही मूर्खता पूर्ण और निन्दनीय है। अपने से आत्मयज्ञ को करने वाले महापुरुष को बतलाइये। वे ही परमात्मा के सत्य स्वरूप का उपदेश करने योग्य हो सकते हैं।"

यज्ञ विषय का विशेष रूप से विवेचन करने वाले "यजुर्वेद" मे कहा है—

पशुभि. पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवींष्या।
छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषटकारान्॥ (अध्याय १९-२०)

"पशुओ द्वारा पशुओ अर्थात् पशुत्व को प्राप्त होता है। पुरोडाशों से हवियो (अन्नादि) को प्राप्त होना है। इसी प्रकार छन्दो वेद मन्त्र से छन्द को, सामधेनियो (समिधा आदि) से सामधेनियो को, याज्यो से याज्यों को और वषटकारो से वषटकारो को प्राप्त होना है।"

एक अन्य स्थान पर कहा गया है—

पशुन पाहि गां मा हिंसी, अजा, मा हिंसी ।
अविं मा हिंसी, इमं मा हिंसी द्विपादं पशु ॥
मा हिंसीरेक शफ पशु मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि ॥

"पशुओं की रक्षा करो, गाय को मत मारो, बकरी को मत मारो भेड़ को मत मारो, दो पैर वाले (मनुष्य पक्षी आदि) को मत मारो एक खुर वाले पशुओं (घोड़ा, गधा आदि) को मत मारो, किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो।"

"ऋग्वेद" मे गौ की उपयोगिता बतला कर उसकी रक्षा का इन शब्दों में आदेश दिया है

सूयवसाद भगवती हि भूयाः अथो वय भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमध्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ति ॥
(१-१६४-४०)

हे अघ्न्ये (हिंसा के अयोग्य) भाग्यवती धेनु ! तू तृण (घास) सेवन करने वाली है। हमको भी भाग्यशाली बना। तू घास खाती हुई निर्मल जल पीने वाली हो।"

यः पोरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥
(ऋ० १०-८७ १६)

जो राक्षस मनुष्य का घोड़े का और गाय का मांस खाता है, तथा दूध की चोरी करता हो उसके सिर को कुचल देना चाहिये।"

'अथर्ववेद' (काण्ड १२ सूक्त ५) मे गौहिंसक की दुर्गति का ऐसा भीषण और रोमांचकारी चित्र खींचा है, कि उसे पढ़कर पापी से भी पापी व्यक्ति का दिल कांप जाता है। सर्वोपयोगी गौ आदि पशुओं के घातक का सर्वस्व नाश हो जाता है और उसे तीन लोक में कहीं भी टिकने के लिये स्थान नहीं मिलता।

वेदो में स्थान-स्थान पर इस प्रकार के सैकडो स्पष्ट आदेश होते हुए और प्राणीमात्र को आत्मवत देखने का उपदेश होने पर भी यह कहना कि वेद ने 'यज्ञ' जैसे समाज के आधार-स्वरूप परम-पवित्र कृत्य हिंसा का विधान किया है,विवेक के विरुद्ध बात है। इस विषय मे अनेक लोगों को भ्रम होने का यह भी कारण है कि वेद-भाषा मे एक एक शब्द के अनेक अर्थ लिये जाते है, अर्थात् उसके शब्द बहुत व्यापक आशय रखने वाले होते है। उदाहरणार्थ गौ या गाय (गो) शब्द का प्रयोग केवल गाय (पशु) के लिए नही किया गया है, पर उससे उत्पन्न घी, दूध, दही गोबर, गौमूत्र, बछड़ा बछिया आदि सबके लिये प्रयोग मे आ सकता है। इसी प्रकार 'अज' का अर्थ बकरा, पुराना अन्न और अजन्मा अर्थात् आत्मा भी माना गया है। इसके सिवा विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तरह-तरह की जडी-बूटियो से हवन करने का भी विधान है और आयुर्वेद के ग्रन्थों मे बहुसंख्यक जडी बूटियों के ऐसे नाम दिये गये है जिनका अर्थ पशु भी होता है जैसे वृषभकन्द नाम की औषधि का नाम केवल वृषभ (बैल) लिखा है। अश्वगधा का उल्लेख 'अश्व' (घोड़े) के नाम से ही किया गया है। इसी प्रकार कुमारी घास के लिए 'श्वान' महिषाक्ष या गुग्गुल के लिए महिष' वाराहीकन्द के लिए वाराह' मुद्गपर्णी के लिए 'मूषक' आदि शब्द लिख दिए गए है। फलों और औषधियों के गूदे के लिए 'मांस' शब्द लिखा है। 'भाव प्रकाश' मे एक स्थान पर आम के 'मांस' अस्थि, मज्जा' का जिक्र किया गया है। ऐसे कारणो से भी प्राचीन ग्रन्थो में अनेक वाक्यो के अर्थ करने मे हिंसा की कल्पना करनी से बह दी जाती है। इस विवेचन से हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते है कि वेदो का मूल उपदेश हिंसा का नही हो सकता। उनके मन्त्रों का जहां कही हिंसात्मक अर्थ किया गया है वह या तो हिंसाकारी स्वार्थवादों द्वारा शब्दो की खींचातानी करके निकाला गया है, शब्दो के अर्थ मे भ्रम हो जाने के कारण उत्पन्न हो गया है वास्तव में वेदो के मन्त्रो में पोषण करना गया और उनके हित करने का ही आदेश दिया है।

चरित्र और नीति

चरित्र और नीति के सम्बन्ध मे वेदो का आदर्श बहुत ऊँचा है। यह ठीक है कि उस समय भी ऋषियो, महात्माओ और सज्जन पुरुषों के साथ राक्षस, दस्यु, तस्कर, चोर, घातक आदि दुष्कर्म करने वाले व्यक्ति पाये जाते थे, पर वेद मे सर्वत्र उनकी निन्दा पाई है और उनको समाज का शत्रु मान कर उनके नाश की प्रार्थना की गई है। वैदिक काल मे सभी धार्मिक व्यक्तियो का दृढ़ विश्वास रहता था कि देवगण सदैव उनके आस-पास रहते है इसलिए अगर वे कोई पाप-कर्म करेंगे तो उसका दण्ड उनको अवश्य भुगतना पड़ेगा। इस भावना के फलस्वरूप उनका जीवन अधिकांश में सत्य, न्याय, दया, धर्म के नियमों के अनुकूल ही रहता था। समाज में सुख तथा शान्ति का वातावरण बना रहता था। समाज के व्यक्तियों मे समानता और प्रेम का भाव पाया जाता था और वे एक दूसरे की हर प्रकार से सहायता करना अपना कर्तव्य समझते थे। 'ऋग्वेद में कहा गया है।

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेता सत्यं ब्रवीम वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥

(ऋ० १०-११७-६)

'जिसका मन उदार नहीं है उसका भोजन करना वृथा है। उसका भोजन उसकी मृत्यु के समान है। जो न तो देवगण को (परोपकारार्थ) देता है और न मित्रों को देता है और स्वयं ही भोजन करता है, वह केवल पाप ही खाता है।

वेदकालीन आर्यों ने मोक्ष को प्रधान मानते हुए भी सांसारिक जीवन की उपेक्षा नहीं की थी, क्योंकि वे भली प्रकार जानते थे कि जो व्यक्ति इस जीवन को सुव्यवस्थित और कार्यक्षम रूप से व्यतीत नहीं कर सकता वह परलोक जीवन को किस प्रकार श्रेष्ठ बनाने का प्रयत्न कर सकता है। [illegible]

न्याय पर आधारित थे जिससे समाज के सब व्यक्तियों को प्रगति करने में समान रूप से सुविधा प्राप्त हो सके। यजुर्वेद में कहा गया है—

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्या जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध कस्य स्विद्धनम् ॥
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

(४० । २-२)

अर्थात् "इस जगत् में परमात्मा को सर्वत्र उपस्थित समझकर किसी के भी धन की इच्छा न करो, किन्तु उसने से ही निर्वाह करो जितना उसने न्यायानुकूल तुम्हारे लिये स्थिर किया है। आजीवन इसी मार्ग पर चलने और आचरण करने से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है, और कोई दूसरा उपाय नहीं।

संसार में प्रत्येक प्राणी को भोजन और निवास स्थान की आवश्यकता होती है। मनुष्यों को इन दो चीजों के अतिरिक्त वस्त्र तथा गृहस्थी सम्बन्धी कुछ सामग्री जैसे बर्तन आदि की भी अनिवार्य रूप से आवश्यकता मानी गई है। अपने अस्तित्व को स्थिर रखने तथा विकसित करने के लिए इन चारों वस्तुओं की प्रत्येक मनुष्य को समान रूप आवश्यकता है। पर आज देखा जा रहा है कि मनुष्य की प्राथमिकता और अनिवार्य आवश्यकता के पदार्थों पर कुछ चालाक लोगों ने छल, बल, कौशल से अधिकार जमा लिया है और वे उसका दुरुपयोग करते हैं। इसी के फलस्वरूप इस समय समाज में असन्तोष और अशान्ति का साम्राज्य छाया हुआ है और तरह-तरह के दोषों की वृद्धि हो रही है। पर वैदिक-युग में आरम्भ से ही प्रत्येक व्यक्ति को सत्य और न्याय के अनुकूल आचरण की शिक्षा दी जाती थी और उनके सामने 'असतो मा सद्गमय-(हे परमात्मन ! मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो) का आदर्श रखा [illegible] लोग बिल्कुल सीधे सादे ढंग

चरित्र और नीति

चरित्र और नीति के सम्बन्ध मे वेदो का आदर्श बहुत ऊंचा है। यह ठीक है कि उस समय भी ऋषियों, महात्माओ और सज्जन पुरुषों के साथ राक्षस, दस्यु, तस्कर, चोर, घातक आदि दुष्कर्म करने वाले व्यक्ति पाये जाते थे, पर वेद मे सर्वत्र उनकी निन्दा पाई है और उनको समाज का शत्रु मान कर उनके नाश की प्रार्थना की गई है। वैदिक काल मे सभी धार्मिक व्यक्तियो का दृढ विश्वास रहता था कि देवगण सदैव उनके आस-पास रहते है इसलिए अगर वे कोई पाप-कर्म करेंगे तो उसका दण्ड उनको अवश्य भुगतना पडेगा। इस भावना के फलस्वरूप उनका जीवन अधिकांश मे सत्य, न्याय, दया, धर्म के नियमों के अनुकूल ही रहता था। समाज में सुख तथा शान्ति का वातावरण बना रहता था। समाज के व्यक्तियों मे समानता और प्रेम का भाव पाया जाता था और वे एक दूसरे की हर प्रकार से सहायता करना अपना कर्तव्य समझते थे। ऋग्वेद मे कहा गया है।

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेता. सत्यं ब्रवीम वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥

(ऋ० १०-११७-६)

'जिसका मन उदार नहीं है उसका भोजन करना वृथा है। उसका भोजन उसकी मृत्यु के समान है। जो न तो देवगण को (परोपकारार्थ) देता है और न मित्रों को देता है और स्वयं ही भोजन करता है, वह केवल पाप ही खाता है।

वेदकालीन आर्यों ने भोग
जीवन की उपेक्षा नहीं की
क्योंकि उनका जीवन को
[illegible]
कर सकता है। इन

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।

(यजु० ३६ १८)

'हे परमात्मन ! मेरी दृष्टि दृढ कीजिए जिसमें सब प्राणी मुझे मित्र दृष्टि से देखें । इसी तरह मैं भी सब प्राणियों को मित्र दृष्टि से देखूं और हम सब प्राणी परस्पर एक दूसरे को मित्र दृष्टि से देखें ।"

इस प्रकार वेदो मे स्थान-स्थान पर काम, क्रोधादि मानसिक विकारो तथा सकीर्णता को त्याग कर सत्य और उदारता व्यवहार करने का विद्वान् लोग अपनी वाणी को मन से शुद्ध करके बोलते है, वही पर लक्ष्मी और मित्रता ठहरती है । विद्वान् लोग भली प्रकार जानते हैं कि सत्य और असत्य वचन एक दूसरे के विपरीत होते है । इनमे से सत्य सरल और सीधे स्वभाव से कहा जाता है और कल्याणकारी होता है ।" (ऋग्वेद १० । ७ । १ । २ तथा ७ । १० । ४ । २) वेदो मे मोह, लोभ कामवासना नशा, जुआ आदि दुर्गुणो की जगह-जगह निन्दा की गई है और ऐसे व्यक्ति को लोक तथा परलोक मे दण्डनीय बतलाया है । व्यक्तिगत स्वार्थ और लालच को त्याग कर समाज के सब व्यक्तियो के साथ प्रेम, सहानुभूति, सहयोग और परोपकार के व्यवहार को ही प्रशसनीय और आचरणीय बतलाया गया है । स्वार्थी, इन्द्रियपरायण और दूसरो को हानि पहुँचाने वाले व्यक्ति को बहुत निन्दनीय और हेय कहा है।

सच पूछा जाय तो वेदो का वास्तविक आदर्श 'आत्मवत सर्व भूतेषु, अथवा वसुदैव कुटुम्बम्' का ही है । वेदो से तत्कालीन धार्मिक सामाजिक आर्थिक स्थिति का जो कुछ विवरण ज्ञात होता है, इससे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उस काल का चारित्रिक और नैतिक मापदण्ड बहुत ऊँचा था और लोगो मे त्याग की उच्च कोटि की भावना पाई जाती थी । वेदों मे सर्व प्रधान कर्म 'यज्ञ' बतलाया गया है और इसका आशय केवल कर्मकाण्ड, से नही है । 'यज्ञ' का सबसे बड़ा उद्देश्य समाज सेवा या परोपकार के 'स्वार्पण' की भावना थी यजुर्वेद

मे कई जगह 'रायंस्त्र दक्षिणा' वाले यज्ञों का उल्लेख है। पिछले जमाने मे चाहे इस प्रकार के यज्ञों को स्वार्थी लोगो ने अपने लाभ का व्यवसाय बना लिया हो पर आरम्भ मे वेदो मे इस सम्बन्ध मे जो आदेश दिया गया था उसमे समाज के सब व्यक्तियो के कल्याण, सेवा और हित की भावना ही निहित थी। इसीलिए उस युग मे यज्ञ को सबसे बड़ा 'धार्मिक कार्य' माना गया था और जो लोग स्वय 'यज्ञ' द्वारा समाज का सचालन, पालन और अभ्युदय साधित करते थे वही ब्राह्मण के पूजनीय पद के अधिकारी होते थे। इसके विपरीत जो धन के लोभी थे और उचित अथवा अनुचित सब प्रकार के उपायो से छल कपट का सहारा लेकर भी अपने लिए सम्पत्ति बटोर कर रखना ही अपना मुख्य उद्देश्य बना लेते थे उनको 'पणि' (वणिक या बनिया) के नाम से पुकारा जाता था, जो उस समय एक घृणित शब्द माना जाता था। वेदानुयायी लोगो का तीसरा वर्ण 'वैश्य' इन 'पणियो' या 'बनियो' से भिन्न था। 'वैश्य' वह था जो समाज की आर्थिक व्यवस्था को ठीक रखने के लिए खेती, शिल्प और वितरण के कार्यों की न्यायानुकूल पूर्ति करता था। इसके विपरीत पणि' का अर्थ था बेईमान और ठग व्यापारी जैसा कि ऋग्वेद मे कहा गया है—

न्यक्रतून ग्रथिनो मृध्रवाच पणीर श्रद्धां अवृधा अयज्ञान।
प्र प्र तान्दस्यूं रग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापरां अयज्यून ॥
(७-६-३)

"हे अग्नि देव ! तुम यज्ञशून्य, ठगी का व्यवहार करने वाले, हिंसायुक्त वचन कहने वाले श्रद्धा रहित, ज्ञानहीन यज्ञ से विमुख पणि रूप दस्युओ को दूर हटाओ और उनको सब प्रकार से हेय बनाओ।"

इस प्रकार दस्युओं राक्षसो को निन्दा, नाश और उनकी सम्पत्ति को छीन लेने वाले वाक्य वेदो मे बहुत अधिक संख्या मे मिलते हैं जिससे अनेक पाठको को तत्कालीन व्यक्तियो के घोर स्वार्थी और ईर्ष्यालु होने

का देह हो जाना है। पर इसका वास्तविक कारण यही है कि उस युग में वेदों के ईश्वरीय आदेशों को समझने और पालन करने का प्रयत्न एकमात्र आर्य जाति ने ही किया था। उनमें से भी अनेक स्वार्थी और लोलुप वृत्ति के व्यक्ति त्याग और परोपकार के मार्ग को कठिन समझ कर समाज से पृथक होकर नीच कर्मों में प्रवृत्त हो गये थे। इनके सिवाय पृथ्वी पर अन्य अनेकों जनसमुदाय थे जो केवल पशुओं की तरह खाना, सोना, और सन्तानोत्पादन के सिवा अन्य मानवोचित कर्त्तव्यों से अनजान और विमुख थे। ये स्वयं विधिपूर्वक कार्य कर सकने में असमर्थ थे और दूसरे परिश्रमी तथा पुरुषार्थी मनुष्यों की कमाई को लूट-खसोट कर भक्षण कर जाना ही सबसे सहज और सामञ्जस्य काम समझते थे। ये पशुओं से भी अधम लोग अन्य सभ्य मनुष्यों और गौ आदि पशुओं को मार कर अपना पेट भरने में भी कुछ बुराई नहीं समझते थे। ऐसे ही निकृष्ट और अत्याचारी लोगों को वेद में समाज का शत्रु बतलाया गया और मानव-जीवन के हित और प्रगति के लिए उनको नष्ट करने की आज्ञा दी है।

× × × ×

जैसा हमने आरम्भ में लिखा है वेदों के अधिकांश मन्त्रों के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दृष्टि से विभिन्न अर्थ होते हैं और इस कारण हमारे इस वर्तमान संस्करण में लौकिक अर्थ की प्रधानता होने पर भी, हम यह असंदिग्ध रूप से कह सकते हैं कि वेदों का मूल लक्ष्य मनुष्यों की आध्यात्मिक उन्नति और आत्मकल्याण ही है। वेद के सत्य उपदेश, जाति धर्म, सम्प्रदाय और समुदाय आदि से बहुत ऊपर हैं। वे मनुष्य को सृष्टि के मूल स्वरूप का ज्ञान प्रदान करते हैं और उसी के अनुसार आत्मज्ञान के अनुकूल जीवन व्यतीत करने का मार्ग प्रदर्शित करते हैं।

× × × ×

वेदों का प्रकाशन कार्य बहुत भारी है, और बिना एक लम्बी साधना के उसकी पूर्ति हो सकना सम्भव नहीं। इतने विशाल ग्रन्थ का लिखकर तैयार करना और छाप सकना किसी अकेले व्यक्ति की शक्ति से बाहर की बात है। हमने अपने सीमित साधनों से जहाँ तक सम्भव था इसे उपयोगी रूप में पूरा करने का प्रयत्न किया है। इस कार्य में हमको अपने जिन सहयोगियों तथा अन्य विद्वान पुरुषों से सहायता प्राप्त हुई है उन सबके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। लेखन कार्य में सबसे अधिक सहयोग श्री दाऊदयालजी गुप्त से प्राप्त हुआ है उनके सतत परिश्रम के बिना इसका इतने अल्प समय में तैयार हो सकना सम्भव न था, जिसके लिए गुप्ता जी हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। इसके संशोधन और मुद्रण कार्य का भार श्री सत्यभक्त जी को दिया गया था। इतना बड़ा कार्य किसी एक स्थानीय प्रेस द्वारा शीघ्र सम्पन्न नहीं हो सकता था, इसलिए तीन विभिन्न प्रेसों में इसे छपाने की व्यवस्था करनी पड़ी। इन सबकी देखभाल करना और ग्रन्थ को ठीक समय पर सुन्दर रूप में तैयार करा देना एक बहुत श्रमसाध्य कार्य था, जिसे उन्होंने दिन रात परिश्रम करके पूर्ण किया अतः उन्हें भी धन्यवाद देना हमारा कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त जिन अनेक ग्रन्थों से प्रस्तुत संस्करण को तैयार करने में सहायता मिली है उन सबके लेखकों के प्रति भी हम अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री तपोभूमि
मथुरा।

॥ ॐ ॥

प्रथम अष्टक

प्रथम अध्याय

१ सूक्त [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—मधुच्छन्दा । देवता—अग्ने । छन्द—गायत्री)

अग्निमीले पुरोहितयज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ।१।
अग्नि. पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवां एह वक्षति ।२।
अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ।३।
अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद्देवेषु गच्छति ।४।
अग्निर्होता कविक्रतु. सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । देवो देवेभिरागमत्
।५।१।

अग्रणि, प्रकाशित, यजनकर्त्ता, देव दूत, रत्नयुक्त अग्नि का स्तवन करता हूँ ।१। पूर्वकाल मे जिसकी ऋषियो ने उपासना की थी तथा अब भी ऋषिगण जिसकी स्तुति करते हैं, वह अग्नि देवगण को यज्ञ मे बुलाता है ।२। अग्नि धनो को दिलाने वाला, पोषक तथा वीरत्व प्रदान करने वाला है ।३। हे अग्ने तू जिस यज्ञ मे सर्वत्र विराजमान है उसमे विघ्न सम्भव नहीं । वह यज्ञ स्वर्गस्थ देवगण को तृप्त करता है ।४। हे अग्ने ! तू हवि वाहक, ज्ञान-कर्म का प्रेरक, अमर यशस्वी देवताओ सहित यज्ञ को प्राप्त हो ।५। [१]

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत्तत् सत्यमङ्गिरः ।६।
उपत्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ।७।
राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ।८।
स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ।९।२

हे अग्ने ! तू हविदाता का कल्याण करने वाला है। अवश्य ही वह कर्म तुझे प्राप्त होता है।६। हे अग्ने ! हम दिन रात अपनी बुद्धि और हृदय से नमस्कार पूर्वक तेरा सामीप्य प्राप्त करते है।७। हे अग्ने तू यज्ञ को प्रकट करने वाला, सत्य-रक्षक, स्वयं प्रकाशित तथा सहज ही वृद्धि को प्राप्त होता है।८। हे अग्ने ! पुत्र जैसे पिता के पास स्वयं ही पहुँच जाता है, वैसे ही तू हमको सुगमता से प्राप्त हो जाता है। इसलिए तू हमारे लिए मङ्गलदाता बन।६। (१)

२ सूक्त

(ऋषि —मधुच्छन्दा। देवता—वायु, इन्द्रव यू मित्रावरुणौ। छन्द —गायत्री)

वायवा याहिदर्शतेमे सोमा अरङ्कृता तेषां पाहि श्रुधी हवम्।१।
वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जारितार। सुतसोमा अहर्विद।२।
वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे। उरूची सोमपीतये।३।
इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम्। इन्दवो वामुशन्ति हि।४।
वायविन्द्रश्च चेतथ. सुतानां वाजिनीवसू। तावा यातमुप द्रवत्।५।३

हे प्रिय दर्शन वायो ! यहाँ आ ! तेरे निमित्त यह सुसिद्ध सोम रखा है, उसे पीते हुए हमारे वचनों पर ध्यान दो।१। हे वायो ! यह सोम निष्पन्न करने वाले और इसके गुणो को जानने वाले स्तोता तेरा गुण-गान करते हुए स्तवन करते हैं।।२।। हे वायो ! तुम्हारी मर्मस्पर्शी वाणी सोम की कामना से दाता को शीघ्र प्राप्त होती है।।३।। हे इन्द्र, वायो ! यहाँ सोमरस प्रस्तुत है। यह तुम्हारे ही लिए है। अत अन्नादि सहित आओ।४। हे वायो ! हे इन्द्र ! तुम अन्न सहित सोमो के ज्ञाता हो। अत शीघ्र ही यहाँ आओ।५।

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्। मक्षि्व तथा धिया नरा।६।

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुण च रिशादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता।७।
ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा। क्रतुं बृहन्तमाशाथे।८।
कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया। दक्षं दधाने अपसम्।९।४

हे वायो और इन्द्र ! इस सिद्ध किये हुए सोम रस के पास शीघ्र आओ। तुम दोनों ही योग्य पदार्थ को प्राप्त करते हो ।६। पवित्र बल वाले मित्र और शत्रु नाशक वरुण का मैं आह्वान करता हूँ । यह ज्ञान और कर्म को प्रेरित करने वाले हैं ।७। ये मित्र, वरुण सत्य से वृद्धि को प्राप्त होने वाले सत्य स्वरूप तथा सत्य से विशालता को प्राप्त यज्ञ को सम्पन्न करने वाले हैं ।८। ये मित्र वरुण, शक्तिशाली, सर्वत्र व्याप्त हैं और बल द्वारा कर्मों में प्रेरित करते हैं । सब कर्मों और अधिकारों को बल में करने वाले हैं ।९।४।

३ सूक्त

(ऋषि—मधुच्छन्दा । देवता-अश्विनौ, इन्द्र- विश्वेदेवा सरस्वती। छन्द-गायत्री)

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती पुरुभुजा चनस्यतम् ।१।
अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया । धिष्ण्या वनतं गिरः ।२।
दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आ यातं रुद्रवर्तनी ।३।
इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ।४।
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ।५।
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ।६।१

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ।७। विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः। उस्रा इव स्वसराणि ।८। विश्वे देवासो अस्रिध एहिमायासो अद्रुहः। मेधं जुषन्त वह्नयः ।९। पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः ।१०। चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती ।११। महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना। धियो विश्वा वि राजति ।१२।६

हे विश्वेदेवाओ ! तुम रक्षक, धारक और दाता हो। अतः इस हविदाता के यज्ञ को प्राप्त होओ ।७। हे विश्वेदेवाओ ! तुम कर्मवान् और शीघ्रता करने वाले हो, आप सूर्य किरणों के समान ज्ञान प्रदान करने को आओ ।८। हे विश्वेदेवाओ ! तुम किसी से भी न मारे जाने वाले, चतुर, निर्वैर तथा सुख-साधक हो। हमारे यज्ञ को प्राप्त होकर अन्न ग्रहण करो ।९। हे पवित्र करने वाली सरस्वती ! तू बुद्धि द्वारा अन्न धन को देने वाली है। हमारे इस यज्ञ को सफल कर ।१०। सत्य कर्मों की प्रेरक, उत्तम बुद्धि को प्रशस्त करने वाली यह सरस्वती हमारे यज्ञ को धारण करने वाली है ।११। यह सरस्वती विशाल ज्ञान-समुद्र को प्रकट करने वाली है। यही सब बुद्धियों को ज्ञान की ओर प्रेरित करती है ।१२। [६]

४ सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि—मधुच्छन्दा। देवता—इन्द्र। छन्द—गायत्री)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ।१। उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद्रेवतो मदः ।२। अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति ख्य आ गहि ।३। परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्। यस्ते सखिभ्य आ वरम् ।४। उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत। दधाना इन्द्र इद्दुवः ।५।७

दोहन के लिए गाय को बुलाने वाले के समान, अपनी रक्षा के लिए हम उत्तमकर्मा इन्द्र का आह्वान करते हैं ।१। हे सोमपायी इन्द्र ! सोमपान के लिए हमारे यज्ञ का सामीप्य करो। तुम ऐश्वर्यवान् प्रसन्न होकर हमको गवादि

धन देने वाले हो ।१। तुमने निकट सम्पर्क प्राप्त बुद्धिमानो के आश्रय मे रहकर हम तुम्हे जाने तुम हमारे विरुद्ध न होओ, हमे त्याग न कर तुम हमे प्राप्त हो ।३। हे मनुष्यो तुम अपराजित, कर्मवान् इन्द्र के पास जाकर अपने बान्धवो के लिए श्रेष्ठ ऐश्वर्य को प्राप्त करो ।४। इन्द्र के उपासक उसी की उपासना करते हुए इन्द्र के निन्दको को देश से दूर जाने को कहे जिससे वे दूर से भी दूर भाग जावें ।५। [७]

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ।६। एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्। पतयन्मन्दयत सखम् ।७। अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभव प्रावो वाजेषु वाजिनम् ।८ त त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो। धनानामिन्द्र सातये ।६। यो रायो ऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा। तस्मा इन्द्राय गायत ।१०।८

हे शत्रुनाशक इन्द्र ! तुम्हारे आश्रय मे रहने से शत्रु और मित्र सभी हमको ऐश्वर्यवान् बताते हैं ।६। यज्ञ को शोभित करने वाले, आनन्दप्रद, प्रसन्नता दायक तथा यज्ञ सम्पन्न करने वाले सोम को इन्द्र के लिए अर्पित करो।७। हे सैकडो यज्ञ वाले इन्द्र ! इस सोम-पान से बलिष्ठ हुए तुम दैत्यों के [illegible] हुए। इसी के बल से तुम युद्धो मे सेनाओ की रक्षा करते हो ।८। हे [illegible] इन्द्र ! युद्धो मे [illegible] ने वाले तुमको हम ऐश्वर्य के निमित्त [illegible] [illegible] ओ को दूर करने वाले यज्ञ करने [illegible] ।१०।

हे स्तुति करने वाले मित्रो ! यहाँ आकर बैठो और इन्द्र के गुणो का गान करो ।१। सब इकट्ठे होकर सोम-रस को सिद्ध करो और इन्द्र की स्तुतियाँ गाओ ।२। वह इन्द्र प्राप्त होने योग्य धन को हमें प्राप्त करावे तथा सुमति दे वह अपनी विभिन्न शक्तियो सहित हमको प्राप्त हो ।३। जिसके अश्व-जुते रथ के सम्मुख डट नही सकते, उसी इन्द्र के गीत गाओ ।४। यह शोधित सोमरस, सोमपायी इन्द्र के पीने के लिए स्वत ही प्राप्त हो जाता है ।५। (६)

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्रः ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ।६। आ त्वा विशन्त्वाशव सोमास इन्द्रगिर्वणः । शं ते सन्तु प्रचेतसे ।७। त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ।८। अक्षितोतिः सनेदिम वाजमिन्द्र सहस्रिणम् । यस्मिन् । विश्वानि पौंस्या ।९। मा नो मर्ता अभिद्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वण । ईशानो यवया वधम् ।१०।

हे उत्तमकर्मा इन्द्र ! तू सोम पान द्वारा उन्नत होने के लिए सदा तत्पर रहता है ।६। हे स्तुत्य ! यह सोमरस मेरे शरीर मे रम जाय और तुझे प्रसन्नता प्रदान करे । ज्ञानीजन तुझे सुखकारक हो ।७। हे शतकर्मा इन्द्र ! तू इन स्तोत्रमयी वाणियों से प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ वह ।८। जिसकी सामर्थ्य में कभी कमी नही आती, जिसमे सभी बलो का समावेश है, वह इन्द्र सहस्रों के पालन करने की सामर्थ्य हमको प्रदान करे ।९। हे स्तुत्य इन्द्र ! हमारे शरीरो को कोई भी शत्रु हानि न पहुँचा सके, हमारी कोई हिंसा न कर सके । तू सभी प्रकार समर्थ है ।१०। (१०)

६ सूक्त

(ऋषि—मधुच्छन्दा । देवता—इन्द्र, मरुत इन्द्रश्च । छन्द—गायत्री)

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ।१
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ।२।
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ।३।
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ।४।
वीलु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभि । अविन्द उस्रिया अनु ।५।।११

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ।३।

एन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ।४।
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ।५।१३

साम-गायकों और विद्वानों ने मन्त्रों द्वारा इन्द्र की पूजा की । हमारी वाणी भी इन्द्र का स्तवन करती है ।१। इन्द्र अपने वचन मात्र से दोनों घोड़ों को एक साथ जोड़ते हैं । वह वज्र को धारण करने वाला और सुवर्ण के समान रूपवान् है ।२। दूर तक दिखाई पड़ने के लिए इन्द्र और सूर्य को स्थापित किया और उसकी किरणें अँधेरे रूप दैत्य को मिटाया ।३। हे प्रचण्ड योद्धा इन्द्र ! तू सहस्रों प्रकार के भीषण युद्धों में अपने रक्षा-साधनों द्वारा हमारी रक्षा कर ।४। हमारे साथियों की रक्षा के लिए इन्द्र वज्र धारण करता है । वह इन्द्र हमको धन अथवा बहुत से ऐश्वर्य के निमित्त प्राप्त हो ।५।　　　　[१३]

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ।६।
तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ।७।

वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ।८।

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ।९।
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ।१०।१४।

हे वीर एवं दाता इन्द्र ! हमारे निमित्त उस मेघ को छिन्न-भिन्न कर । तुम कभी भी हमारे लिए 'नहीं' नहीं कहते ।६। वज्रित इन्द्र के दान की उपमा मुझे कहीं नहीं मिलती । उसकी अधिक उत्तम स्तुति किस प्रकार करें ? ।७। गौओं के झुण्ड में चलने वाले बैल के समान, वह सर्वेश्वर इन्द्र अपने बल से मनुष्यों को प्रेरित करते हैं ।८। वह इन्द्र पाँचों श्रेणियों के मनुष्यों और ऐश्वर्यों का एक मात्र स्वामी है ।९। साथियो ! हम तुम्हारे कल्याण के निमित्त सबके अग्र पुरुष इन्द्र का आह्वान करते हैं, वह केवल हमारे हैं ।१०।　[१

हे इन्द्र ! तुम्हारी सामर्थ्य पूर्ण उपासक के लिए सुन्दर रक्षा करने वाली और यशोदायी है ।६। इन्द्र का गुणगान और स्तुतियाँ सोम-पान के लिए गायी जाती हैं ।१०।

६ सूक्त

(ऋषि—मधुच्छन्दा । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः महाँ अभिष्टिरोजसा ।१।
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ।२।
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ।३।
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ।४।
सं चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम् असदित्ते विभु प्रभु ।५।१७

हे इन्द्र ! आओ । सोम-पान कर प्रसन्न होओ । तुम अपने बल के द्वारा पूजनीय हो ।१। इस प्रसन्नता-प्रद सोम को समस्त कार्यों और पुरुषार्थों के करने वाले इन्द्र के निमित्त सिद्ध करो ।२। हे सुन्दर रूप वाले सर्वेश्वर इन्द्र ! इस सोम के उत्सव में पधारो और स्तोत्रों से प्रसन्नता को प्राप्त हो ।३। हे इन्द्र तुम्हारे लिए जो स्तुतियां की गई हैं, वे सभी तुमको प्राप्त हुई हैं ।४। हे इन्द्र ! विभिन्न उत्तम ऐश्वर्यों को हमारी ओर प्रेरित करो । क्योंकि तुम भी पर्याप्त स्वामी हो ।५। (१७)

अस्मान्त्सु दत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ।६।
स गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवा बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम ।७।
अस्मे धेहि श्रवो बृहद्द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनी रष. ।८।
वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ।९।
सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति ।१०।१८

हे अनन्त ऐश्वर्य वाले इन्द्र ! बल-वीर्य से सम्पन्न पुरुषों को कर्म मे उचित प्रेरणा दो ।६। हे इन्द्र ! गौ, बल, आयु से पूर्ण, अमर कीर्ति को हमें प्रदान करो ।७। हे इन्द्र महान् यश, सहस्र संख्यक धन और रथों से पूर्ण ऐश्वर्य हमको दो ।८। हम ऐश्वर्य-स्वामी, स्तुत्य, गतिशील इन्द्र का स्तुति-पूर्वक धन-रक्षा के

लिए आह्वान करते हैं।६। सोम के सिद्ध करने वाले स्थान में उपासक-गण इन्द्र को बुलाते हैं।१०।   (१८)

१० सूक्त

(ऋषि – मधुच्छन्दा। देवता – इन्द्र। छन्द – अनुष्टुप्)

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे।१।
यत्सानोः सानुमारुहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति।२।
युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर।३।
एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि गृणीह्या रुव।
ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय।४।
उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सख्येषु च।५।
तमित् सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये।
स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः।६।१९

और सामर्थ्य के लिए हम इन्द्र की ही कामना करते हैं। वही इन्द्र हमको
धनवान् और बलवान् बनाता हुआ रक्षा करता है।६।

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः ।
गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥७॥
नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः ।
जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥८॥
आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः ।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥९॥
विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम् ।
वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥१०॥
आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब ।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥११॥
परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः ।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥१२॥२०

हे इन्द्र ! तुम्हारा दिया हुआ यश सब ओर फैल गया है। हे वज्रिन् !
गोशालाओं को खोलकर हमको बहुत-सा गोधन प्राप्त कराओ।७। हे इन्द्र !
आपको क्रोधितावस्था में आकाश या पृथिवी कोई भी तुमको धारण करने में
समर्थ नहीं होते। तुम आकाश से वृष्टि करो और हमको गौएँ दो।८। हे सबकी
स्तुति सुनने वाले इन्द्र ! मेरी भी सुनो। इन स्तुतियों को स्वीकार करो।
स्तोत्र को अपने मित्र से भी अधिक निकटस्थ मानो।९। हे इन्द्र ! हम जानते
हैं कि तुम महान् पुरुषार्थी हो। तुम युद्धकाल में हमारी स्तुतियों को सुनते हो।
अपनी रक्षा के लिए हम तुम्हारा आह्वान करते हैं।१०। हे
हे अभीष्टसाधक ! कुशिक के पुत्र तुम निष्पन्न सोम के पीने को यहाँ आओ। मेरी आयु की वृद्धि
करते हुए इस ऋषि को सहस्र संख्यक धन का स्वामी बनाओ।११। हे स्तुत्य
इन्द्र ! हमारी ये स्तुतियाँ तुम्हारे सब ओर व्याप्त हैं। तुम बढ़ी हुई आयु
वाले हो ... तुम्हारी प्रीति हो।१२। (२०)

हे वज्रिन् ! वृत्र की गौओं वाली गुफा के खोले जाने पर पीड़ित देवताओं ने तुमसे प्रथम प्रकार किया ।५। हे इन्द्र ! निष्पन्न सोम का गुण सबको बताकर तुम्हारे धन-दान के प्रभाव से फिर आया हूँ । हे स्तुत्य इन्द्र ! तुम्हारा सामीप्य प्राप्त करने वाले तुमको भले प्रकार जानते हैं ।६। हे इन्द्र ! तुमने अपनी माया से ही उस मायावी शुष्ण पर विजय प्राप्त की । तुम्हारी इस महिमा को जो बुद्धिमान् जानते हैं, उनकी वृद्धि करो ।७। अपने बल से संसार पर शासन करने वाले इन्द्र का स्तोताओं ने यश गान किया । वे सहस्रों प्रकार से भी अधिक ऐश्वर्यों के दाता हैं ।८। (२१)

१२ सूक्त [चौथा अनुवाक]

(ऋषि—मेधातिथि काण्व ; देवता अग्नि । छन्द गायत्री)

अग्नि दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । यज्ञस्य सुक्रतुम् ।१।
अग्निमग्निं हवीमभि सदा हवन्त विश्वपतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ।२।
अग्ने देवाँ इहा । वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्य. ।३।
ताँ उशतो वि बोधय यदग्ने यासि दूत्यम् । देवैरा सत्सि बर्हिषि: ४।
घृताहवन दीदिव: प्रतष्व परिषतो दह । अग्ने त्व रक्षस्विन: ।५।
अग्निनाग्नि: समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्य. ६।२१

हम देवदूत आह्वानकर्त्ता, सब ऐश्वर्यों के स्वामी, यज्ञ के सम्पादन करने वाले अग्नि वरण करते हैं ।१। प्रजा-पालक, हवि-वाहक, बहुतों के प्रिय अग्नि का मन्त्रों द्वारा यजमान आह्वान करते हैं ।२। हे अग्ने ! कुश बिछाने वाले यजमान के लिए प्रदीप्त हुए तुम देवताओं को बुलाओ । क्योंकि तुम हमारे पूज्य होता हो ।३। हे अग्ने ! तुम देवताओं के दौत्य कर्म में नियुक्त हो, इसलिए हव्य चाहने वाले देवों को बुलाओ और उनके साथ इस कुशासन पर प्रतिष्ठित होओ ।४। हे देदीप्यमान अग्ने ! तुम घृत से प्रदीप्त हुए, हमारे शत्रुओं को भस्म करो ।५। मेधावी, गृह रक्षक, हवि-वाहक, और जुहू मुख वाले अग्नि को अग्नि से ही प्रज्वलित करते हैं ।६। (२१)

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे। देवममीवचातनम् ।७।
यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति। तस्य स्म प्राविता भव ।८।
यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति। तस्मै पावक मृळय ।९।
स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह। उप यज्ञं हविश्च नः ।१०।
स न स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा रयिं वीरवतीमिषम् ।११।
अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः इमं स्तोमं जुषस्व नः ।१२।

मेधावी, सत्यनिष्ठ, शत्रुनाशक अग्नि की यज्ञ-कर्म मे निकट मे स्तुति करो ।७। हे अग्ने ! तुम देवदूत की जो यजमान सेवा करता है, उसकी तुम रक्षा करने वाले होओ ।८। हे पावक ! जो यजमान हवि देने के लिए अग्नि के समीप जाकर उपासना करे उसका कल्याण करो ।९। हे पवित्र अग्नि ! तुम प्रदीप्त हुए हमारे यज्ञ मे हवि ग्रहण करने के लिए देवताओ को यहाँ लाओ ।१०। हे अग्ने ! नवीन स्तोत्रो से स्तुति किये जाते तुम हमको धन पुत्र और अन्न के प्रदाता बनो ।११। हे अग्ने ! तुम कान्तिमान् और देवताओ को बुलाने मे समर्थ हो। हमारे इस स्तोत्र को स्वीकार करो। १२। (२३)

१३ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथि काण्व। देवता - अग्नि प्रभृति। छन्द—गायत्री)

सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते। होतः पावक यक्षि च ।१।
मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे। अद्या कृणुहि वीतये ।२।
नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उपह्वये। मधुजिह्वं हविष्कृतम् ।३।
अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह। असि होता मनुर्हितः ।४।
स्तृणीत बर्हिरानुषग्घृतपृष्ठं मनीषिणः। यत्रामृतस्य चक्षणम् ।५।
वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः। अद्या नूनं च यष्टवे ।६।४

हे समिद्ध हुए अग्निदेव ! हमारे यजमान के निमित्त देवताओ को यज्ञ मे लाकर उनका पूजन कराओ ।१। हे मेधावी अग्ने ! तुम शरीर की रक्षा करने वाले हो, हमारे यज्ञ को देवताओं के उपभोग के लिए उत्तम

इन्द्रवायु बृहस्पतिं मित्राग्नि पूषणं भगम् । आदित्यान् मारुतं गणम् ।३।
प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः । द्रप्सा मध्वश्चमूषदः ।४।
ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः । हविष्मन्तो अरङ्कृतः ।५।
घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः । आ देवान्त्सोमपीतये ।६।२६

हे अग्ने ! इन देवताओं को साथ लेकर सोम पीने के लिए आओ। हमारी पूजा और स्तुतियाँ तुम्हें प्राप्त हों। हमारे यज्ञ में देवताओं की पूजा करो ॥१॥ हे अग्ने ! तुमको कण्व वंशी बुलाते रहे हैं। वे अब भी तुम्हारे गुण गाते हैं। तुम देवताओं के सहित आओ ॥२॥ इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा, भग, आदित्य और मरुद्गण का आह्वान करो ॥३॥ तृप्त करने वाले प्रसन्नता पात्रों में ढके हुए बिन्दु रूप सोम यहाँ उपस्थित हैं ॥४॥ कण्व वंशी तुमसे रक्षा याचना करते हुए, कुश बिछाकर हव्यादि सामग्री से युक्त हुए तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥५॥ तुम्हारी इच्छा मात्र से रथ में जुड़ने वाले अश्व तुम्हें ले जाते हैं। ऐसे तुम सोम-पान के निमित्त यहाँ आओ ॥६॥ [२६]

तानयजत्राँ ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि । मध्वः सुजिह्व पायय ।७।
ये यजत्रा य ईड्यास्ते ते पिबन्तु जिह्वया । मधोरग्ने वषट्कृति ।८।
आकीं सूर्यस्य रोचनाद् देवाँ देवा उषर्बुधः । विप्रो होतेह वक्षति ।९।
विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना । पिबा मित्रस्य धामभिः ।१०।
त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि । सेमं नो अध्वरं यज ।११।
युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः । ताभिर्देवाँ इहा वह ।१२।१७।

हे अग्ने ! उन पूज्य तथा यज्ञ को बढ़ाने वाले देवताओं को पत्नी सहित मधुर सोम-रस का पान कराओ ॥७॥ हे अग्ने ! पूज्य और स्तुत्य देवगण तुम्हारी जिह्वा के द्वारा मधुर सोम-रस का पान करें ॥८॥ हे मेधावी अग्नि रूप होता ! प्रातःकाल जगने वाले विश्वेदेवताओं को सूर्यमण्डल से पृथक कर यहाँ ले आओ ॥९॥ हे अग्ने ! तुम, मित्र इन्द्र, वायु के तेज के सहित, सोम-रस का पान करो ॥ १० ॥ हे अग्ने ! हमारे द्वारा प्रतिष्ठित होता

रूप तुम यज्ञ में विराजमान होते हो । अतः इस यज्ञ को सम्पन्न करो ॥११॥ हे अग्ने ! तुम स्वर्णिम और रक्त वर्ण वाले अश्वों को अपने रथ में जोड़कर देवताओं को यज्ञ में ले आओ ॥१२॥ (२७)

१५ सूक्त

(ऋषि-मेधातिथिः काण्वः । देवता—ऋतव प्रभृति । छन्द—गायत्री)

इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विशन्त्विन्दवः । मत्सरासस्तदोकसः ।१।
मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन । यूयं हि ष्ठा सुदानवः ।२।
अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना । त्वं हि रत्नधा असि ।३।
अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिब ऋतुना ।४।
ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु । तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ।५।
युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम् । ऋतुना यज्ञमाशाथे ।६।२८

हे इन्द्र ! ऋतु सहित सोम पान करो । यह सोम तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट होकर तृप्ति के साधन बनें ॥१॥ हे मरुद्गणो ! ऋतु के सहित पोतापात्र से सोम पान करो । तुम कल्याणदाता मेरे यज्ञ को पवित्र करो ॥२॥ हे त्वष्टा देव-पत्नियों सहित हमारे यज्ञ की भले प्रकार प्रशंसा करो और ऋतु सहित सोम पान करो । तुम अवश्य ही रत्नों के देने वाले हो ॥३॥ हे अग्ने ! देवताओं को यहाँ लाकर तीनों यज्ञ-स्थानों में बैठाओ । उनको विभूषित करते हुए सोम-पान करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! ब्रह्मणाच्छंसि के पात्र से ऋतुओं के अनुसार सोम-पान करो । क्योंकि तुम्हारी मित्रता कभी टूटती नहीं ॥ ५ ॥ हे अटल व्रत वाले मित्र वरुण ! दोनों कर्मों में शीघ्र दृढ़ ऋतु के सहित हमारे यज्ञ में आते हो ॥६॥ (२८)

द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे । यज्ञेषु देवमीळते ।७।
द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे । देवेषु ता वनामहे ।८।
द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ।९।
यत्त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे । अध स्मा नो ददिर्भव ।१०।
अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता । ऋतुना यज्ञवाहसा ।११।

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि । देवान् देवयते यज ।१२।२६

धन की इच्छा वाले यजमान सोम तैयार करने के लिए पाषाण धारण कर धनदाता अग्नि की पूजा करते है ॥ ७ ॥ हे द्रविणोदा अग्ने ! हमको सभी सुने गये धनो को दो, हम उन धनो को देवार्पण करते है ॥८॥ वह धनदाता अग्नि सोम-पान के इच्छुक हैं । उन्हे आहुती दो और अपने स्थान को प्राप्त होओ । शीघ्रता करो । ऋतुओ सहित नेष्टा के पात्र से सोम पिलाओ ॥ ९ ॥ हे धनदाता ! ऋतुओ सहित आपको चतुर्थ बार अर्पित करते है । तुम हमारे लिये धन प्रदान करने वाले होओ ॥ १० ॥ अग्नि से प्रकाशित, नियमो मे दृढ, ऋतु के साथ यज्ञ के निर्वाहक अश्विनीकुमारो ! इस मधुर सोम का पान करो ॥ ११ ॥ हे दाता अग्ने ! तुम ऋतु के साथ-साथ घर के पालक यज्ञ का निर्वाह करने वाले हो । इन देवताओ की कामना करने वाले यजमान के लिए देवार्चन करो ॥१२॥ (२६)

१६ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथि काण्व देवता—इन्द्रावरुणौ छन्द—गायत्री)

आ त्वा वहन्तु हरयो वृषण सोमपीतये । इन्द्र त्वा सूरचक्षस ।१।
इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षत । इन्द्र सुखतमे रथ ।२।
इन्द्र प्रातर्हवामह इन्द्र प्रयत्यध्वरे । इन्द्र सोमस्य पीतये ।३।
उप न: सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभि: । सुते हि त्वा हवामहे ।४।
सेमं न: स्तोममा गह्युपेद सवन सुतम् । गौरो न तृषित पिब।५।३०

हे अभीष्ट वर्षक इन्द्र ! तुम अपने प्रकाशित रूप वाले अश्वो को सोम-पान के लिये यहाँ लाओ ॥ १ ॥ इन्द्र के दोनो घोड़े उन्हे सुखदायक रथ से विस्तार घी से स्निग्ध धान्य के निकट ले आवें ॥२॥ हम उषाकाल मे इन्द्र का आह्वान करते है । यज्ञ-सम्पादन काल मे सोम-पान करने को इन्द्र का आह्वान करते है ॥३॥ हे इन्द्र ! अपने लम्बे केश वाले अश्वो के साथ यहाँ आओ । सोमरस छनकर तैयार हो जाने पर हम तुम्हारा आह्वान करते है ॥४॥ हे इन्द्र ! इस सोम-रस के लिए हमारे स्तोत्रो से यहाँ आकर प्यासे मृग के समान सोम पान करो ।

[३०

इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि । तां इन्द्र सहसे पिब ।६।
अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शंतमः । अथा सोमं सुतं पिब ।७।
विश्वमित्सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति । वृत्रहा सोमपीतये ।८।
सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो । स्तवाम त्वा स्वाध्यः ।९।३१

हे इन्द्र ! यह परम शक्ति वाले, निष्पन्न सोम कुशासन पर रखे हैं, तुम उन्हें शक्ति-वर्द्धन के निमित्त पिओ ।।६।। हे इन्द्र ! यह श्रेष्ठ स्तोत्र मर्मस्पर्शी और सुख का कारणभूत है । तुम इसे सुनकर तुरन्त ही इन निष्पन्न सोम का पान करो ।।७।। जहाँ सोम छाना जाता है वहाँ सोम पान के निमित्त उससे उत्पन्न प्रसन्नता प्राप्ति के लिए दुष्टों को मारने वाले इन्द्र अवश्य पहुँचते है ।।७।। हे महाबली इन्द्र ! गाय और अश्वादि युक्त धनों वाली हमारी सब कामनाएँ पूर्ण करो । हम ध्यानपूर्वक तुम्हारा स्तवन करते हैं ।।९।। [३१]

१७, सूक्त

(ऋषि - मेधातिथि काण्व । देवता — इन्द्रावरुणौ । छन्द — गायत्री)

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजो रआ वृणे । ता नो मृलात ईदृशे ।१।
गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः । धर्तारा चर्षणीनाम् ।२।
अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ । ता वां नेदिष्ठमीमहे ।३।
युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् । भूयाम वाजदाव्नाम् ।४।
इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् । क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ।५।३२

मैं, सम्राट् इन्द्र और वरुण से रक्षा चाहता हूँ । वे दोनों हम पर कृपा करें ।।१।। तुम मनुष्यों के स्वामी ! हम ब्राह्मणों के बुलाने पर रक्षा के लिए अवश्य आओ ।।२।। हे इन्द्र और वरुण ! हमको अभीष्ट धन देकर सन्तुष्ट करो । हम तुम्हारा सामीप्य चाहते है ।। ३ ।। बल तथा सुबुद्धि प्राप्ति की इच्छा से हम तुम्हारी कामना करते हैं ! हम अन्न दान करने वालों में आगे रहें ।।४।। सहस्रों धनदाताओं में इन्द्र ही श्रेष्ठ है और स्तुति ग्रहण करने वालों में वरुण श्रेष्ठ है ।।५।। [३२]

तयोरिदवसा वय सनेम नि च धीमहि । स्यादुत्त प्ररेचनम् ।६।
इन्द्रावरुण वामह हुवे चित्राय राधसे । अस्मान्त्सु जिग्युपस्कृतम् ।७।
इन्द्रावरुण नू नु वां सिपासन्तीषु धीष्वा । अस्मभ्य शर्म यच्छतम् ।८।
प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण या हुवे । याभृधाथे सधस्तुतिम ।९।३३

उनकी रक्षा से हम धन को प्राप्त कर उसका उपभोग करें। वह धन प्रचुर परिमाण में सचित हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! विभिन्न प्रकार के धनों के लिए तुम्हारा आह्वान करते है। हमको भले प्रकार जय लाभ कराओ ॥ ७ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! तुम दोनो स्नेह भाव रखते हुए हमको अपना आश्रय प्रदान करो ॥८॥ हे इन्द्र और वरुण ! जो सुन्दर स्तुति तुम्हारे निमित्त करता हूँ और जिस स्तुति की तुम पुष्टि करते हो, उन स्तुतियो को ग्रहण करो ॥९॥ [३३]

१८ सूक्त

(ऋषि-मेधातिथि काण्व । देवता-ब्रह्मणस्पति । छन्द—गायत्री ।

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्त य औशिज ।१।
यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित पुष्टिवर्धनः । स न सिषक्तु यस्तुर.।२।
मा नः शसो अररुषो धूर्ति. प्रणङ् मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ।३।
स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पति. सोमो हिनोति मर्त्यम्।४।
त्व तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् । दक्षिणा पात्वंहसः ।५।३४

हे ब्रह्मणस्पते ! मुझ सोम निचोड़ने वाले को उशिज के पुत्र कक्षीवान् के समान प्रसिद्धि प्रदान करो ॥१॥ धनवान् रोगनाशक, धनो के ज्ञाता, पुष्टि—वर्द्धक, शीघ्र फल देने वाले ब्रह्मणस्पति हम पर कृपा करें ॥२॥ नास्तिक हमको वश मे न कर सकें। हम मरणधर्मा प्राणी हिंसित न हो अत हे ब्रह्मणस्पते ! हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥ इन्द्र, सोम और ब्रह्मणस्पति द्वारा प्रेरणा प्राप्त मनुष्य कभी दुःखित नहीं होता ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मणस्पते ! तुम सोम, इन्द्र और दक्षिणा उस मनुष्य की पापों से रक्षा करो। [३४]

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनि मेधामयासिषम् ।६।
यस्माद्दृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वती ।७।
आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् । होत्रा देवेषु गच्छति ।८।
नराशंसं सुधृष्टमपश्यं सप्रथस्तमम । दिवो न सद्ममखसम् ।९।३५

अद्भुत रूप वाले, इन्द्र के प्रिय तथा पालक अग्नि, से धन और सुमति की याचना करता हूं ॥६॥ जिसकी कृपा के विना ज्ञानी का यज्ञ पूर्ण नहीं होता, वह अग्नि हमको उचित प्रेरणा देते हैं ॥७॥ अग्नि ही हवियों को प्राप्त समृद्ध कर यज्ञ की वृद्धि करते है । यजमान की स्तुतिया देवताओ को प्राप्त होती है ॥८॥ प्रतापी, विख्यात तथा यशस्वी मनुष्यो द्वारा स्तुति किये और पूजे गये अग्नि को मैंने देखा है ॥९॥ (३५)

१९ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथि काण्वः । देवता—अग्नि और मरुत छन्द—गायत्री ।

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ।१।
नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः । मरुद्भिरग्न आ गहि ।२।
ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः । मरुद्भिरग्न आ गहि ।३।
य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ।४।
ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः । मरुद्भिरग्न आ गहि ।५।३६

हे अग्नि ! उस सुशोभित यज्ञ मे सोम पीने के लिए तुम्हारा आह्वान करता हूँ । मरुद्गणों के साथ यहाँ आओ ॥१॥ हे अग्ने ! तुम्हारे समान कोई देवता या मनुष्य महान नहीं है, जो तुम्हारे बल की समता कर सके । तुम मरुतों के साथ पधारो ॥ २ ॥ जो विश्वेदेवा किसी से वैर नहीं रखने और महान् अन्तरिक्ष के ज्ञाता हैं, हे अग्ने ! उनके साथ आओ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! जिन उग्र और अजेय, बलशाली मरुतों ने वृष्टि की थी [illegible] हुये उन मरुतों के साथ यहाँ आओ ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! जो शोभा

युक्त और उग्र रूप धारण करने वाले हैं जो बहुत बलशाली और शत्रुओं के संहारकर्ता हैं, उन्हीं मरुद्गणों के साथ आओ ॥५॥   (३६)

ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते । मरुद्भिरग्न आ गहि ।६।
य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् । मरुद्भिरग्न आ गहि ।७।
आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ।८।
अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु । मरुद्भिरग्न आ गहि ।९।३७

हे अग्ने ! स्वर्ग से ऊपर प्रकाशित लोक में जिन मरुतों का निवास है उन्हें साथ लेकर आओ ॥६॥ हे अग्ने ! बादलों का सञ्चालन करने वाले और जल को समुद्र में गिराने वाले मरुतों के साथ यहाँ पधारो ॥७॥ हे अग्ने ! सूर्य किरणों के साथ सर्वत्र व्याप्त और समुद्र को बलपूर्वक चलायमान करने वाले मरुतों के साथ पधारो ॥८॥ हे अग्ने ! आपके पीने के लिए मधुर सोम रस प्रस्तुत कर रहा हूँ । अतः तुम मरुतों के साथ आओ ॥९॥   (३७)

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥

२० सूक्त [पाँचवा अनुवाक]

(ऋषि—मेधातिथि काण्व । देवता—ऋभव छन्द—गायत्री)

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया । अकारि रत्नधातमः ।१।
य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी । शमीभिर्यज्ञमाशत ।२।
तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम् तक्षन्धेनुं सबर्दुघाम ।३।
युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः ऋभवो विष्ट्यक्रत ।४।
सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता । आदित्येभिश्च राजभिः ।५।

यह स्तोत्र विद्वानों ने ऋभु देवों के निमित्त रत्नोत्कृष्ट छन्द से रचा है ॥ १ ॥ जिन ऋभुओं ने अपने मन, से इन्द्र के वचन मात्र से जुड़ जाने वाले अश्वों की रचना की, वे हमारे यज्ञ में स्वतः हो व्याप्त हैं ॥२॥ उन्होंने अश्विनीकुमारों के लिए सुख देने वाले रथ की रचना की तथा दूध देने वाली धेनु को बनाया ॥ ३ ॥ सत्यमन्त्र, सरल स्वभाव वाले, ऋभुओं

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषम् ॥६॥
यस्माहृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वति ॥७॥
आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् । होत्रा देवेषु गच्छति ॥८॥
नराशंसं सुधृष्टमपश्यं सप्रथस्तमम । दिवो न सद्ममखसम् ॥९॥३५

अद्भुत रूप वाले, इन्द्र के प्रिय तथा पालक अग्नि, से धन और बुद्धि की याचना करता हूँ ॥६॥ जिसकी कृपा के बिना ज्ञानी का यज्ञ पूर्ण नहीं होता, वह अग्नि हमको उचित प्रेरणा देते हैं ॥७॥ अग्नि ही हवियों को पूर्ण समृद्ध कर यज्ञ की वृद्धि करते है। यजमान की स्तुतियां देवताओं को प्राप्त होती है ॥८॥ प्रतापी, विख्यात तथा यशस्वी मनुष्यों द्वारा स्तुति किये और पूजे गये अग्नि को मैंने देखा है ॥९॥ (३५)

१९ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथि काण्व । देवता—अग्नि और मरुत् । छन्द—गायत्री ।

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥१॥
नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥२॥
ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥३॥
य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥४॥
ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥५॥१

ड और उग्र रूप धारण करने वाले हैं जो बहुत बलशाली और शत्रुओं के
ारकर्ता हैं, उन्हीं मरुद्गणों के साथ आओ ॥५॥ (३६)

नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते । मरुद्भिरग्न आ गहि ।६।
ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिर समुद्रमर्णवम् । मरुद्भिरग्न आ गहि ।७।
ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिर समुद्रमोजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ।८।
भि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्य मधु । मरुद्भिरग्न आ गहि ।९।३७

हे अग्ने ! स्वर्ग से ऊपर प्रकाशित लोक में जिन मरुतों का निवास है,
न्हें साथ लेकर आओ ॥६॥ हे अग्ने ! बादलों का सचालन करने वाले और
ल को समुद्र में गिराने वाले मरुतों के साथ यहाँ पधारो ॥७॥ हे अग्ने !
र्य किरणों के साथ सर्वत्र व्याप्त और समुद्र को बलपूर्वक चलायमान करने
ाले मरुतों के साथ पधारो ॥८॥ हे अग्ने ! आपके पीने के लिए मधुर सोम
रस प्रस्तुत कर रहा हूँ । अतः तुम मरुतों के साथ आओ ॥९॥ (३७)

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥

२० सूक्त [पाँचवा अनुवाक]

(ऋषि—मेधातिथि काण्व । देवता—ऋभव. छन्द—गायत्री)

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया । अकारि रत्नधातमः ।१।
य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी । शमीभिर्यज्ञमाशत ।२।
तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम् तक्षन्धेनुं सबर्दुघाम ।३।
युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः । ऋभवो विष्ट्यक्रत ।४।
स वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता । आदित्येभिश्च राजभिः ।५।१

यह स्तोत्र विद्वानों ने ऋभु देवों के निमित्त रमणीक छन्द में रचा है
॥ १ ॥ जिन ऋभुओं ने अपने मन से इन्द्र के वचन मात्र से जुत जाने वाले
अश्वों की रचना की, वे हमारे यज्ञ में स्वतः ही व्याप्त हैं ॥२॥ उन्होंने
अश्विनीकुमारों के लिए सुख देने वाले रथ की रचना की दूध रूप अमृत
देने वाली धेनु को बनाया ॥ ३ ॥ सत्यशाय, सरल स्वभाव वाले, स्नेही,

निः स्वार्थी ऋभुओं ने अपने माता पिता को पुनः युवावस्था दी ।४। हे इन्द्र! मरुद्गण और आदित्य के सहित तुम्हारे निमित्त यह सोम रस प्रस्तुत है। ॥ ५ ॥　　　　[१]

उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् । अकर्त चतुरः पुनः ।६।
तेनो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते । एकमेकं सुशस्तिभिः ।७।
अधारयन्त वह्नयोऽभजंत सुकृत्यया । भागं देवेषु यज्ञियम् ।८।

त्वष्टा ने जो नया चमस पात्र प्रस्तुत किया था, ऋभुओं ने उसके स्थान पर चार चमस बना दिए ॥ ६ ॥ वे उत्तम प्रकार से स्तुति किये जाते हुए ऋभुगण सोम सिद्ध करने वाले यजमान को एक-एक कर इक्कीस रत्न प्रदान करें ॥७॥ ऋभुगण अविनाशी आयु प्राप्त कर देवताओं के मध्य रहते हुए यज्ञ-भाग प्राप्त करते है ॥८॥　　　　[२]

२१ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथि काण्व । देवता—इन्द्र और अग्नि । छन्द गायत्री)

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित्स्तोममुश्मसि । ता सोमं सोमपातमा ।१।
ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः । ता गायत्रेषु गायत ।२।
ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे । सोमपा सोमपीतये ।३।
उग्रा संता हवामह उपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ।४।
ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् । अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ।५।
तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ६।३

इन्द्र और अग्नि का इस यज्ञ-स्थान में आह्वान करता हूँ । उन्हीं का स्तवन करता हुआ सोम-पान के लिए दोनों से निवेदन करता हूँ ॥१॥ हे मनुष्यों ! इन्द्र और अग्नि का स्तवन करो, उन्हें अलंकृत कर स्तोत्र गान करो ॥२॥ इन्द्र और अग्नि को मित्र की प्रशंसा के लिए तथा सोम-पान करने के लिए आमन्त्रित करते हैं ॥ ३ ॥ उग्र देव इन्द्र और अग्नि का सोम-याग में आह्वान करते हैं । वे दोनों यहाँ पधारें ॥ ४ ॥ हे महान, सभा

गर्भ की स्तुति करो। वे अत्यन्त सुशोभित हैं ॥८॥ हे अग्ने ! अभिलाषा करने वाली देव पत्नियों को यज्ञ में लाओ। सोमपान के लिये त्वष्टा को यहाँ लाओ ॥९॥ हे युवावस्था प्राप्त अग्ने ! हमारे रक्षण के लिये होत्रा, भारती, वरूत्री और धिषणा देवियों को यहाँ लाओ ॥१०॥

अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः ।
अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥११॥

इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये । अग्नायीं सोमपीतये ॥१२॥

मही द्यौ पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।
पिपृतां नो भरीमभिः ॥१३॥

तयोरिद् घृतवत्पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥१४॥

स्योना पृथिवी भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥१५॥

वीर पत्नी द्रुतगामिनी देवियाँ अपार रक्षण-सामर्थ्यों से हमको आश्रय प्रदान करें ॥११॥ अपने मङ्गल के लिये इन्द्राणी, वरुण पत्नी और अग्नि की पत्नी का सोम पीने के लिये आह्वान करता हूँ ॥१२॥ महान् आकाश और पृथिवी ऐसे यज्ञ को सींचने की कामना करते हुए हमको पोषण सामर्थ्य प्रदान करें ॥१३॥ आकाश, पृथिवी के मध्य गन्धर्वों के स्थान में ज्ञानी जन ध्यान से घी के समान जल पीते हैं ॥१४॥ हे पृथिवी ! तू सुखदायिनी बाधारहित और उत्तम बास देने वाली हो तथा हमको आश्रय प्रदान कर ॥१५॥

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥१६॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूहलमस्य पांसुरे ॥१७॥

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः
अतो धर्माणि धारयन् ॥१८॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१९॥

है। वे पवित्र और दाता हैं ॥ ४ ॥ सत्य में यज्ञ को बढ़ाने वाले के ज्ञापक मित्र और वरुण का मैं आह्वान करता हूं।

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः करतां नः सुराधसः ।६।
मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये । सजूर्गणेन तृम्पतु ।७।
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः विश्वे मम श्रुता हवम् ।८।
हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा । मानो दुःशंस ईशत ।६।
विश्वान्देवान्हवामहे मरुतः सोमपीतये । उग्रा हि पृश्निमातरः ।१०।६

वरुण मेरे रक्षक हों, मित्र भी रक्षा करें और ये दोनों मुझे धनवान बना दें ॥६॥ मरुतों के सहित इन्द्र का हम आह्वान करते हैं। वे सोमपान के लिये यहाँ आकर तृप्त हों ।७। पूषा दाता हैं और इन्द्र दाताओं के मुख्य हैं। ये मरुद्गण हमारे आह्वान को सुनें ॥८॥ हे सुशोभित दानी मरुतो! तुम बली और सहायक इन्द्रके सहित शत्रुओं को नष्ट कर डालो। कहीं दुष्ट लोग हम पर शासन न करने लगें ॥ ६ ॥ सब मरुत नाम वाले देवों को हम सोम पान के लिये बुलाते हैं। वे उग्र और अन्तरिक्ष की संतान है ॥१०॥　[६]

जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया । यच्छुभं याथना नरः ।११।
हस्काराद्विद्युतस्पर्यतो जाता अवन्तु नः । मरुतो मृलयन्तु नः ।१२।
आ पूषञ्चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः आजा नष्टं यथा पशुम् ।१३।
पूषा राजानमाघृणिरपगूलहं गुहा हितम् । अविन्दच्चित्रबर्हिषम् ।१४।
उतो स मह्यमिन्दुभिः षड्युक्ताँ अनुसेषिधत् ।
गोभिर्यवं न चर्कृषत् ।१५।१०

मरुतों का गर्जन विजय-नाद के समान है, उससे मनुष्यों का मङ्गल होता है ॥११॥ विद्युत के प्रकाश पर हँसमुख (सूर्य) से उत्पन्न मरुद्गण हमारे रक्षक हों और हमारा कल्याण करें ॥१२॥ हे दीप्तियुक्त पूषा! जैसे खोये हुये पशु को ढूंढ लाते हैं, वैसे ही तुम कुशा से युक्त, यज्ञ धारक सोम को ले आओ ॥ १३ ॥ सब ओर से प्रकाशित पूषा ने गुफा में छिपे

हुए कुशयुक्त राजा सोम को प्राप्त किया ॥ १४ ॥ वह पूषा सुघटित छःओ ऋतुओं को सोमों द्वारा प्राप्त करता रहे, जैसे किसान जौ को बार-बार प्राप्त करता है ॥१५॥ [१०]

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् । पृञ्चतीर्मधुना पयः ।१६।
अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ।१७।
अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः । सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ।१८।
अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये । देवा भवत वाजिनः ।१९।

यज्ञ की इच्छा करने वालों का मातृ-भूत जल हमारा बन्धु रूप है और वह दूध को पुष्ट करता हुआ यज्ञ-मार्ग से चलता है ॥१६॥ जो जल सूर्य के पास स्थित है अथवा सूर्य जिनके साथ हैं वे हमारे यज्ञ को सींचें ॥ १७ ॥ जिन जलों को हमारी गौऐं पीती हैं उन जलों को हम चाहते हैं। जो जल बह रहा है, उसे हवि देनी है ॥१८॥ जलों में अमृत है जलों में औषध है जलों की प्रशंसा से उत्साह प्राप्त करो ॥१९॥ सोम के कथनानुसार जल ही औषधि-तत्व है। उसने सर्व सुखदाता अग्नि और आरोग्यता देने वाले जलों का गुण वर्णन किया है ॥२०॥ [११]

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम । ज्योक् सूर्यं दृशे ।२१
इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ।२२।
आपः अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सृज वर्चसा ।२३।
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः ।२४।१२

हे जलो ! चिरकाल तक सूर्य-दर्शन के निमित्त, निरोग रहने के लिए शरीर-रक्षक औषध को मेरी देह में स्थित करो ॥ २१ ॥ जलो ! मुझ में

स्थित पाप को बहा दो । मेरे द्रोह-भाव, अपशब्द और मिथ्याचरण को प्रवाहित करो ।२२। आज मैंने जलों को पाया है । उन्होंने मुझे रसयुक्त किया है । हे अग्ने ! जलों के सहित आकर मुझे तेजस्वी बनाओ ।२३। हे अग्ने ! मुझे तेजस्वी करो । प्रजा और आयु से युक्त करो देवगण, ऋषिगण और इन्द्रदेव मेरे स्तवन को जान लें ।२४।   (२४)

२४ सूक्त [छठा अनुवाक]

(ऋषि—शुन शेप आजीगर्ति, कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरात । देवता-प्रजापति प्रभृति । छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री ।)

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ।१।
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ।२।
अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम् । सदावन्भागमीमहे ।३।
यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः । अद्वेषो हस्तयोर्दधे ।४।
भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा । मूर्धानं राय आरभे ।५।१३

मैं किस देवता के सुन्दर नाम का उच्चारण करूँ ? कौन मुझे महती अदिति को देगा, जिससे मैं पिता और माता को देख सकूँ ॥१॥ अमरत्व प्राप्त देवताओं में सर्व प्रथम अग्नि का नामोच्चार करें । वह मुझे महती अदिति को देवें और मैं पिता माता को देख पाऊँ ॥ २ ॥ हे सतत रक्षणशील एवं वरणीय धनों के स्वामी सविता देव ! तुमसे हम सभी ऐश्वर्यों की साधना करते हैं ॥ ३ ॥ हे सूर्य ! सत्य, अनिन्द्य, स्तुत्य, द्वेष रहित तथा सेवनीय धन को तुम धारण करने वाले हो ॥४॥ हे ऐश्वर्यशाली सूर्य ! तुम्हारी रक्षा में आश्रित हुए हम तुम्हारे सेवक ऐश्वर्य-साधनों की वृद्धि में लगे रहते हैं । आप हमारी रक्षा करें ॥५॥   (१३)

नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः ।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ।६।

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः ।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ।७।
उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ।८।
शतं ते राजन्भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ।९।
अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः ।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ।१०।१४।

हे वरुण ! तुम्हारे अखण्ड राज्य, बल और क्रोध को यह उड़ते हुए पक्षी नहीं पहुँच पाते। निरन्तर चलते हुए और वायु को प्रबल वेग भी तुम्हारी गति को नहीं रोक पाता ।६। पवित्र पराक्रमयुक्त वरुण आकाश के ऊपर की ओर तेज समूह को स्थापित करते हैं। इस तेज समूह का मुख नीचे और जड़ ऊपर है। यह हमारे भीतर स्थिर होकर बुद्धि रूप से वास करें ।७। वरुण ने सूर्य के गमन करने के लिये विस्तृत मार्ग बनाया है तथा निराश्रय आकाश में सूर्य के पाव रखने की व्यवस्था की। वे वरुण मेरे हृदय को कष्ट देने वाले को भी हटाने में समर्थ है ।।८।। हे वरुण तुम्हारे पास असख्य उपाय हैं। तुम्हारी कल्याण बुद्धि गम्भीर और दूर तक जाने वाली है। तुम पाप के बल को नष्ट करो। किये हुये हमारे पापों से हमको छुड़ाओ ।९। यह तारेरूप सप्तर्षि उन्नत स्थान में बैठे हुए रात्रि में दीखते थे। वे दिन में कहां विलीन हो गये ? चन्द्रमा भी रात्रि में ही प्रकाशित होता हुआ चलता है। वरुण के नियम अटल हैं ।१०।   [१४]

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेलमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ।११।
तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।
शुनःशेपो यमह्वद्गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ।१२।
शुनःशेपो ह्यह्वद्गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः ।

अवंन राजा वरुण ममृज्याद्विद्वां अदब्धो विमुमोक्तु पाशान् ॥१३॥
अव ते हेलो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥१४॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥१५॥१५

हे वरुण ! मन्त्रयुक्त वाणी से स्तवन करता हुआ तुमसे ही याच करता हूँ । हवि वाला यजमान, क्रोध न करने की आप से प्रार्थना करता हु आयु माँगता है ॥ ११ ॥ रात और दिन यही बात मेरे हृदय में उठती है कि बन्धन में पड़े शुनः शेप ने वरुण को बुलाया था, वह हमको भी बन्धन से मुक्त करें ॥१२॥ पकड़े जाकर काठ के तीन खम्भों से बाँधे गये शुन: शेप ने अदिति पुत्र वरुण का आह्वान किया । वे वरुण विद्वान् और क धोखा न खाने वाले हैं । वे मेरे पाशों को काट कर मुक्त करें ॥१३॥ । वरुण ! हमारे स्तुति वचनों से अपने क्रोध का निवारण करो । तुम प्रख वृद्धि वाले हमारे यहाँ वास करते हुए हमारे पापों के बन्धन को ढीला करो ॥१४॥ हे वरुण ! हमारे ऊपर के पास को ऊपर और नीचे के पाश को नीचे खींचकर, बीच के पाश को काट डालो । हम तुम्हारे नियम में चलते हुये निरपराध रहें ॥१५॥

२५ सूक्त

[१५]

(ऋषि—शुन.शेप आजीगर्ति देवता—वरुण । छन्द – गायत्री)

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् । मिनीमसि द्यविद्यवि ॥१॥
मा नो वधाय हत्नवे जिहीलानस्य रीरधः मा हृणानस्य मन्यवे ॥२
वि मृलीकाय ते मनो रथीरश्वं न सन्दितम् । गीर्भिर्वरुण सीमहि ॥३॥
परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये । वयो न वसतीरुप ॥४॥
कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे । मृलीकायोरुचक्षसम् ॥५॥१६॥

हे वरुण ! जैसे तुम्हारे व्रतानुष्ठान में मनुष्य प्रमाद करते हैं, वैसे ही हम भी तुम्हारे नियमादि का उल्लङ्घन कर बैठते हैं ॥१॥ हे वरुण ! निरा-

दूर करने वाले को दण्ड उसकी हिंसा है। हमको वह दण्ड मत दो हम पर क्रोध न करो।२। हे वरुण! स्तुतियों द्वारा हम आपकी कृपा चाहते हैं। उसी प्रकार जैसे अश्व का स्वामी उसके घावों पर पट्टियां बांधता है।३। घोंसलों की ओर दौड़ने वाली चिड़ियाओं के समान हमारी क्रोध रहित बुद्धियां धन-प्राप्ति के लिये दौड़ती हैं।४। अखण्ड ऐश्वर्य वाले दूरदर्शी वरुण की कृपा प्राप्त के लिये कर उन्हें अपने अनुष्ठान में ले आवेंगे।५६। [१६]

तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्रयुच्छतः। धृतव्रताय दाशुषे।६।
वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। वेद नावः समुद्रियः।७।
वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते।८।
वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते।९।
नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या स्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः।१०।१७।

हवि की इच्छा वाले मित्र वरुण, निष्ठावान यजमान की साधारण हवि को भी नहीं त्यागते।६। हे वरुण! आप उड़ने वाले पक्षियों के आकाश मार्ग और समुद्र के नौका मार्गों के पूर्ण ज्ञाता हैं।७। वे धृत-नियम वरुण, प्रजाओं के उपयोगी बारह मासों को तथा तेरहवें अधिक मास को भी जानते हैं।८। वे मूर्धा रूप से स्थित, विस्तृत, उन्नत, महान वायु के मार्ग को भले प्रकार जानते हैं।९। नियमों में दृढ़, सुन्दर प्रज्ञावन वरुण प्रजाजनों में साम्राज्य स्थापित करने के निमित्त बैठते हैं।१०। [१७]

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वां अभि पश्यति। कृतानि या च कर्त्वा।११
स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्। प्रण आयूंषि तारिषत्।१२
बिभ्रद्द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम्। परि स्पशो नि षेदिरे।१३।
न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम्। न देवमभिमातयः।१४।
उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या। अस्माकमुदरेष्वा।१५।१८।

जो घटनायें हुई अथवा होने वाली हैं, उन सबको वे मेधावी वरुण इस स्थान से देखते हैं।११। वे श्रेष्ठ बुद्धि वाले वरुण हमको सदा सुन्दर मार्ग दें और हमको आयुष्मान करें।१२। सोने के कवच में उन्होंने अपना

मर्म-भाग ढक लिया है, उनके चारों ओर समाचार ग्राहक उपस्थित हैं। ॥१३॥ जिन्हें शत्रु धोखा नहीं दे सकते, विद्रोही जिनसे द्रोह करने में समर्थ नहीं हो सकते, उस वरुण से कोई शत्रुता नहीं कर सकता ॥१४॥ जिस वरुण ने मनुष्य के लिये अन्न की भरपूर स्थापना की है, वह हमारे उदर में अन्न ग्रहण करने को सामर्थ्य देता है ॥१५॥

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु । इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ।१६।
स नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् । होतेव क्षदसे प्रियम् ।१७।
दर्श नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि । एता जुषत मे गिरः ।१८।
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृलय । त्वामवस्युरा चके ।१९।
त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि । स यामनि प्रति श्रुधि ।२०।
उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत । अवाधमानि जीवसे ।२१।

दूरदर्शी वरुण की कामना करती हुई मन वृत्तियाँ निवृत्त हुए बिना वैसे ही पहुँचती हैं, जैसे चरने के स्थानों की ओर गौयें जाती हैं ॥१६ मेरे द्वारा सम्पादित मधुर हवि को अग्नि के समान प्रीति पूर्वक भक्षण करो फिर हम दोनों वार्तालाप करेंगे ॥ १७ ॥ सबके देखने योग्य वरुण को, उनके रथ सहित भूमि पर मैंने देखा है। उन्होंने मेरी स्तुतियाँ स्वीकार कर ली हैं, ॥१८॥ हे वरुण ! मेरे आह्वान को सुनो । मुझ पर आज कृपा करो । मुझ पर कृपा करने की इच्छा वाले तुम्हें मैंने पुकारा है ॥१९॥ हे मेधावी वरुण ! तुम आकाश और पृथिवी के स्वामी हो । तुम हमारे आह्वान का उत्तर दो ॥२०॥ हे वरुण ! ऊपर के पाश को खींचो, बीच के पाश को काटो और नीचे के पाश को भी खींचकर हमको जीवन दो ॥२१॥

२६ सूक्त (१६

(ऋषि—शुनःशेप आजीगर्ति । देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री)

वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते । सेमं नो अध्वरं यज ।१।
नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः । अग्ने दिवित्मता वचः ।२।
आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये । सखा सख्ये वरेण्यः ।३।

आ नो बर्हीं रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा । सीदन्तु मनुषो यथा ।४।
पूर्व्यं होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च । इमा उषु श्रुधी गिरः ।५।२०।

हे पूज्य, योग्य, बली ! अग्ने तुम अपने तेज रूप वस्त्र को धारण कर हमारे यज्ञ को सम्पन्न करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम सतत युवा, उत्तम तेजस्वी हो । इस यजमान के स्तुति वचनो से प्रतिष्ठित होओ ॥२॥ हे वरणीय अग्ने ! जैसे पिता पुत्र को, भाई-भाई, को तथा मित्र-मित्र को वस्तुयें देते हैं वैसे ही तुम हमको दाता बनो ॥ ३ ॥ शत्रुओ को मारने वाले वरुण, मित्र और अर्यमा मनुष्यों के समान कुशों पर विराजमान हो ॥ ४ ॥ हे पुरातन होता ! तुम इस यज्ञ और हमारे मित्र भाव से प्रसन्न होओ । हमारी स्तुतियों को भले प्रकार सुनो ॥५॥ (२०)

यच्चिद्धि शश्वता तना देवं देवं यजामहे । त्वे इद् धूयते हविः ।६।
प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः प्रियाः स्वग्नयो वयम् ।७।
स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः । स्वग्नयो मनामहे ।८।
अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम । मिथः सन्तु प्रशस्तयः ।९।
विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः ।
चनो धाः सहसो यहो ।१०।२१

हे अग्ने ! नित्य प्रति विभिन्न देवताओं को पूजते हुए भी हम तुमको ही हवि देते है ॥६॥ प्रजा पालक, होता, वरणीय, अग्नि हमको प्रिय हों । हम भी शोभायुक्त अग्नि वाले होकर उनके प्रिय बनें ॥७॥ शोभनीय अग्नि सहित देवताओं ने जैसे हमारे लिए ऐश्वर्य धारण किया है, वैसे ही हम सुन्दर अग्नियों से युक्त हुए तुमको पूजते है ॥ ८ ॥ हे मरण धर्म रहित अग्ने ! तुम्हारी ओर हम मरणशील मनुष्यों की प्रशंसायुक्त वाणियाँ परस्पर स्नेह वाली हों ॥ ९ ॥ हे बल पुत्र अग्ने तुम सब अग्नियों से युक्त हुए और हमारी वाणी से प्रसन्न होओ ॥१०॥ (२१)

मर्यादा में बहने वाले जल के समान तुम यजमान के लिये तुरन्त प्रवाहमान होते हो ।६। अग्ने ! तुमने युद्धों में जिसकी रक्षा की तथा युद्धों की ओर जिसको प्रेरित किया, वह अटल ऐश्वर्य प्राप्त करने वाला मनुष्य सदा स्वाधीन रहता है ।७। हे विजयशील ! उस पूर्वोक्त मनुष्य को कोई वश नहीं कर सकता क्योंकि उसका बल वर्णन करने योग्य हो जाता है ।८। यह अग्नि मनुष्यों के स्वामी हैं । हमको अश्वों द्वारा युद्ध से पार करते हैं तथा ज्ञान द्वारा धन देते हैं ।९। हे स्तुतियों के ज्ञाता अग्ने ! हमको मनुष्यों के पूज्य रुद्र के निमित्त सुन्दर स्तोत्र की प्रेरणा दो ।१०। [२३]

स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः । धिये वाजाय हिन्वतु ।११।
स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः ।
उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ।१२।
नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नमो आशिनेभ्यः ।
यजाम देवान्यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः ।१३।[२४]

वह अपरिमित धूम्र-ध्वज वाले अग्नि अत्यन्त प्रकाशित हैं । हमको बुद्धि और बल प्रदान करें ।११। प्रजाके स्वामी, देवताओं से सम्बन्धित, ज्ञानदाता, महान् प्रकाश वाले वह अग्नि हमारे स्तोत्रों को ऐश्वर्यवानों के समान सुनें ।१२। बड़े, छोटे, युवक, वृद्ध सभी को हम नमस्कार करें । हम सामर्थ्यवान हों । देवताओं को पूजन वाले हों । हे देवगण ! मैं अपने से बड़ों का सदा आदर करूं ।१३। [२४]

२८ सूक्त

(ऋषि – शुनःशेप आजीगर्ति । देवता-इन्द्रयज्ञसोमा. ।
छन्द-गायत्री, अनुष्टुप्)

यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ।१।
यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ।२।

करते हुए अश्व के समान उच्च स्वर से खेलते हैं ॥ ७ ॥ हे ऊखल-मूसल रूप वनस्पते ! तुम सोम सिद्ध करने वालों के लिये मधुर सोमों का इन्द्र के निमित्त निष्पीडन करो ॥ ८ ॥ ऊखल और मूसल द्वारा कूटे गये सोम को पात्र से निकाल कर पवित्र कुश पर रखो, अवशिष्ट को चर्म-पात्र में रखो ॥९॥

२९ सूक्त

(ऋषि—शुन शेप आजीगर्ति । देवता-इन्द्र । छन्द पंक्ति)

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥१॥
शिप्रिन्वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥२॥
नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥३॥
ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातय ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥४॥
समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥५॥
पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥६॥
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥७॥२३॥

हे सत्य स्वरूप, सोमपायी इन्द्र ! यद्यपि हम निराश से हुए पड़े हैं, फिर भी तुम अत्यन्त सुन्दर पुष्ट हजारों गाय-घोड़े देकर हमको सन्तुष्ट करो ॥ १ ॥ हे ऐश्वर्यान्वित, हे सुन्दर नासिकायुक्त इन्द्र ! आपकी दया हमको सदा मिली है । हमको हजारों गाय घोड़े प्रदान करो ॥ २ ॥ हे

इन्द्र ! परस्पर देखने वाली दोनों, विपत्ति और दरिद्रता को अचेत कर दो। ये कभी जागरणशील न रहें। हमको असंख्य गाय और अश्वों से युक्त करो।३। हे इन्द्र ! हमारे शत्रु सोते रहें और मित्र जागरणशील हों हमको सहस्रों गौ और घोड़े दो।४। हे इन्द्र ! इस पापपूर्ण स्तुति करने वाले गधे के समान हमारे शत्रु को मार डालो। हमको सहस्र संख्यक गौ, अश्व प्रदान करो।५। कुटिल गति वाली वायु जङ्गल से भी दूर रहे। तुम हमारे गौ धन आदि के दाता होओ।।। हे इन्द्र ! हमारा अशुभ चिन्तन करने वालों को मार डालो। हिंसकों को नष्ट करो असंख्य गौ, अश्व प्रदान करो।७।

३० सूक्त

(ऋषि—शुनःशेप आजीगर्ति । देवता—इन्द्र, उषा । छन्द—गायत्री)

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ।१।
शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् ।
एदु निम्नं न रीयते ।२।
सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे । समुद्रो न व्यचो दधे ।३।
अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ।४।
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते ।
विभूतिरस्तु सूनृता ।५।२८।

हे मनुष्यो ! तुमको बहु बल प्राप्त कराने की इच्छा से महाबली इन्द्र को हम गढ़े के समान सब ओर से सींचते हैं।१। नीचे की ओर जाने वाले जल के समान हजारों कलश दूध मे मिलाने के लिये सैकड़ों कलश गिरते हुए सोमों को इन्द्र प्राप्त करते हैं।२। जल के लिये विस्तृत हुए समुद्र के समान इन्द्र बलकारी सोम के लिए अपने पेट को विस्तृत करता है।३। हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे लिए है। तुम इसे कबूतर द्वारा अपनी कबूतरी को प्राप्त करने के समान प्रेम से प्राप्त करते हो। हमारी

वाणी भी पहुँचती है ।४। हे धनेश्वर ! जिसके मुख मे आपकी स्तुतिमय वाणी है, उनकी स्तुतियो से प्राप्त होने वाले तुम उसके घर मे ऐश्वर्य भर दो उसकी वाणी-मधुर और सत्य हो ।५। [२८]

ऊर्ध्वं स्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ।६।
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ।७।
आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभि । वाजेभिरुप नो हवम ।८।
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । य ते पूर्वं पिता हुवे ।९।
तं त्वा वयं विश्ववारा शास्महे पुरुहूत ।
सखे वसो जरितृभ्य ।१०।२९।

हे महाबली इन्द्र ! इस युद्ध मे हमारी रक्षा के लिये उठो । हम दोनो भले प्रकार मन्त्रणा करें ।६। हे सखे ! हम प्रत्येक कार्य अथवा युद्ध के आरम्भ मे महाबली इन्द्र का आह्वान करते है ।७। यदि इन्द्र ने हमारी पुकार सुन ली तो वे असंख्य रक्षण साधनो और शक्तियो के साथ अवश्य आवेंगे ।८। मैं अपने अग्रणी, शक्ति स्वरूप इन्द्र को पूर्वजों की भांति बुलाता हूँ । हे इन्द्र हमारे पिता भी तुमको बुलाते थे ।९। हे वरणीय इन्द्र ! बहुतो से बुलाये गये तुम स्तोताओं के शरणदाता मित्र हो । हम तुम्हारे आह्वान की कामना करते हैं ।१०। [२९

अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपा सोमपाव्नाम् । सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ।११।
तथा तदस्तु सोमपा सखे वज्रिन्तथा कृणु । यथा त उश्मसीष्टये ।१२।
रेवतीर्न. सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजा क्षुमन्तो याभिर्मदेम ।१३।
आ घ त्वावान्त्मनाप्त स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्यो ।१४।
आ यद्दुव. शतक्रतवा कामं जरितृणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभि: ।१५।३०।

हे सोमपायी वज्रिन् ! सोम के बलवान हुए हमारे मित्रो के तुम मित्र हो ।१। हे सोमपायी वज्रिन् ! हमारी यह इच्छा पूरी करो कि हम अपने अभीष्ट के निमित्त सदा तुम्हारी ही कामना किया करे ।१२। इन्द्र के

प्रसन्न होने पर हमारी गायें अधिक दूध दें, जिससे हम अधिक पुष्टि को प्राप्त कर सकें ।।१३।। हे इन्द्र ! तुम्हारी प्रार्थना करने पर तुम स्वयं ही पहिये की धुरी के समान भाग्य को घुमाकर धन देते हो ।।१४।। हे इन्द्र साधकों की साधना और कामना के अनुसार ही तुम पहिये की धुरी के समान उनकी दरिद्रता को पलट देते हो ।।१५।। (३०)

शाश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ।।१६।
आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया । गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।।१७।
समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः समुद्रे अश्विनेयते ।।१८।
न्य घ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः । परि द्यामन्यदीयते ।।१९।
कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये । कं नक्षसे विभावरि ।२०।
वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात् अश्वे न चित्रे अरुषि ।२१।
त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः । अस्मे रयिं नि धारय ।२२।३१।

इन्द्र सदा ही शत्रुओं के धन को अपने स्फूर्तियुक्त घोड़ों के द्वारा जीतता रहा है । उसने स्नेहवश हमको सोने का रथ प्रदान किया है ।।१६।। हे भीषण बल वाले अश्विनीकुमारो ! तुम अश्वों की गति से गौ और स्वर्णादि धन के साथ यहाँ आओ ।।१७।। हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनों के लिए जुतने वाला एक ही रथ आकाश मार्ग में चलता है । उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता ।।१८।। हे अश्विनी कुमरो । तुमने अपने रथ के एक पहिये को पर्वत पर स्थित किया है तथा दूसरा पहिया आकाश के चारों ओर चलता है ।।१९।। हे पापों का नाश करने वाली ऊषे ! कौन मरणधर्मा मनुष्य तुम्हारे सुख को प्राप्त कर सकता है ।।२०।। हे अश्व के समान गमन करने वाली, कांतिमती ऊषे ! तुम क्रोध रहित हो ही हमने निकट या दूर तक चिंतन किया है ।। २१ ।। हे आकाश-पुत्री ! तुम उन शक्तियों के साथ यहाँ आओ जिनके द्वारा उत्तम ऐश्वर्य को हमारे लिये स्थापना कर सको ।।२२।। (३१)

३१ सूक्त [सांतवा अनुवाक]

(ऋषि—हिरण्यस्तूप, आङ्गिरस । देवता-अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्)

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभव शिव सखा ।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टय ॥१॥
त्वमग्ने प्रथमो अंगिरस्तम कविर्देवाना परि भूषसि व्रतम् ।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयु कतिधा चिदायवे ॥२॥
त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते ।
अरेजेता रोदसी होतृवूर्येऽसघ्नोर्भारमयजो महो । वसो ॥३॥
त्वमग्ने मनवे द्यामवाशय पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तर ।
श्वात्रेण यत्पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापर पुन ॥४॥
त्वमग्ने वृषभ पुष्टिवर्धन उद्यतस्रुचे भवसि श्रवाय्य ।
य आहुति परि वेदा वषट् कृतिमेकायुरग्रे विश आविवाससि ॥५॥३२

त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन्पिपर्षि विदथे विचर्षणे ।
यः शूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित्समृता हंसि भूयसः ।६।
त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवे दिवे ।
यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये ।७।
त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ।८।
त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः ।
तनूकृद्बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे ।९।
त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम् ।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ।१०।३३।

हे विशिष्ट द्रष्टा अग्ने ! तुम पाप-वर्तियों का भी उद्धार करते हो । तुम युद्ध उपस्थित होने पर थोड़े से धर्मवीरों द्वारा भी बहुसंख्यक पापियों को नष्ट करा देते हो ।६। हे अग्ने ! तुम उस सेवक को भी अविनाशी पद देकर यशस्वी बनाते हो । उस पद की देवता और मनुष्य दोनों ही कामना करते हैं । तुम अपने साधक को अन्न-धन द्वारा सुखी करते हो ।७। हे अग्ने ! हमको धन-प्राप्ति की योग्यता दो । साधक को यशस्वी बनाओ । नये उत्साह से यज्ञादि कर्म करें । देवताओं सहित आकाश-पृथिवी हमारे रक्षक हों ।८। हे निर्दोष अग्ने ! तुम देवताओं में चैतन्य, आकाश-पृथिवी के मध्य में स्थित हमको पुत्र रूप समझो । तुम शासक का कल्याण करने वाले उसे हर प्रकार का ऐश्वर्य दो ।९। हे अग्ने ! तुम कृपा करने वाले हो । तुम्हें कोई धोखा नहीं दे सकता, तुम वीर युक्त गुण वाले और सहस्रों धनों के कर्त्ता हो ।१०। [३३]

त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन्नहुषस्य विश्पतिम् ।
इलामकृण्वन्मनुषस्य शासनीं पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते ।११।
त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ।१२।

त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरोऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे ।
यो रातहव्योऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन्मन्त्रं मनसा वनोषि तम् ।१३।
त्वमग्न उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद्रेक्णः परमं वनोषि तत् ।
आध्रस्य चित्प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्र दिशो विदुष्टरः ।१४।
त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः ।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः ।१५।३४।

हे अग्ने ! तुमको देवताओं ने मनुष्यों का हित करने को उनका राजा, स्वामी बनाया है। जब पिता (अङ्गिरा ऋषि) के पुत्र रूप में जब तुम उत्पन्न हुए तब देवताओं ने इला को मनु की उपदेशिका बनाया ।११। हे पूज्य अग्ने ! तुम्हारी कृपा से धनी हुए हमारे शरीरों का पोषण और रक्षा करो। अविलम्ब हमारी सन्तान और पशुओं की रक्षा करो ।१२। हे अग्ने ! तुम पूजक के पालनकर्त्ता हो। जिसने तुमको अहिंसित हवि दी है और जो निरस्त्र है, उसे तुम सब ओर से देखते हो तुम अपने साधक की कामना पर ध्यान देते हो ।१३। हे अग्ने ! उत्तम अभीष्ट धन को ऋत्विज के निमित्त साध्य करते हो ।१३। तुम निबल के पिता और मूर्ख को ज्ञान देने वाले हो ।१४। हे अग्ने ! तुम दक्षिणा वाले यजमान के लिये कवच के समान रक्षक हो। जो अपने घर में मधुर अन्न-हवि से सुख देने वाले यज्ञ को करता है, वह स्वर्गीय उपमा का अधिकारी होता है ।१५। [३४,

इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।
आपि. पिता प्रमति. सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम् ।१६।
मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत्सदने पूर्ववच्छुचे ।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ।१७।
एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा ।
उत प्रणेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं न. सृज सुमत्या वाजवत्या ।१८।३५।

हे अग्ने ! तुम हमारे यज्ञ में हुई भूलों को क्षमा करो। जो कुमार्ग में बहुत बढ़ गया है, उसे क्षमा करो। तुम सोम वाले यजमान के बन्धु, पिता

और उस पर कृपा करने वाले ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! हे अङ्गिरा ! तुम अत्यन्त पवित्र हमारे यज्ञ को प्राप्त होओ । पूर्वकाल में मनु, अङ्गिरा, ययाति के यज्ञ मे आने वाले देवताओं को बुलाकर कुश पर प्रतिष्ठित करते हुये उनका पूजन करो ॥१७॥ हे अग्ने ! इस मन्त्र रूप स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त होओ। यह स्तुति शक्ति ज्ञान से तुम्हारे निमित्त ही हमने प्राप्त की है। तुम हमको महान् ऐश्वर्य प्रदान करो और बल देने वाली बुद्धि दो ॥१८॥ (३५)

३२ सूक्त

(ऋषि—हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । देवता इन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप्)

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥१॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥२॥
वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥३॥
यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥४॥
अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥५॥३६॥

पूर्वकाल में वज्रधारी इन्द्र ने जो पराक्रम किये, उन्हें कहता हूं। पहिले इन्होंने मेघ को मारा फिर वर्षा की। प्रवाहित नदियों के लिये मार्ग बनाया ॥ १ ॥ इस इन्द्र के लिये त्वष्टा ने शब्दकारी वज्र को पैना किया, जिससे पर्वत में टिके हुए मेघ को मारकर जल [illegible] । वे जल रंभाती हुई गायों के समान सीधे समुद्र को चले गये ॥ २ ॥ बैल के समान बल वाले इन्द्र ने सोम का [illegible] किया । त्रिकद्रु को (तीन प्रकार के) यज्ञ में [illegible] सोम को पिया । [illegible] इन्द्र ने वज्र को ग्रहण कर मेघों में [illegible]

देया ।३। हे इन्द्र तुमने मेघो मे उत्पन्न प्रथम मेघ (वृत्र) का वध किया, मायावियो का नाश किया । फिर सूर्य, उषा और आकाश को प्रकट किया तब कोई शत्रु शेष नही रहा ॥ ४ ॥ इन्द्र ने घोर अन्धकार करने वाले वृत्रासुर का भीषण वज्र से वृक्षो के तनो के समान काट डाला। तब वह पृथिवी पर गिर पडा ।।५।। (३६)

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
मातारीदस्य समृतिं दधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ।६।
अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ।७।
नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ।८।
नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ।९।
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ।।१०।२७।

मिथ्याभिमानी वृत्र ने महाबली, शत्रुनाशक, अत्यन्त वेग वाले इन्द्र को योद्धाओं को बुलाने के समान ललकारा । तब इन्द्र ने घोर वज्र-वर्षा की, जिससे बहते हुए वृत्र ने नदियो को भी पीस डाला ॥६॥ पाँव और हाथो से हीन वृत्र ने इन्द्र से युद्ध की इच्छा व्यक्त की । इन्द्र ने उसके कन्धे पर वज्र प्रहार किया । तब वह खण्ड-विच्छिन्न हो धराशायी हुआ ॥७॥ जैसे नदी तटो को लाँघ जाते है, वैसे ही मन को प्रसन्न करने वाले जल वृत्र को लाँघ जाते है । जो वृत्र अपने बल से जलो को रोक रहा था, वही अब उनके नीचे पड़ा सो रहा है ।८। वृत्र की माता उसकी रक्षा के लिये उसकी देह पर टेढी होकर लेट गई । परन्तु इन्द्र के प्रहार करने पर वह बछड़े के साथ गौ के समान सो गई ॥९॥ स्थिरविहीन अविश्रान्त जलो के मध्य गिरे हुए वृत्रासुर के देह को जल जानते है । वह अनन्त निद्रा मे सोता पड़ा है ॥१०॥ (३७)

उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ।।२।।
नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि ।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ।।३
वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनं एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ।।४
परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यदिवो हरिव स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ।।५।।

आओ गाय की इच्छा वाले हम इन्द्र के समक्ष उपस्थित हों। वे विघ्न-नाशक, हमारे धन को बढ़ाते हुए, हमारी गौ की इच्छा को पूर्ण करेंगे ।।१।। जिसे युद्ध में स्तोता बुलाते हैं, उस इन्द्र का कोई सामना नहीं कर सकता। मैं उस धनदाता इन्द्र को उपयुक्त स्तोत्रों से पूजन करता हुआ अभिलाषा करता हूँ ।।२।। सेना वाले इन्द्र ने स्तोताओं के पक्ष में तूणीर किस लिए प्रजाओं के स्वामी वे इन्द्र गवादि धन को जीतने में समर्थ हैं। हे इन्द्र ! तुम हमारे साथ विनिमय करने वाले न बनो ।। ३ ।। हे इन्द्र सहायक मरुतों के साथ अपने भीषण वज्र से बहुत धन के चोर वृत्र को तुमने मारा। फिर उस वृत्र के अनुचरों ने सङ्गठित होकर तुम पर आक्रमण किया, तब वे यज्ञ-कर्मों से हीन मृत्यु को प्राप्त हुए ।।४।। हे इन्द्र ! यज्ञ-कर्म वालों के सामने से अयाज्ञिक भाग गये। हे अश्वयुक्त, युद्ध में डटे रहने वाले भीषण इन्द्र ! तुमने आकाश और पृथिवी पर स्थित व्रतहीनों को निःशेष कर दिया ।।५।।   (१)

अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ।।६
त्वमेतान्रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ।।७
चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।

न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात्सूर्येण ॥८
परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वत: सीम् ।
अमन्यमानां अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥९
न ये दिव: पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥१०

अयाज्ञिकों ने अनिन्द्य इन्द्र से लडने की इच्छा की । तब वीरों के ... कायरों के युद्ध करने के समान परास्त हुए ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने रो... और हँसते हुये वृत्रों को युद्ध मे मारा । चौर वृत्र को ऊँचा उठाकर आकाश से जलाकर गिराया । फिर तुमने सोम वालों की स्तुतियों से हर्ष प्राप्त किया ॥ ७ ॥ उन वृत्रों ने भूमि को ढक लिया, वे स्वर्ण रत्नादि से युक्त हुये। परन्तु वे इन्द्र को न जीत सके । इन्द्र ने उन्हे सूर्य के द्वारा भगा दिया ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुमने आकाश-पृथिवी का सब ओर से उपयोग किया है । तुमने अपने अनुयाइयों द्वारा विरोधियों को जीता । तुम्हारी मन्त्र रूप स्तुतियों ने शत्रु पर विजय प्राप्त की ॥ ९ ॥ मेघ आकाश-पृथिवी की सीमा को प्राप्त नही करते और गर्जन करते हुए अन्धकारादि कर्मों से भी सूर्य रूप इन्द्र को नही ढक सकते परन्तु इन्द्र अपने सहायक वज्र से, मेघ से जलों को गाय समान दुह लेता है ॥१०॥

अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥११
न्याविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्र: ।
यावत्तरो मघवन्यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधी: पृतन्युम् ॥१२
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
सं वज्रेणासृजद्वृत्रमिन्द्र: प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदान: ॥१३
आव: कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥१४
आव: शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।

(ऋषि—हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । देवता—अश्विनौ । छन्द—जगती)

त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना ।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥१

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः ।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥२

समाने अहन्त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ॥३

त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम् ।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥४

त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः ।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस्त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद्रथम् ॥५

युवोर्हि पूर्वंसवितोपसोर अमृताय चित्र घृतवन्तमिष्यति ॥१०
आ नासत्या त्रिभिरेका दैरिह देवेभिर्यात मधुपेयमश्विनां ।
प्रायुस्तारिष्टं नो रपांसि मृक्षतं द्वेषो भवत सचाभुवा ॥११
आ नो नो अश्विना त्रिवृता रथेनार्वाञ्चं रयि वहत सुवीरम् ।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवोहिम वृधे च ना भवत बाजसातौ ।।१२।५

हे अश्विद्वय ! तुम नित्य तीन बार पूजने योग्य हो । तुम पृथिवी पर तीन बार तीन लपेटे वाले कुशासन पर सोओ । हे असत्य रहित रथी ! आत्मा द्वारा शरीरों को प्राप्त करने के समान तुम तीन यज्ञों को प्राप्त कराओ ॥७॥ हे अश्विद्वय ! सप्त मातृ भूत जलों द्वारा हमने तीन बार सोमों को सिद्ध किया है । यह तीन कलश भर कर हैं । इसी प्रकार से हवि भी तैयार की है । तुम आकाश के ऊपर चलते हुए तीनों लोकों की रक्षा करते हो ॥८॥ हे अश्विद्वय ! जिस रथ के द्वारा तुम यज्ञ को प्राप्त होते हो, उस त्रिकोण रथ के तीन पहिये किधर लगे हैं ? रथ के आधारभूत तीनों काष्ठ कहाँ हैं ? तुम्हारे रथ में बल-शाली गर्दभ कब संयुक्त किया जायेगा ॥९॥ हे अश्विद्वय ! आओ, मैं हव्य देता हूँ । अत: मधुरपान करने वाले मुखों से मधुर हवियों को ग्रहण करो । उषा काल से पूर्व सूर्य तुम्हारे घृतयुक्त रथ को यज्ञ में आने के लिए प्रेरणा देते हैं ॥१०॥ हे असत्य-रहित अश्वियो ! तुम तैंतीस देवताओं के साथ यहाँ आकर मधु पान करो । हमको आयु देकर पापों को हटाओ । शत्रुओं को भगाकर हम में वास करो ॥११॥ हे अश्वियो ! त्रिकोण रथ द्वारा, वीरों से युक्त ऐश्वर्य को यहाँ लाओ । तुम्हारा आह्वान करता हूँ । तुम युद्धों में हमारी बल-वृद्धि करो ॥१२॥ (५)

३५ सूक्त

(ऋषि—हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । देवता—अग्निमित्रावरुणौ प्रभृति छन्द – जगती त्रिष्टुप् पंक्ति)

ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये: ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे ।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये ॥१

आ कृष्णेन रसजा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ॥१
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥२
याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।
आ देवो याति सविता परावतोऽप विश्वा दुरिता बाधमानः ॥३
अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः ॥४
वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन्रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।
शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥५
तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट् ।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ।६।६

कल्याण के लिए अग्नि, मित्र और वरुण का आह्वान करता हूं और प्राणियो को विश्राम देने वाली रात्रि तथा सूर्य देवता का रक्षा के लिए आह्वान करता हूं ॥१॥ अन्धकारपूर्ण आकाश मे भ्रमण करते हुए प्राणियो को चैतन्य करने वाले सूर्य सोने के रथ से हमको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ वे सूर्य देवता नीचे मार्गों या ऊँचे मार्गों पर श्वेत अश्वों से युक्त रथ पर गमन करते हैं वे अन्धकारादि का नाश करते हुए दूर से आते हैं ॥ ३ ॥ पूज्य एवं अद्भुत रश्मियों से युक्त सूर्य, अन्धकारयुक्त लोकों के निमित्त शक्ति को धारण करते हैं । वे स्वर्ण साधनो से युक्त रथ पर चढ़ते हैं ॥ ४ ॥ श्वेत आश्रय वाले, जुओं बांधने वाले श्याम युक्त रथ को चलाते हुए सूर्य के अश्वो ने मनुष्यों को प्रकाश दिया । सब प्राणी और लोक सूर्य अङ्क मे ही स्थित हैं ॥ ५ ॥ तीन लोकों में आकाश और पृथिवी सूर्य के समीप हैं । एक अन्तरिक्ष यमलोक का द्वार रूप है । रथ के पहिये की अगली कील पर अवलम्बित रहने के समान सभी नक्षत्र सूर्य पर अवलम्बित हैं ॥६॥   (६)

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद्गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।
क्वेदानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ॥७
अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।

हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥८
हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥९
हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववां यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥१०
ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥११॥७

गम्भीर कम्पनयुक्त, सुन्दर प्राणयुक्त सविता ने अन्तरिक्ष को प्रकाशित किया है। वह सूर्य कहाँ रहता है, उसकी किरणें किस आकाश में व्याप्त हैं — यह कौन कह सकता है? सूर्य ने पृथिवी की आठों दिशाओं को मिलाने वाले तीनों लोकों को और सातों समुद्रों को प्रकाशित किया। वह स्वर्णिम नेत्र वाले सूर्य दाता को धन देने के निमित्त यहाँ आवें ॥ ७-८॥ सोने के हाथ वाले सर्वद्रष्टा सूर्य आकाश और पृथिवी के मध्य गति करते हैं। वे रोगादि बाधाओं को मिटाकर अन्धकारनाशक तेज से आकाश को व्याप्त कर देते हैं ॥ ९ ॥ सुवर्णपाणि, प्राणवान्, श्रेष्ठ कृपालु ऐश्वर्यवान् सूर्य हमारे सामने आवें। वे सूर्य नित्यप्रति राक्षसों का दमन करते हुए यहाँ ठहरें ॥ १० ॥ हे सूर्य! आकाश में तुम्हारे धूल रहित पुरातन मार्ग सुनिर्मित हैं। उन मार्गों से आकर हमारी रक्षा करो। जो मार्ग हमारे अनुकूल हो, उसे बताओ ॥११॥

३६ सूक्त [आठवां अनुवाक]

(ऋषि—कण्वो घौर। देवता – अग्नि। छन्द—अनुष्टुप् आदि)

प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईलते ॥१
जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते ।
स त्वं नो अद्य सुमना इहेविता भव वाजेषु सन्त्य ॥२
प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।

महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥३
देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥४
मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥५॥८

हे मनुष्यो ! तुम बहु संख्यक व्यक्ति देवताओं की कामना करते हो तुम्हारे निमित्त हम उन महान् अग्नि के सूक्त वचनों द्वारा प्रार्थना करते हैं उनकी अन्य लोग भी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ मनुष्यों ने जिस बलवर्द्धक अग्नि को धारण किया हैं, हम उसको हवियों से तृप्त करें। दानी तुम प्रसन्न होकर, इस युद्ध मे हमारी रक्षा करो ॥ २ ॥ हे सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाले, देव-दूत और होता ! तुम्हारा हम वरण करते हैं। तुम महान् और सत्य रूप हो। तुम्हारी लपटें आकाश की ओर उठती हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम पुरातन पुरुष को वरुण, मित्र और अर्यमा प्रदीप्त करते हैं। तुमको हवि देने वाला साधक सभी धनों को प्राप्त करता है ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम मन को प्रसन्न करने वाले, प्रजाओं के स्वामी, गृह पालक और देव-दूत हो। देवताओं के सभी कर्म तुम मे मिलते हैं ॥५॥ (८)

त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठय विश्वमा हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ॥६
तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ॥७
घ्नन्तो वृत्रमतरन्रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे ।
भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥८
स सीदस्व महां असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥९
यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः॥१० ९

हे युवा अग्ने ! तुम सौभाग्यशाली हो क्योंकि तुम में ही सब हवियां डाली जाती हैं। तुम प्रसन्न होकर हमारे निमित्त आज और आगे भी पराक्रमी देवताओं का पूजन करो ॥ ६ ॥ नमस्कार करने वाले व्यक्ति स्वयं प्रकाशित अग्नि की पूजा करते हैं शत्रुओं से बढ़े हुए मनुष्य स्तुतियों द्वारा अग्नि को प्रदीप्त करते हैं ॥ ७ ॥ देवताओं ने प्रहारपूर्वक वृत्र को जीता और तीनों लोकों का विस्तार किया। अभीष्ट वर्षक अग्नि आह्वान करने पर मुझ कण्व को गवादि धन प्रदान करें ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! आओ, विराजमान होओ। देवताओं के लाने वाले, तुम चैतन्य होओ। उत्तम लालिमा लिए सुन्दर धुएं को फैलाओ ॥ ९ ॥ हे हविवाहक अग्ने ! तुम पूजने योग्य को देवताओं ने मनु के निमित्त इस लोक में स्थापित किया। तुम धन से सन्तुष्ट करने वाले को कण्व और मेधातिथि ने तथा वृषा और उपस्तुत ने धारण किया ॥१०॥ (९)

यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि ॥११
रायस्पूधि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि ॥१२
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥१३
ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥१४
पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥१५॥१०

जिस अग्नि को मेधातिथि और कण्व ने यज्ञ के लिए प्रज्वलित किया, वह अग्नि दीप्तिमान् है। इन ऋचाओं द्वारा हम उस अग्नि को बढ़ाते हैं ॥११॥ हे अन्नवान् अग्ने ! हमारे भण्डार भरो। तुम देवताओं के मित्र और ऐश्वर्य के स्वामी हो। हे महान् ! हम पर कृपा करो ॥ १२ ॥ तुम हमारी रक्षा के लिए ऊँचे खड़े होओ। तुम उन्नत शक्ति के प्रदाता हो। हम विद्वानों के सह-

तुम बड़े जोड़ों वाले पर्वतों को भी कँपा देते हो ॥७॥ उन मरुतों की गति से पृथिवी वृद्ध राजा के समान भय से कांपती है ॥८॥ इनका जन्म स्थान स्थिर है। इनकी मातृ-भूमि आकाश में पक्षी की गति भी निर्बाध है। उनका बल दुगुना होकर व्याप्त है ॥ ९ ॥ वे अन्तरिक्ष में उत्पन्न मरुद्गण गमन के लिए जल का विस्तार करते हैं और रमाने वाली गायों को घुटने-घुटने जल में ले जाते हैं॥ १०॥ (१३)

त्यं चिद्घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥११
मरुतो यद्ध वो बलं जनां अचुच्यवीतन गिरींरचुच्यवीतन ॥१२
यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना । शृणोति कश्चिदेषाम् ॥१३
प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः । तत्रो षु मादयाध्वै ॥१४
अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम् ।
विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥१५॥१४

अवश्य ही मरुद्गण उस विशाल, अवाध्य मेघ पुत्र को अपनी गति से कपाते हैं ॥११॥ हे मरुतो तुमने अपने बल से मनुष्यों को कर्म में प्रेरित किया है। तुम्हीं मेघों को प्रेरित करने वाले हो ॥१२॥ मरुद्गण चलते हैं, तब मार्ग में परस्पर बातें करते हैं। उनके उस शब्द को सुनते हैं ॥ १३ ॥ हे मरुतो! वेग वाले वाहन से शीघ्र आओ। यहां कण्ववंशी और अन्य विद्वान एकत्रित है, उनके द्वारा हर्ष प्राप्त करो ॥१४॥ हे मरुतो ! तुम्हारी प्रसन्नता के लिए हवि प्रस्तुत है। हम आयु प्राप्त करने के लिए यहां विद्यमान है ॥१५॥ (१४)

३८ सूक्त

(ऋषि—काण्वो घौरः । देवता—मरुत । छन्द—गायत्री)

कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः । दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥१
क्व नूनं कद्वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः ।
क्व वो गावो न रण्यन्ति ॥२
क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता । क्वो विश्वानि सौभगा ॥३
यदूयूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन । स्तोता वो अमृतः स्यात् ॥४

मा वो मृगो न यवसे जरता भूदजोष्य. । पथा यमस्य गादुप ।५।१५

हे स्तुतियों को चाहने वाले मरुतो ! तुम्हारे लिए कुश बिछाई गई है। पिता द्वारा पुत्र को धारण करने के समान तुम हमें कब धारण करोगे ? ॥१॥ हे मरुतो ! अब तुम कहां हो ? किस लिए आकाश मार्ग में घूमते हो ? पृथिवी में क्यों नहीं घूमते ? तुम्हारी गौएँ तुम्हें नहीं पुकारतीं क्या ? ॥ २ ॥ हे मरुतो ! तुम्हारी अभिनव कृपायें, शुभ और सौभाग्य कहां है ? ॥ ३ ॥ हे आकाश-पुत्रो ! यद्यपि तुम मरणधर्मा पुत्र हो पर तुम्हारा स्तोता (उपदेष्टा) अमर और शत्रु से कभी नाश न होने वाला हो ॥ ४ ॥ जिस प्रकार घास के मैदान में मृग आहार प्राप्त करता है पर मृग के लिए घास असेवनीय नहीं होती उसी प्रकार स्तोता भी सेवा प्राप्त करता रहे जिससे उसे यम मार्ग से न जाना पड़े ॥५॥ (१५)

मा पु णः परापरा निऋ तिर्दु हणा वधीत । पदाष्ट तृष्णया सह ॥६
सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः मिह । कृण्वन्त्यवाताम् ॥७
वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्स न माता सिषक्ति । यदेषा वृष्टिरसर्जि ॥८
दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन । यत्पृथिवी व्युन्दन्ति ॥९
अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्मपार्थिवम् । अरेजन्त प्र मानुषा ।१०।१६

बारम्बार प्राप्त होने वाली पाप की शक्ति हमारी हिंसा न करे। वह तृष्णा के समान नष्ट हो जाय ॥ ६ ॥ वे कान्तिमान् रुद्र के पुत्र मरुद्गण मरुभूमि में भी वायु रहित वर्षा करते हैं ॥ ७ ॥ रंभाने वाली गौ के समान जब बिजली कड़कती है और वर्षा होती है तब बछड़े का पोषण करने वाली माता के समान ही मौन हुई बिजली मरुतों की सेवा करती है ॥ ८ ॥ जलवर्षक बादलों द्वारा मरुद्गण दिन में भी अंधेरा कर देते हैं। उस समय वे भूमि को वर्षा से सींचते हैं ॥९॥ मरुतों की गर्जना से पृथिवी पर बने हुए घर तथा मनुष्य काँप जाते हैं ॥१०॥ (१६)

मरुतो वीळुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरनु । यातेमखिद्रयामभिः ॥११
स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम् । सुसंस्कृता अभीशवः ॥१२

अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम् । अग्निं मित्रं नदर्शतम् ॥१३
मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः । गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥१४
वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् । अस्मे वृद्धा असन्निह ॥१५॥१७

हे मरुद्गण ! तुम दृढ़ गुर वाले निरन्तर गति वाले अश्वों द्वारा उज्जवल नदियों की ओर गति करो ॥ ११ ॥ हे मरुतो ! तुम्हारी पहिये की हाल, रथ की धुरी और रासें उत्तम हों तथा अश्व स्थिर बलिष्ठ हों ॥ १२ ॥ मित्र के समान वेद-रक्षक अग्नि को साध्य बनाकर स्तुति वचनों का उच्चारण करो ॥ १३ ॥ अपने मुख से स्तोत्र रचना करो। मेघ के समान स्तोत्र को बढ़ाओ। शास्त्रानुकूल का गायन करो ॥ १४ ॥ कांतिमान्, स्तुत्य और स्तुतियों से युक्त मरुतों की स्तुति करो। वे महान् हमारे यहाँ वास करें ॥ १५ ॥ (१७)

३९ सूक्त

(ऋषि—कण्वो घोर. । देवता—मरुत । छन्द – गायत्री)

प्र यदित्था परावत. शोचिर्न मानमस्यथ ।
कस्य क्रत्वा मरुत. कस्य वर्पसा कं यथा कं ह धूतयः ॥१
स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषि पनीयसा मा मर्त्यस्य मायिन. ॥२
परा ह यत्स्थिरं हथ नरो वर्त यथा गुरू ।
वि याथन वनिन. पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥३
नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥४
प्र वेपयन्ति पर्वतान्वि । विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा । इव देवासः सर्वया विशा ॥५॥१८

हे कांपने वाले मरुतो ! जब तुम दूर से धारा के समान, अपने तेज को इस स्थान पर फैंकते हो तब तुम किसके यज्ञ द्वारा आकर्षित होते और किसके पास जाते हो ? । हे मरुतो ! तुम्हारे शस्त्र शत्रुओं का नाश

करने को स्थिर हो। दृढ़तापूर्वक शत्रुओं को रोको। तुम्हारा बल स्तुत्य हो। कपट करने वालों की हमारे निकट प्रशंसा न हो ॥ २ ॥ हे मरुतो ! तुम वृक्षों को गिराने, पत्थरों को घुमाते और पृथ्वी के नये वृक्षों के मध्य से तथा पर्वतों में छिद्र करके निकल जाते हो ॥ ३ ॥ हे शत्रुनाशक मरुतो ! आकाश और पृथिवी में तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है। हे रुद्र पुत्रो ! तुम मिलकर शत्रुओं के दमन के बल बढ़ाओ ॥ ४ ॥ वे मरुद्गण पर्वतों को कम्पित करते, वृक्षों को पृथक्-पृथक् करते हैं। हे मरुतो ! तुम मदमत्त के समान प्रजागण के साथ आगे चलो ॥५॥

उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥६
आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥७
युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते ।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥८
असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः ।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥९
असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥१०॥१६

हे मरुतो ! तुमने बिन्दुयुक्त मृगों को रथ में जोता है। लाल मृग सबसे आगे जुड़ा है। पृथिवी तुम्हारी प्रतीक्षा करती है और मनुष्य भयभीत हो गये है ॥ ६ ॥ हे रुद्र पुत्रो ! सन्तान की रक्षा के लिए हम आपकी स्तुति करते हैं। जैसे तुम पूर्वकाल में रक्षा के लिये आये थे, वैसे ही भयभीत यजमान के पास आओ ।७। हे मरुतो ! तुम्हारे द्वारा सहायता प्राप्त या किसी अन्य द्वारा उकसाया हुआ शत्रु हमारे सामने आये तो तुम उसे अपने बल, तेज और रक्षक साधनों द्वारा दूर हटा दो ॥ ८ ॥ हे पूजनीय मेधावी मरुतो ! तुमने कण्व को सम्पूर्ण ऐश्वर्य दिया था। बिजलियों में वर्षा के निमित्त प्राप्त होने के समान समस्त रक्षण साधनों से युक्त हुये हमको प्राप्त होओ ॥९॥

हे मङ्गलमय मरुतो ! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो । हे कम्पित करने वालो, तुम सम्पूर्ण बलों से युक्त हो । अतः ऋषियों से बैर करने वालों के समान अपनी उग्रता को प्रेरित करो ॥१०॥　　　　(१९)

४० सूक्त

(ऋषि—कण्वो घौर । देवता-ब्रह्मणस्पति । छन्द—बृहती त्रिष्टुप्)

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥१
त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते ।
सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके ॥२
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥३
यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
तस्मा इलां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥
प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ।५।२

हे ब्रह्मणस्पते ! उठो । देवताओं की कामना करने वाले हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । कल्याणकारी मरुद्गण हमारे निकट आवें । हे इन्द्र ! तुम शीघ्र यहाँ आओ ॥ १ ॥ हे बल के पुत्र ब्रह्मणस्पते ! धनी होने पर मनुष्य सुन्दर घोड़ों और बन से युक्त ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ॥ २ ॥ ब्रह्मणस्पति हमको प्राप्त हों । प्रिय सत्यरूप वाणी हमको प्राप्त हो । देवगण पंच हवि से युक्त हमारे यज्ञ से मनुष्यों के हित के लिए आवें ॥ ३ ॥ ऋत्विज को उत्तम धन देने वाला यजमान अक्षय यश प्राप्त करता है । उसके लिए हम शत्रु हिंसक, किसी के द्वारा न मारी जाने वाली इडा को यज्ञ में बुलाते हैं ॥ ४ ॥ ब्रह्मणस्पति ही शास्त्र-सम्मत मन्त्र का उच्चारण करते हैं । उस मन्त्र में इन्द्र वरुण, मित्र और अर्यमा का वास है ।　　　　(२०)

यज्ञ को प्राप्त होने के लिए तुम्हारे मार्ग मे कोई कण्टक नही है। इस यज्ञ में तुम्हारे लिये हवि रूप भोजन निकृष्ट नही है।४। हे पुरुषो ! जिस यज्ञ को सरल विधान से करते हो, वह यज्ञ तुम्हे प्राप्त हो।५।   (५)

स रत्नं मर्त्यो वसु विश्व तोकमुतत्मना । अच्छा गच्छत्यस्तृतः ।६।
कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्ण. । महिप्सरो वरुणस्य ।७।
मा वा घ्नन्तं माशपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् । सुम्नैरिद्व आ विवासे ।८
चतुरश्चिद्ददमानाब्दिभीयादा निधतोः । न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ।६।२६

हे आदित्यो ! तुम्हारा साधक किसी से पराजित नहीं होता। वह उपभोग्य धन और सन्तानो को प्राप्त करता है।६। हे मित्रो ! मित्र और अर्यमा के स्तोत्र का हम कैसे साधन करें ? वरुण के हवि रूप भोजन को किस प्रकार सिद्ध करें ?।७। हे देवगण ! यजमान की हिंसा करने के इच्छुक अथवा उसके प्रति कटु वचन कहने वाले की बात तुमसे नही कहता। मैं तो स्तुतियो से तुम्हें प्रसन्न करता हूँ।८। चारो प्रकार के कुकर्म वालो को वश मे रखने वाले से डरना चाहिये परन्तु दुर्वचन बोलने वाले को पास न बैठावें।६।   (२३)

४२ सूक्त

(ऋषि—कण्वो घोर । देवता—पूषा । छन्द—गायत्री)

सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात् । सक्ष्वा देव प्रणस्पुरः ।१।
यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति । अप स्म तं पथो जहि ।२।
अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् । दूरमधि स्रुतेरज ।३।
त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्य चित् । पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ।४
आ तत्ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे । येन पितॄनचोदयः ।५।२३

हे पूषन् ! हमको दुःखों से पार लगाओ और हमारे पापों को नष्ट करो। हमारे आगामी बनो।१। हे पूषादेव ! हिंसक, चोर, जुआ खेलने वाले जो हम पर शासन करना चाहते हैं, उन्हें हमसे दूर कर दो।२। मार्ग रोकने वाले, चोरी

मेधावी, अभीष्ट वर्षक, महौली रुद्र के निमित्त किस सुखकारी स्तुति का पाठ करें ।१। जिससे पृथिवी हमारे पशु, मनुष्य, गौ, सन्तान आदि के निमित्त रुद्र सम्बन्धी औषधि को उपजावे ।२। जिससे मित्र वरुण और रुद्र देवता तथा समान प्रीति वाले, अन्य सभी देवता हमसे सतुष्ट हों ।३। हम स्तुतियों को बढाने वाले, यज्ञ के स्वामी, सुख-स्वरूप औषधियों से युक्त रुद्र से आरोग्यता और सुख की याचना करते हैं ।४। सूर्य की तरह दमकते हुए स्वर्ण की तरह चमकते हुए वे रुद्र देवताओं मे श्रेष्ठ और ऐश्वर्यों के स्वामी हैं ।५। (२६)

शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये । नृभ्यो नारिभ्यो गवे ।६।
अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् । महि श्रवस्तुविनृम्णम् ।७।
मा नः सोम परिबाधो मारातयो जुहुरन्त । आ न इन्दो वाजे भज ।८।
यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन्धामन्नृतस्य ।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ।९।२७

हमारे अश्व, मेढ, भेड़ और गवादि के लिए वे रुद्र कल्याणकारी हों ।६। हे सोम ! मनुष्यों मे व्याप्त सौगुना ऐश्वर्य दो । हमको बल सहित महान यश प्रदान करो ।७। सोमयाग मे बाधा देने वाले हमको दुःख न दें । शत्रु हमको न सतावें । हे सोम ! हमको बल प्रदान करो ।८। हे सोम ! तुम उत्तम स्थान वाले तुम संसार की मूर्धा के समान अपनी प्रजा पर स्नेह करो तुम अपने को विभूषित करने वाली प्रजा को जानने वाले बनो ।९। (२७)

४४ सूक्त [नवां अनुवाक]

(ऋषि—कण्वो प्रस्कण्व. । देवता—अग्नि. । छन्द—बृहती, त्रिष्टुप्.)

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ।१।
जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ।२।
अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।

हे अत्यन्त युवा अग्ने ! तुम स्तुत्य, मधुर जिह्व, सरलता से प्राप्त हो। स्तोता की ओर ध्यान दो और आयु-वृद्धि करते हुए देवताओं का पूजन करो।६। हे ऐश्वर्य वाले ! तुमको मनुष्य उत्तम प्रकार से प्रज्वलित करते हैं । तुम अत्यन्त मेधावी देवगण को इस स्थान पर लाओ ।७। हे सुन्दर यज्ञ वाले अग्ने ! तुम प्रातःकालों और रात्रियों में उषा, अश्विद्वय, भग और अग्नि देवताओं के लिये यहाँ लाओ । सोम निष्पक्ष कर्ता यजमान तुम हविवाहक को प्रदीप्त करते हैं ।८। हे अग्ने ! तुम यज्ञ स्वामी और प्रजा-दूत हो । तुम प्रातः चैतन्य, प्रकाशदर्शी देवगण को सोमपान के लिये यहाँ लाओ ।९। हे प्रकाश रूप धन के स्वामिन् ! सबके दर्शन योग्य तुम पूर्वकाल में भी उषाओं के साथ प्रदीप्त किये गये हो। मनुष्यों के लिए तुम ग्रामों के रक्षक और यज्ञों में पुरोहित होओ ।१०। (२)

नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद्देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ।११।
यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ।१२।
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरं ।१३।
शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः ।१४।३।

हे अग्ने ! तुम देवार्चन के साधन, होता, ऋत्विज ज्ञानी, वेगवान् दूत और अविनाशी हो । मनु के समान हम भी तुम्हें अपने घरों में स्थापित करते हैं ।११। हे मित्रों के हितैषी अग्ने ! जब यज्ञ में पुरोहित रूप से तुम देव कार्यों को प्राप्त होते हो, तब तुम्हारी ज्वालायें समुद्र की लहरों के समान वेग और ध्वनि वाली होकर दमकती हैं ।१२। हे अग्ने ! हमारे सुनने योग्य स्तुति वचनों को सुनो। मित्र, अर्यमा, और प्रातःकाल आने वाले देवताओं के सहित यज्ञ में कुशा पर विराजमान होओ ।१३। मङ्गलकारी अग्नि की जिह्वा से हवि आस्वादन करने

नित्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम् ।
श्रुत्कर्ण सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ।७।
आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः ।
बृहद्भा बिभ्रतो हविरग्ने मर्ताय दाशुषे ।८।
प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य ।
इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो ।९।
अर्वाञ्चं दैव्य जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः ।
अयं सोम. सुदानवस्तं पात तिरो अह्न्यम् ।१०।३२।

हे अद्भुत कीर्ति वाले अग्निदेव ! तुम बहुतो के प्रिय हो । तु प्रकाश वाले का हवि के निमित्त आह्वान करते हैं ।६। हे अग्ने होता, ऋत्विज, धन के जानने वाले, प्रख्यात, स्तुति सुनने वाले, तुम विद्वानों ने स्वर्ग-प्राप्त की इच्छा से यज्ञो में स्थापित किया ।७। अग्ने ! निष्पन्न सोम और हवि वाले विद्वानो ने आपको मरणधर्म यजमान के निमित्त स्थापित किया है ।८। हे बलोत्पन्न अग्ने ! तुम दाता औ धन के स्वामी हो । प्रात. काल में आने वाले देवगण को कुश पर बैठाकर सो -पान के लिए तैयार करो ।९। हे अग्ने ! साक्षात् हुये देव-समूह को स्तुतिपूर्वक पूजो । हे मङ्गलकारी देवगण ! यह निचोड़ा हुआ सोम प्रस्तुत है, इसका पान करो ।१०। (३२)

४६ सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्व. काण्व। देवता—अश्विनौ । छन्द—गायत्री)

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ।१।
या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ।२।
वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि यद्वां रथो विभिष्पतात् ३।
हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा । पिता कुटस्य चर्षणिः ।४
आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा । पातं सोमस्य धृष्णुया ५।३३

जो प्रिय उषा पहले दिखाई नहीं दी, वह आकाश से प्रकट होती है ।

कुमारो । मैं हृदय से तुम्हारी स्तुति करता हूँ ।१। जो समुद्र से सम्पन्न ऐश्वर्य का उत्पादन करने वाले तथा ध्यान से धनों के ज्ञाता हैं, स्तवन करता हूँ ।२। हे अश्विद्वय ! जब तुम्हारा रथ अन्तरिक्ष में जाता तुम्हारी सभी स्तुतियाँ करते हैं ।३। हे पुरुषो ! जलों से स्नेह करने वाले गृह पालक और द्रष्टा अग्नि हमारी हवि से तुम्हें पूर्ण करते हैं ।।४।। स्व सहित अश्वियो ! हमारे आदर-पूर्वक वचनों को ग्रहण करते हुए, द्वारा प्रेरित सोम का निःशङ्क पान करो ।५। [३३]

पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासाथामिषम् ।६।
नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे । युञ्जाथामश्विना रथम् ।७।
वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः । धिया युयुज्र इन्दव ।८।
ण्वाम इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे । स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ।९।
भा उ अशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः । व्यख्यज्जिह्वयासितः ।१०।३४

अश्विनो ! प्रकाश से युक्त और अँधेरे से रहित अन्न धन को हमारे में प्रदान करो ।६। हे अश्विनीकुमारो ! हमारी स्तुतियों से प्रेमपूर्ण बंधन कर हमको दुःख समुद्र से पार करो । अपने रथ में अश्वों को जोतो ।७। वनो ! तुम्हारा जहाज समुद्र से भी विस्तृत है । समुद्र के किनारे पर रथ खड़ा है तथा यहाँ सोमरस तैयार खड़ा है ।८। हे कण्व वंशियो ! दिव्य गुणों को प्रेम हुआ है । समुद्र के किनारे पर ऐश्वर्य है । हे अश्विद्वय पना स्वरूप कहाँ रखना चाहते हो ? ।९। उषाकाल में सूर्य सोने को सहित प्रकाशित हो गया । अग्नि श्यामवर्ण का होता हुआ अपनी लपट जिह्वा से प्रकट होने लगा ।१०। [३४]

पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि व स्रुतिर्दिवः ।११।
दश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति । मदे सोमस्य पिप्रतः ।१२।
साना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा । मनुष्वच्छंभू आगतम् ।१३
एषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् । ऋतावनथो अक्तुभिः ।१४।
पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः ।१५।३५

पार जाने के लिये यज्ञ रूप उत्तम मार्ग है। उसमें से निकटवर्ती आकाश की पगडंडी दिखाई दे रही है ।११। स्तोता सोम के आनन्द से करने वाले अश्विद्वयों की रक्षा की बार—बार सराहना दे ।१२। हे प्रकाश आकाश के निवासी, सुखदायक अश्विनी कुमारो ! मनु की स्तुतियों से उ प्राप्त होने के समान हमारे स्तवन से हमको प्राप्त होओ ।१३। हे अश्विद्वय तुम चारों ओर गमन करने वाले की शोभा के पीछे-पीछे उषा फिर रही तुम रात्रि में हवियों की इच्छा करो ।१४। हे अश्विनो ! तुम दोनों सोम-करते हुए अपनी रक्षाओं से हमको सुखी करो ।१५। (३

। तृतीय अध्याय समाप्त ।

४७ सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्वः काण्व । देवता—अश्विनौ । छन्द—बृहति, पंक्ति)

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ।१।
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सुश्रुणुत हवम् ।२।
अश्विना मधुमत्तमं पात सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ।३।
त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ।
याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्व स्माँ अवतं शुभस्पती पात सोमवृतावृधा ।५।१

हे यज्ञ-वर्द्धक अश्विनो ! यह अत्यन्त मधुर सोम तुम्हारे लिए निचं गया है, उसका पान करो और हविदाता को रत्नादि धन प्रदान करो ।१। अश्विद्वय ! अपने तीन काठो मे युक्त त्रिकोण सुन्दर रथ से हमको प्राप्त होओ यह कण्ववंशी अपने यज्ञ में मन्त्रयुक्त स्तुतियाँ अर्पित करते हैं, उनको

सुनो ।२। हे यज्ञ वर्द्धक विकराल अश्विनो ! तुम मधुर सोमो का पान करो । फिर अपने रथ मे धनो को धारण करते हुये हविदाता की ओर पधारो ।३। हे सर्वज्ञाता अश्विद्वय ! तीन स्थानो में रखे हुये कुश पर विराजमान होकर मधुर रस के यज्ञ का सिंचन करो । स्वर्ग की कामना से सोम को निष्पन्न करने वाले कण्ववंशी तुम्हारा आह्वान करते हैं ।४। हे यज्ञवर्द्धक सुकर्मों का पोषण करने वाले अश्विद्वय ! जिन साधनो से तुमने कण्व की रक्षा की थी, उनसे हमारी भी रक्षा करो और इस सोम-रस का पान करो ।५।   (१)

सुदा से दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ।६।
यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।७।
अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ।८।
तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ।९।
उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे ।
शश्वत्कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना ।१०।२

हे उग्र कर्मा अश्विद्वय ! रथ मे धन को धारण कर तुमने सुदास नामक राजा को अन्न पहुँचाया । उसी प्रकार अन्तरिक्ष या आकाश से बहुत सा इच्छित धन हमारे लिये स्थापित करो ।६। हे असत्य-रहित अश्विद्वय ! तुम दूर हो या पास सूर्य की किरणो सहित, घूमने वाले रथ न हमको प्राप्त होओ ।७। हे पुरुषो ! यज्ञ मे आने वाले अश्व सोमपान मे तुम्हें हमारे सामने ले आवें । उत्तम कर्म और दान वाले यजमान को अन्न से पुष्ट करते हुए तुम कुश के आसनो पर बैठो ।८। हे असत्य रहित अश्विद्वय ! जिस रथ से तुमने हविदाता को निरन्तर धन दिया है, उसी से सोमो का पान करने के लिए यहाँ पधारो ।९। हे ऐश्वर्यवान्‌

अश्विद्वय ! रक्षा के निमित्त स्तोत्रों से हम बारम्बार तुम्हारा आह्वान करते हैं। कण्ववंशियों के समाज में तुम सोम-पान करते रहे हो, यह प्रसिद्ध ही है ।१०। [२]

४८ सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्व काण्व । देवता—उषा । छन्द—बृहती पंक्ति)

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ।१।
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ।२।
उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ।३।
उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ।४।
आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ।५।३

हे आकाश-पुत्री अत्यन्त कीतिमती उषे ! हमको प्रशंसायुक्त उपभोग और धन प्राप्त कराने वाले ऐश्वर्य के साथ तुम प्रकट होओ ।१। अश्वों और गौओं से युक्त, सबको जानने वाली उषा हमको निरन्तर प्राप्त हो। हे उषे ! मेरे निमित्त प्रिय और सत्य बात कहो तथा धन प्रेरित कर धनी बना दो ।२। उषा पहिले भी हमारे पास निवास करती थी। वह आज भी प्रकट हो। उसके आगमन की हम प्रतीक्षा में हैं। जैसे रत्नों के इच्छुक समुद्र में मन लगाये रहते हैं ।।३।। हे उषे ! तुम्हारे आने के साथ ही जो स्तोता दान की इच्छा करते हैं, उन पुरुषों के नाम को कण्वों में महान् कण्व प्रशंसा वचनों सहित कहता है ।४। उत्तम-मार्ग [illegible] नशीलों — [illegible] हुई उषा गृह-स्वामिनी के समान सबको पालत [illegible]

को वृद्धावस्था प्राप्त करती है । पैर वाले जीवों को कर्म मे लगाती और पक्षियो को उड़ाती है ।५।　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　[३]

वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवती ।६।
एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ।७।
विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ।८।
उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ।९।
विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ।१०।४

वही उषा युद्धों की ओर प्रेरित तथा कर्मशीलो को काम मे लगाती है । वह स्वयं विश्राम नही करती । हे अन्न वाली उषा ! तुम्हारे आने पर पक्षी भी अपने घोंसले छोड़ देते हैं ।६। इसने सूर्य के उदयस्थान से दूर देशों को जोड़ दिया । यह सौभाग्य-शालिनी उषा सौ रथों द्वारा मनुष्य लोक मे आती है ।७। सब संसार इसके दर्शनों के लिए झुकता है । यह प्रकाशवती सबको सुमार्ग बताती है । आकाश की पुत्री, धन वाली यह उषा हमारे वैरियो और दुःख देने वालो को दूर हटावे ।८। हे आकाशपुत्री उषे ! हमको सौभाग्यशाली बनाती हुई हमारे यज्ञो मे प्रकट हो और आनन्द दायक प्रकाश से सर्वत्र चमकती रहे ।९। हे सुमार्ग पर ले चलने वाली उषे ! तू प्रकट होती है, इसी मे तेरी महत्ता और जीवन है । तुम कांतिमती, धन वाली हमारी ओर रथ मे आकर आह्वान को सुनो ।१०।　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　[४]

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ।११।

विश्वान्देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य मुषो वाजं सुवीर्यम् ।१२।
यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रतिभद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ।१३।
ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ।१४।
उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ।१५।
सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिलाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ।१६।५

हे उषे ! मनुष्य के लिये विभिन्न प्रकार के अन्नो की कामना करो । हविदाताओं की स्तुतियों से उनको सत्कर्मयुक्त यज्ञों की ओर प्रेरित करो ।११। हे उषे ! सोमपान के लिये अन्तरिक्ष से सब देवताओं को यहाँ लाओ । तुम हमें अश्वों और गौओं से युक्त धन और वीरता सहित अन्न को प्रदान करो ।१२। जिसकी चमकती हुई कान्ति मङ्गल रूप है, वह उषा सबके वरण करने योग्य उत्त धनो को हमारे लिये सुप्राप्य कराये ।१३। हे पूजनीय ! प्राचीन ऋषि भी तुमको अन्न और रक्षा के निमित्त बुलाते थे । तुम हमारे स्तोत्रों का उत्तर यश और धन से दो ।१४। हे उषे ? तुमने अपने प्रकाश से आकाश के दोनों द्वारों को खोला है । तुम हमको हिंसकों से रहित बड़ा घर और गवादि युक्त धन प्रदान करो ।१५। हे उषे ! हमको ऐश्वर्यशाली बनाओ और गौओं को युक्त करो। हमको शत्रु का नाश करने वाला पराक्रम देकर अन्नो से सम्पन्न बनाओ ।१६।　　　　　　　　　　　　　　　　(५)

४९ सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्वः । देवता—उषा । छन्द—अनुष्टुप्)

उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि ।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ।१

सुतेराम सुग रथ यमव्यस्या उपस्तवम् ।
तेना सुस्रवसं जनं प्रवाद्य दुहितर्दिव ।२।
वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।
उप प्रारन्नृतूँरनू दिवो अन्तेभ्यस्परि ।३।
व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वाभासि रोचनम् ।
ता त्वामुषर्वसूयवो गीर्भि कण्वा अहूषत ।४।८

हे उषे ! प्रकाशमान आकाश से भी उत्तम मार्गों से आओ । सोमयाग वाले के घर लाल रंग के घोड़े तुम्हें पहुँचावें ।१। हे आकाश की पुत्री उषे ! तुम जिस सुन्दर और सुखदायक रथ पर विराजमान हो, उसके सहित आकर यजमान की रक्षा करो ।२। हे उज्ज्वल वर्ण वाली उषे ! तेरे आते ही दो पैर वाले मनुष्य, पंख वाले पक्षी तथा चौपाये आदि सब ओर विचरने लगते हैं ।३। हे उषे अपनी किरणों से उदय होती हुई तुम समस्त संसार को प्रकाशित करती हो। धन की कामना से कण्ववंशी स्तुतियों द्वारा तुम्हारा आह्वान करते हैं ।४।
[४]

५० सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्व. कण्व । देवता सूर्य । छन्द—गायत्री)

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ।१।
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः सूराय विश्वचक्षसे ।२।
अदृश्रमस्य केतवो विरश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ।३।
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ।४।
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ।५।६

सर्वभूतों के ज्ञाता प्रकाशमान सूर्य की रश्मियाँ आकाश में ही गमन करती हैं ।१। सर्वदर्शी सूर्य के प्रकट होते ही नक्षत्रादि प्रसिद्ध चोर के समान छिप जाते हैं ।२। सूर्य की ध्वजा रूप रश्मियाँ प्रज्ज्वलित अग्नि के समान मनुष्यों की ओर जाती हुई स्पष्ट दिखाई देती हैं ।३। हे सूर्य !

तुम वेगवान् सबके दर्शन करने योग्य हो। तुम प्रकाश करो सबको प्रकाशित करते हो।४। सूर्य ! तुम देवगण मनुष्य तथा सभी प्राणियों के निमित्त व्याप्त हुए तेज को प्रकाशित करने को आकाश में गमन करते हो।५।

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ।६।
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः पश्यञ्जन्मानि सूर्य ।७।
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ।८।
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ।९।
उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।१०।
उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ।११।
शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ।१२।
उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ।१३।८।

हे पवित्रताकारक वरुण ! तुम जिस नेत्र से मनुष्यों की ओर देखते हो, उस नेत्र को हम प्रणाम करते हैं ।६। हे सूर्य ! रात्रियों को दिनों से पृथक करते हुए, जीव-मात्र को देखते हुए तुम विस्तृत आकाश में गमन करते हो ।७। हे दूरद्रष्टा सूर्य ! तेजवन्त रश्मियों सहित रथारोही हुए तुमको सात घोड़े चलाते हैं ।८। सूर्य रथ की पुत्री स्वयं जुड़ने वाली सात घोड़ियों को रथ में जोड़कर आकाश में गमन करते हैं ।९। अन्धकार के ऊपर विस्तृत प्रकाश को फैलाते हुए देवताओं में श्रेष्ठ सूर्य को हम प्राप्त हों ।१०। हे मित्रों के मित्र सूर्य ! तुम उदय होकर आकाश में उठते हुए मेरे हृदय रोग और पीतवर्ण को मिटाओ ।११। हे सूर्य ! मैं अपने पीलेपन को शुक-सारिकाओं पर स्थापित करता हूँ ।१२। यह सूर्य

अपने पूर्ण तेज से सब रोगों के नाश के निमित्त उदय हुए हैं। मैं उन रोगों के वश में न पड़ सकूँ ॥१३॥ (८)

५१ सूक्त [दशवाँ अनुवाक]

(ऋषि—सव्य आङ्गिरस । देवता-इन्द्र । छन्द-जगती)

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥१
अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥२
त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेन चिद्विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥३
त्वमपामपिधानावृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु ।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥४
त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥५

हे मनुष्यो! बहुतों द्वारा बुलाये गये स्तुत्य, धन-सागर, श्रेष्ठ वीर इन्द्र को प्रसन्न करो। मनुष्यों के हित में किये गये जिसके कार्य प्रसिद्ध हैं। तुम बुद्धिपूर्वक उसी की पूजा करो ॥ १ ॥ सहायता देने वाले, कर्मों में कुशल, ऋभुओं से पूज्य, अत्यन्त बल वाले इन्द्र का स्तवन करने वालों की प्रिय वाणी सत्कर्मा इन्द्र को उत्साहवर्द्धक हुई ॥ २ ॥ तुमने अङ्गिरा और अत्रि के निमित्त गौओं का समूह प्राप्त कराया। तुमने "विमद" के लिये वज्र द्वारा अन्नयुक्त धनों को प्राप्त कराते हुये उनकी रक्षा की ॥३॥ हे इन्द्र! तुमने जलों वाले मेघ को खोला। पर्वत पर धन प्राप्त करने के लिये वृत्र को मारा और सूर्य को दर्शन के निमित्त प्रेरित किया है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! जो स्वधा युक्त की हव्य सामग्रियों को ला जाते थे उन छल विद्यो को तुमने दूर हटाया। तुमने "पिप्रु" नामक राक्षस का गढ़ तोड़कर युद्ध में राक्षसों का नाश कर "ऋजिश्वा" की रक्षा की ॥ ५ ॥ (९)

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥६
त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥७
वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥८
अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः ॥९
तक्षद्यत्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः ॥१०॥१०

हे इन्द्र ! तुमने "शुष्ण" के साथ युद्ध कर "कुत्स" को बचाया। "शम्बर" को "अतिथिग्व" से पराजित कराया । 'अर्बुद" नामक असुर को पाँवो से रोंदा । तुम राक्षसो का नाश करने को ही उत्पन्न हुये हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम सभी बलो से पूर्ण हो । सोम पीने के निमित्त तुम हर्ष प्राप्त कर वज्र हाथ मे लिये आते हो । उसी से शत्रुओ के सम्पूर्ण व्रतो को नष्ट करते हो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र तुम आर्य और अनार्य को भले प्रकार जानते हो। कर्महीनो को ललकारते हुए कुश-आसन बिछाने वाले यजमान को वशीभूत करो । यज्ञानुष्ठान से प्रेरक तुम्हारा मै यज्ञो मे आह्वान करता हूँ ॥ ८ ॥ हे इन्द्र तुम कर्महीनो को कर्मवान् के वशीभूत करते एव प्रशसको द्वारा निन्दकों को मारने हो 'वम्र' ऋषि ने बढते हुये, इन्द्र से दिव्य ऐश्वर्य को प्राप्त किया ॥९॥ हे इन्द्र ! 'उशना' ने स्तुतियो द्वारा तुम्हारा बल बढाया। उस बल ने आकाश और पृथिवी को भी कम्पित कर दिया । हे मनुष्यो पर कृपा करने वाले ! सब ओर से प्रसन्नताप्रद होकर, मन से जुतने वाले अश्वो सहित हविरूप अन्न सेवन के निमित्त यहाँ आओ ॥१०॥   (१०)

मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः ॥११

आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥१२
अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥१३
इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेकेवज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इन्द्राय. क्षयति प्रयन्ता ॥१४
इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाच ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ।१५।११

'उशना' की स्तुति से प्रसन्न हुये इन्द्र वेगवान् अश्वों पर चढ़े । फिर उन्होंने मेघों से प्रवाह रूप जल को मुक्त किया और 'शुष्ण' के दुर्गों को नष्ट कर दिया ॥ ११ ॥ हे वीर्यवान् ! तुम सोम पीने के लिये रथ पर चढ़ते हो, जिन सोमों से तुम प्रसन्न होते हो, वे 'शार्य्यात' ने सिद्ध किये थे । सोम निष्पन्न करने वाले यज्ञ की जितनी कामना करते हैं उतनी ही विमल कीर्ति तुम्हें प्राप्त होती है ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! तुमने स्तुति करने वाले राजा 'कक्षीवान्' को 'वृचया' नामक पत्नी प्रदान की । तुम श्रेष्ठ कर्म वाले, 'वृषणश्व' राजा के लिये वाणी रूप बने, इस बात को सब प्रकार कहना चाहिये ॥ १३ ॥ अङ्गिरा वंश वालों के स्तोत्र रूप द्वार में स्तम्भ के समान स्थिर इन्द्र उत्तम कर्म वालों को अश्व, गौ, रथ तथा अभीष्ट ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ १४ ॥ हे श्रेष्ठ ! तुम प्रकाशमान् बलवान् और उन्नतिशील को हमारा प्रणाम है । हे इन्द्र ! इस युद्ध में अपने सब वीरों के सहित हम आपकी शरण में उपस्थित हैं ॥१५॥   (११)

५२ सूक्त

(ऋषि—सव्य आङ्गिरस । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्)

त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥१
स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।

इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥२
स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः ।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥३
आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः ।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सव ॥४
अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतय ।
इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्य परिधींरिव त्रितः ।५।१२

स्वर्ग प्राप्त कराने वाले इन्द्र का भले प्रकार पूजन करो । गतिमा अश्व के रथ मे स्तुतियो से इन्द्र शीघ्र आते हैं । मैं आगत इन्द्र का नमस्का पूर्वक स्वागत करता हूँ ।। १ ।। जब जलो में पर्वत के समान अविचल र से प्रजाओं की रक्षा के लिये इन्द्र ने जलो को रोकने वालो राक्षसों को मार तब वे अत्यन्त बलिष्ठ हो गये ।। २ ।। इन्द्र ने जलो को रोकने वालों पर विज प्राप्त की । इन्द्र आकाशव्यापी हैं । वे आनन्द के मूल और विद्वानों द्वारा सो रस से वृद्धि को प्राप्त हैं । मैं उन महान् दाता इन्द्र का अन्न के निमित्त आह्वा करता हूँ ।।३।। समुद्र मे गिरती हुई नदियाँ जैसे समुद्र को भरती हैं वैसे ह कुश पर रखे हुये सोम इन्द्र को पूर्ण करते है । शत्रुओ का शोषण करने वाले वह इन्द्र अविचल मरुद्गण को सहायक बनाते हैं ।। ४ ।। अभिमुख गमन करने वाली नदियो के समान वृत्र से युद्ध करने वाले इन्द्र और उसके सहायक मरुतों को सोम का आनन्द प्राप्त हुआ । तब सोम-पान से साहस मे बढ़े हुये इन्द्र ने उसके दुर्गों को तोड़ दिया ।। ५ ।।   (१२)

परी घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत् ।
वृत्रस्य यत्प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ।।६
हृदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ।।७
जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषु

अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥८
बृहत्स्व श्चन्द्रममवद्यदुक्थ्य मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतय स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥९
द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद्भियसा वज्र इन्द्र ते ।
वृत्रस्य यद्वद्वधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः ॥१०॥१३

हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो। बल से उत्तेजित हुए तुमने वृत्र के जबड़े के नीचे वज्र प्रहार किया ॥६॥ हे इन्द्र ! प्रवाहित जल के जलाशय को प्राप्त करने के समान यह स्तोत्र तुमको प्राप्त होते हैं। त्वष्टा ने तुम्हारे बल की वृद्धि की और जीतने वाली शक्ति से तुम्हारे वज्र को बनाया ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुमने अश्व पर चढ़कर मनुष्यों के हित के लिए वृत्र को मारा। उस समय लोहे का वज्र हाथ में लेकर हमारे दर्शन के लिये सूर्य को स्थापित किया ॥ ८ ॥ आनन्द देने वाला, बलयुक्त तथा स्तुति के योग्य स्तोत्र को मनुष्यों ने वृत्र के भय से बचने के लिए रचना की। तब मनुष्यों के लिये युद्ध करने वाले उपकारी इन्द्र की मरुतों ने सहायता की ॥९॥ हे इन्द्र ! वृत्र के भय से विशाल आकाश काँप गया। तब तुमने अपने वज्र से उसे मार डाला ॥१०॥ (१२)

यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।
अत्राह ते मघवन्विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥११
त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥१२
त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥१३
न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥१४
आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।
वृत्रस्य यद्भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥१५॥१४

हे इन्द्र ! पृथिवी दस गुने भोग वाली हो और मनुष्य उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त हो । ऐश्वर्यशालिन् ! तुम्हारा पराक्रम पृथिवी और आकाश में सर्वत्र फैले ॥११॥ हे निर्भय इन्द्र ! तुमने अन्तरिक्ष के ऊपर रहते हुये हमारी रक्षा के लिये पृथिवी को रचा । तुम जल और ज्योति के पुंज हुये स्वर्ग में वास करते हो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्तरिक्ष और पृथिवी के प्रतिमान हो । तुम वीरों से युक्त आकाश के स्वामी और अन्तरिक्ष के पूर्ण करने वाले हो। वास्तव में तुम्हारे समान और कोई नहीं हैं ॥ १३ ॥ जिसकी समानता आकाश और पृथिवी नहीं कर सकते, अन्तरिक्ष के जल जिसकी सीमा को नहीं पाते, वृत्र के प्रति युद्ध करते हुए जिसकी तुलना नहीं हो सकता । हे इन्द्र ! ये सब प्राणी एक मात्र तुम्हारे ही अधीन हैं ।। १४ ॥ उस युद्ध में मरुतो ने तुम्हारी स्तुति की और सब देवता हर्षित हुये । तब हे इन्द्र ! तुमने वृत्र के मुख पर वज्र प्रहार किया था ।

५३ सूक्त

(ऋषि—सव्य आङ्गिरस. । देवता—इन्द्र.। छन्द-जगती)

न्यू षु वाच प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वत. ।
नू चिद्धि रत्न समतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१
दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन वनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शन सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥२
शचीव इन्द्र पुरुकृद्द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः सगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितु काममूनयीः ॥३
एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्यु दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेपसः समिषा रभेमहि ॥४
समिन्द्राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥५॥१५

हम इन्द्र के लिए सुन्दर स्तोत्रो को कहते हैं । इन्द्र ने दैत्यों के धनों को सोते हुये मनुष्यों के धन पर अधिकार करने [illegible] छीन लिया ।

धन देने वालों की उत्तम स्तुति की जाती है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम अश्व, गाय धन धान्यादि के दाता हो । तुम प्राचीनकाल से दान करते आये हो । तुम किसी की आशा भङ्ग नहीं करते तथा मित्रता रखने वालों के मित्र हो । हम तुम्हारे लिये यह स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ हे मेधावी, वह्कर्मा धनों को प्रकाशित करने वाले इन्द्र ! सम्पूर्ण धन तुम्हारा ही बताया जाता है । उसे हमारे निमित्त लाओ । अपने स्तोताओं की कामना व्यर्थ न करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! हमारी दी हुई हवियों और सोमों से हर्षित हुये तुम गौ, घोड़ों से युक्त धन देकर हमारी दरिद्रता दूर करो । हमारे शत्रुओं को मारकर द्वेष रहित बल हमको दो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हम अन्न-धन वाले हों बहुतों को प्रसन्न करने वाले बलों से युक्त हों । वीरतायुक्त, अश्व, गवादि प्राप्त करने की उत्तम बुद्धि से सम्पन्न हों ॥५॥ (१५)

ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्ण्या ते सोमसो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत्कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि वर्हय ॥६
युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुर समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥७
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत्पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८
त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९
त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणाम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥१०
य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥११॥१६

हे सज्जनों के रक्षक इन्द्र ! वृत्र को मारने वाले युद्ध में सोमों से प्राप्त आनन्दों ने तुम्हें बढ़ाया । तब यजमान की स्तुति से दस हजार शत्रुओं को तुमने मारा ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम युद्ध में निःशङ्क जाते हो ।

तुम एक के बाद दूसरे दुर्ग को तोड़ते ही । तुमने अपने वज्र से 'नमुचि' नाम दैत्य को दूर में जाकर मार डाला ।। ७ ।। हे इन्द्र ! जिसके समान दानी नहीं, ऐसे तुमने 'अतिथिग्व' के लिये 'करञ्ज' और 'पर्णय' नामक दैत्य को अत्यन्त चमकते हुये अस्त्र से मारा । तुमने 'ऋजिश्वन' राजा के द्वा 'वंगृद' नामक दैत्य को पराजित कराया ।। ८ ।। हे इन्द्र ! तुमने सुश्रवा युद्ध के लिये आते हुये बीस राजाओं को उनके साठ हजार निन्यान अनुचरों सहित रथ के पहिये से भगा दिया ।। ९ ।। हे इन्द्र ! तुमने अप रक्षा-साधनों से 'सुश्रवा'' को, पोषण-साधनों से 'तूर्वयाण'' को बचाया तुम्हीं ने ''कुत्स'', 'अतिथिग्व' और आयु' नामक राजाओं को ''सुश्रवा के अधीन कराया ।। १० ।। हे इन्द्र ! देवताओं द्वारा रक्षित हम तुम्हा मित्र हैं । हम भविष्य में भी सुखी रहें । हम बहुत से वीरों से युक्त लम्बी आयु को धारण करते हुये तुम्हारा स्तवन करते रहें ।।११।। (१६

५४ सूक्त

(ऋषि—सव्य आङ्गिरस, । देवता-इन्द्र । छन्द-जगती)

मा नो अस्मिन्मघवन्पृत्स्वंहसि नहि ते अन्त शवसः परीणशे ।
अक्रन्दयो नद्यो रोरुवद्वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत ।।१
अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि ।
यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृ ते ।।२
अर्चा दिवे बृहते शूष्यं वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः ।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि ष ।।३
त्वं दिवो बृहत सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शम्बरं भिनत् ।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ।।४
नि यद् वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद्व्रन्दिनो रोरुवद्वना ।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित्कृणवः कस्त्वा परि ।।५।१७

हे महान् इन्द्र ! इस कष्ट रूप युद्ध में हम [illegible] न करो । तुम्हारा को म[illegible] है । तुमने जलों को शब्द देकर [illegible] युक्त किया

तब पृथिवी क्यों न डरती ? ॥ १ ॥ हे मनुष्यो ! सर्वशक्तिमान मेधावी इन्द्र को नमस्कार करो। आदर सहित स्तुतियों को सुनने वाले इन्द्र की प्रशंसा करो, जो प्रजाओं और धनों के वर्षक, श्रेष्ठ बल द्वारा आकाश पृथिवी को सुशोभित करते हैं ।२॥ जिस बली इन्द्र का मन भय रहित है, उसके निमित्त आदरपूर्वक वचनों को कहो। वे शत्रुओं को दूर करने वाले, अश्वयुक्त और अभीष्ट की वर्षा करने वाले है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने आकाश की मूर्द्धा को कँपा दिया और अपनी महान् सामर्थ्य से 'शम्बर' को मारा । तुम निःशङ्क मन से युद्ध मे राक्षसो को मारने की इच्छा करते हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुमने वायु के ऊपर जलो को गर्जना के लिए प्रेरित करते हुए भी शुष्ण का वध किया। तुम उसी कार्य को करने की अब इच्छा करो तो करो तो कोई नहीं रोक सकता ॥५॥   (१७)

त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥६
स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति ।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ॥७
असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे ।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ॥८
तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः ।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ॥९
अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः ।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते ॥१०
स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम् ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन्राये च नः स्वपत्या इषे धाः ॥११॥१८

हे बहुकर्मा इन्द्र ! तुमने प्रजाजनों के हित-चिन्तक 'तुर्वश', 'यदु' और 'तुर्वीति' की रक्षा की। तुमने रथ और घोड़ो की बचाते हुए 'शम्बर' के निन्यानबे पुरों को नष्ट कर डाला ॥ ६ ॥ हविदाता और नियम पर चलने

वाला मनुष्य उत्तम पुरुषों का स्वामी हुआ बढ़ता है। उत्तम स्तुतियों के गायक के निमित्त आकाश से जल वर्षा होती है ॥ ७ ॥ सोमपायी इन्द्र के बल बुद्धि की तुलना नहीं हो सकती। हे इन्द्र ! तुम दानशील के राज्य और बल को बढ़ाने वाले हो ॥८॥ हे इन्द्र ! पाषाणों से कूटकर और छानकर यह पेय सोम रखे हैं, इनका उपभोग करो। यह तुम्हारे ही निमित्त है । अपनी इच्छा तृप्त करने के पश्चात् हमको देने की बात सोचो ॥ ९ ॥ जब जलों की धाराओं को रोकने वाला अन्धकार स्थिर था और मेघ वृत्र के उदर-प्रदेश में थे, तब इन्द्र ने उन जलों को नीचे स्थानों की ओर बहाया ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! सुख, यश, मनुष्यों को वशीभूत करने वाला शासन और शक्ति की हम में स्थापना करो। तुम हमारे प्रमुख जनों की रक्षा करते हुये ऐश्वर्य श्रेष्ठ सन्तान और बल को हमारी ओर प्रेरित करो ॥११॥ (१८)

५५ सूक्त

(ऋषि—सव्य आङ्गिरस । देवता-इन्द्र । छन्द-जगती)

दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति ।
भीमस्तुविष्मांश्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः ॥१
सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः ।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात्स युध्म ओजसा पनस्यते ॥२
त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि ।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥३
स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम् ।
वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ॥४
स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।
अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥५॥१९

इन्द्र की कीर्ति सर्वत्र फैली है। पृथिवी भी इनके समान नहीं है। विकराल, बलवान् मनुष्यों को सन्तापित करने वाला इन्द्र ... तीक्ष्ण वज्र को तेज करता है ॥ १ ॥ अन्तरिक्ष व्यापी इ...

जलों को समुद्र द्वारा नदियों को प्राप्त करने के समान प्रभाव से ग्रहण करते हैं। वे सोम-पान के लिये वृषभ के समान गति करते हैं। वहा बली इन्द्र स्तुतियों को चाहते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम मेघ के स्वामी और सब धनों के धारणकर्त्ता हो। तुम बलों में बढ़े हुये विकराल कर्म वालों में अग्रगण्य हो ॥३॥ वह इन्द्र मनुष्यों में वीर्यरूप, पूजकों से स्तुत्य, पूज्य, अभीष्ट वर्षक हैं। जब सम्पदाता यजमान स्तुति वाक्य उच्चारण करता है उस समय अभीष्टप्रदायक इन्द्र उसे यज्ञ में तत्पर करते हैं ॥ ४ ॥ वही वीर इन्द्र अपने पवित्र बल को मनुष्यों के लिये युद्ध करते हैं। मनुष्य गण उस वज्रधारी इन्द्र को श्रद्धा से नमस्कार करते हैं ॥ ५ ॥ (१९)

स हि श्रवस्यु सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन्।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतु सर्तवा अपः सृजत् ॥६
दानाय मन सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि।
यमिष्ठास सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दम्नुवन्ति भूर्णय. ॥७
अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाल्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ।८।२०

उप यश की इच्छा वाले, उत्तम कर्म वाले इन्द्र ने असुरों के घरों को नष्ट करते हुये आकाश के नक्षत्रों को निवारण कर जल वर्षा की ॥ ६ ॥ हे सोमपायी इन्द्र ! तुम दान में मन लगाओ। तुम स्तुतियों को सुनते हो तुम अपने घोड़ों को हमारे सामने लाओ। तुम अश्व विद्या में कुशल सारथी हो जो मार्ग नहीं भूलते ॥ ७ ॥ हे इन्द्र तुम्हारे दोनों हाथों में अक्षय धन है। तुम्हारे शरीर में महान बल है। स्तुति करने वालों ने तुम्हारे बल को बढ़ाया है ॥८॥ (२०)

५६ सूक्त

(ऋषि—सव्य, आङ्गिरस। देवता-इन्द्र। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ॥१

तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा ॥२

स तुर्वणिर्महां अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥३

देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥४

वि यत्तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीह्ळे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन्वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥५

त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः ॥६॥२१

यह इन्द्र यजमान के पात्रों में रखे सोमों को पीने की इच्छा से उठते हैं । वह अपने रथ को रोककर सोम पीते हैं ॥ १ ॥ हविदाता यजमान धन के लिए समुद्र को प्राप्त होने वाले मनुष्यों के समान बल और यज्ञ के स्वामी इन्द्र को प्राप्त करते हैं । मनुष्य ! तू भी उसे आत्म-बल से प्राप्त कर ॥ २ ॥ वे द्रुतवेग वाले महान् इन्द्र युद्ध में पर्वत के शिखर के समान चमकते हैं । उन्हीं बली ने मायावी 'शुष्ण' को बाँध कर रखा था ॥ ३ ॥ हे स्तोता ! सूर्य द्वारा उषा को प्राप्त करने के समान तेरे द्वारा बढ़ाया गया बल इन्द्र को प्राप्त होता है, तब वह शत्रुओं में आर्तनाद उठाकर दुष्कर्मों को मिटाते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुमने आकाश की दिशाओं में जल धारण करने वाले अन्तरिक्ष की स्थापना की । सोम का आनन्द प्राप्त कर तुमने वृत्र को मारकर जलों को नीचे की ओर प्रवाहित किया ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुमने अपने बल से आकाश-पृथिवी के मध्य जल को स्थापित किया । तुमने निष्पन्न सोम के आनन्द [illegible] गुहाया और पाषाण दुर्गों का खण्डन किया ॥६॥ [२१]

तुम अत्यन्त बलवान् हो । आकाश भी तुम्हारे बल का लोहा मानता है और पृथिवी तुम्हारे सामने झुकी हुई है ॥ ५ ॥ हे वज्रिन् ! तुमने उस फैले हुये वृत्र को खण्ड-खण्ड किया और जलों को छोड़ा । तुम अवश्य ही बहुत बलवान् हो ॥३॥ (२२)

५८ सूक्त [ग्यारहवाँ अनुवाक]

(ऋषि—नोधा गौतम । देवता-अग्नि । छन्द-जगती)

नू चित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद्दूतो अभवद्विवस्वतः ।
वि साधिष्ठेभि: पथिभी रजो मम आ देवतानां हविषा विवासति ॥१
आ स्वमद् युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥२
क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषालमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥३
वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥४
तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥५॥२३

बल से उत्पन्न अविनाशी अग्नि कभी भी सन्ताप देने वाले नहीं हैं। वह यजमान के दूत एवं होता नियुक्त हुये । उन्होंने ही अन्तरिक्ष को प्रकटाया तथा वे ही यज्ञ में हव्य द्वारा देवताओं की सेवा करते हैं ॥१॥ जरा रहित यह अग्नि हवियों को एकत्रित कर खाते हुये काष्ट पर चढ़े । इनकी घी से चिकनी पीठ अश्व के समान दमकती है । इन्होंने आकाशस्थ मेघगर्जना के समान शब्द वाली ज्वाला को प्रकट किया ॥ २ ॥ अमर अग्नि रुद्रों और वसुओं के सम्मुख स्थान पाये हुये हैं और यज्ञ स्थानों में उपस्थित रहते हैं । रथानुरूप अग्नि यजमानों की स्तुतियाँ सुनकर मनुष्यों को बार-बार धन प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! वायु के योग से अधिक शब्दवान् हुए तुम शस्त्र के समान जिह्वाओं से काष्ठों को प्राप्त होते हो । तुम जरा रहित दीप्ति-

वान् ज्वालायुक्त वन-वृक्षों में वृष समान आचरण करते हो। तुम्हारा मार्ग कृष्ण वर्ण का हो जाता है ॥ ४ ॥ ज्वाला रूप दाढ़ वाले, विजेता, वायु द्वारा प्रेरित तुम जब वन में तैरते हुये, गौ-समूह में जाने वाले बैल के समान, आकाश की ओर उठते हो, तब सभी जीव काँप जाते हैं ॥५॥ (२३)

दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥६
होतारं सप्त जुह्वो यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥७
अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात्पूर्भिरायसीभिः ॥८
भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन्मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥९।८

हे अग्ने! मनुष्य के सुख के निमित्त आह्वान किए गए होता रूप वरणीय अतिथि, देवताओं के मित्र तुम्हें भृगुओं ने मनुष्यों में स्थापित किया ॥६॥ आह्वानकर्ता सात ऋत्विज श्रेष्ठ एवं पूज्य होता अग्नि का यज्ञ में वरण करते हैं। उनको अन्न रूप हवि से सेवा करता हुआ मैं रमणीय धन की याचना करता हूँ। ७॥ हे बल के पुत्र! हे मित्रों का सुख करने वाले अग्नि-देव! हम स्तोताओं को उत्तम आश्रय दो और रक्षा करते हुए मुझे पाप से बचाओ ॥८॥ प्रदीप्तमान्! स्तोता के लिए आश्रय रूप होओ। धन वालों को धारण दो। तुम प्रातःकाल शीघ्र प्राप्त होते हुए मुझे पाप से बचाओ ॥ ९ ॥ (२४)

(ऋषि नोधा गौतम। देवता अग्निर्वैश्वानर। छन्द-त्रिष्टुप् पंक्ति)

५९ सूक्त

वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद्ययन्थ ॥१
मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः ।

ा२वनि पुत्र 'राजा पुरणीय' के बनाधरो द्वारा प्रस्तुत किये गये हो ।।२।।   (२५)

६० सूक्त

[ऋषि—नोधा गोतम । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्ति.

वह्नि यशस विदथस्य केतु सुप्राव्य सद्योअर्थम् ।
द्विजन्मान रयिमिव प्रशस्त राति भरद्भृगवे मातरिश्वा ।१।
अस्य शासुरुभयास· सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः ।
दिवश्चित्पर्वो न्यसादि होतापृच्छयो विश्पतिर्विक्षु वेधा ।२।
तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत्सुकीतिर्मधुजिह्वमश्या ।
यमृत्विजो वृजने मानुषास. प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ।३।
उशिक्पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु ।
दमूना गृहपतिर्दम आं अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणाम् ।४।
त त्वा वय पतिमग्ने रयीणा प्र शंसातो मतिभिर्गोतमास ।
आशु न वाजम्भर मर्जयन्त प्रातर्नक्षु धियावसुर्जगम्यात् ।५।२६

अग्रणि, यशस्वी, यज्ञपति, द्रुतगामी दूत, अरण-मन्थन से उत्पन्न धन के समान प्रशंसित अग्नि को भृगु के समीप ले आवें ।।१।। मेधावी और हविदाता मनुष्य अग्नि का सेवन करते हैं । ये प्रजापालक, फल वर्षक अग्नि सूर्य से भी पहिले प्रभाओ मे स्थापित होते हैं ।।२।। हृदय से उत्पन्न उस मधुर जिह्वा अग्नि को हमारी अभिनव स्तुतियाँ प्राप्त हो , जिसे मनुष्य ऋत्विजो ने हवियों से उत्पन्न किया ।।३।। वे मनुष्यो द्वारा इच्छित पावक धनयुक्त प्रजाओं मे वरणीय नियुक्त हुए हैं । घर में आसक्ति वाले वे रक्षक हमारे घरो मे धन की वृद्धि करें ।४। हे अग्ने ! हम गौतमवंशी तुम धनाधिप, अग्निवाहक की स्तोत्रो से पूजा करते हैं । तुम उषाकाल मे हमें प्राप्त होओ ।५।   (२६)

(ऋषि - नाध गोतम । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप् ओ

६१ सूक्त

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोम माहिनाय।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ।१।
अस्मा इदु प्र यामि भराम्यांगूष बाधे सुवृक्ति।
इन्द्राय हृदा मनीता प्रत्नाय पत्य धियो मर्जयन्त ।२।
अस्मा इदु त्यमुपम स्वर्षां भराम्यांगूषमास्येन।
महिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीना सुवृक्तिभि सूरि वावृधध्यै ।३।
अस्मा इदु स्तोम स हिनोमि रथ न तष्टेव तत्सिनाय।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्व मेधिराय ।४।
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा समञ्जे।
वीर दानौकस वन्दध्यै पुरा गूर्तश्रवस दर्माणम् ।५।२७

वृद्धि को प्राप्त शीघ्र कार्य करने वाले, मन्त्रो मे वर्णित, कीर्ति वा को अन्न के समान ही स्तोत्र को अर्पण करता हूँ। वे मेरी हविशो ग्रहण करें ।१। मैं उस इन्द्र के लिए हवियुक्त स्तोत्र अर्पित करता हूँ। उन पीडक के लिए स्तुति-गान करता हूँ। ऋषिगण उस प्राचीन इन्द्र के निमि मन बुद्धि से स्तुतियाँ करते हैं ।२। वृद्धि को प्राप्त मेधावी इन्द्र को आकर्षि करने वाले उपमा योग्य स्तुतियो को सुन्दर नादपूर्वक उच्चारण करता हूँ ।।३।। जिस प्रकार रथ का बनाने वाला उसे तैयार करके स्वामी के पास ले जाता है, उसी प्रकार मैं मेधावी इन्द्र को आकर्षित करने को इस स्तोत्र को उनके समीप पहुँचाता हूँ ।४। घोडो को रथ मे जोडने समान, यश प्राप्ति के लिये इन्द्र के स्तोत्र-गान करता हूँ। यह स्तोत्र मङ्ग करने वाले दानशील, गुण-गान योग्य, यशस्वी इन्द्र को प्राप्त हो ।५।

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय।
वृत्रस्य चिद्विदद्येन मर्मं तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ।६।
अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना।

ापदिष्णु पचन गहीयान्विध्यद्वराह् तिरो अद्रिमस्ता ।७।
स्मा इदुग्नाश्चिद्देव पत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
रि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमान परिष्ट ।८।
स्येदेव प्र रिरिचे महित्व दिवस्पृथिव्या पर्यन्तरिक्षात् ।
वगालिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तं स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ।९।

त्वष्टा ने इन्द्र के लिये कार्य सिद्ध करने वाले, घोर शब्द युक्त वज्र को बनाया। उसने (इन्द्र ने) वृत्र के मर्म-स्थल को नष्ट किया।६। संसार के रचयिता इन्द्र को यज्ञ में तीन अभिषव दिये, जिनमें उन्होंने सोम को तुरन्त पी लिया तथा हव्य भी सेवन किया। असुरों का धन जीतने वाले इन्द्र जगत् में व्याप्त हैं। वे विजेता, वज्रधारी और मेघ का भेदन करने वाले हैं।७। वृत्र के मरने पर देव-पत्नियों ने इन्द्र की स्तुति की। इन्द्र ने आकाश-पृथिवी का अति-क्रमण किया, परन्तु आकाश और पृथिवी इन्द्र की मर्यादा को नहीं लाँघ सकते।८। आकाश, पृथिवी, अन्तरिक्ष से भी इन्द्र की महिमा महान् है। स्वयं प्रकाशित, सर्वप्रिय, असीमित बल वाले इन्द्र वृद्धि को प्राप्त हुए हैं।९। इन्द्र बल से क्षीण होता हुआ वृत्र उसके (इन्द्र के) के द्वारा वज्र से मारा गया। इससे अपहृत गायों के समान जल भी मुक्त हुआ। हविदाता को वे इन्द्र अभीष्ट अन्न देते हैं।१०।   (२८,

अस्येदेव शवसा शुषन्त वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्र ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेता ।१०।२८
अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धव परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणि. कः ।११।
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशान. कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि प्र भरा तिरश्चेष्यन्नर्णां स्यपां चरध्यै ।१२।
अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थै. ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ।१३।
अस्येदु भिया गिरयश्च दृह्ला द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।

उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः ॥१४॥
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥१५॥
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१६॥२८

इन्द्र की दीप्ति से नदियाँ सुशोभित है क्योंकि इन्द्र ने वज्र से उनको सीमित कर दिया। हविदाता को धन देते हुए ऐश्वर्य युक्त इन्द्र ने "तुर्वीति" के लिए उचित स्थान दिया ।११। हे शीघ्र कार्यकारी, महाबली इन्द्र स्व ईश्वर ! तुम इस वृत्र पर वज्र फेंको और उसके जोड़ों को वधिक द्वारा पशुओं को काटने के समान काट डालो ।१२। मनुष्यो ! इन्द्र के प्राचीन पराक्रमों का बखान करो। वे उत्तेजित हुए अस्त्रों को चलाकर शत्रुओं को पीड़ित करते हैं। ।१३। इस प्रकट हुए इन्द्र के डर से दृढ़ पर्वत तथा आकाश, पृथिवी सभी कांपते हैं। नोधा ऋषि इन्द्र के रक्षण-सामर्थ्यों का वर्णन करते हुए बल प्राप्त कर सके ।१४। अत्यन्त धन वाले इन्द्र ने जो इच्छा की, वही अर्पण किया गया। सोम-साधक "एतश" ऋषि से स्पर्द्धा करने वाले स्वश्व-पुत्र 'सूर्य' को पराजित कराया ।१५। दो अश्वों से युक्त रथ वाले इन्द्र ! गोतमों ने तुम्हें आकर्षित करने वाली मन्त्र रूप स्तुतियों को किया। तुम प्रातःकाल आकर हमको सर्व कर्म सिद्ध करने वाली बुद्धि प्रदान करो ।१६। (२१)

॥ चतुर्थ अध्याय समाप्तम् ॥

६२—सूक्त

(ऋषि— नोधा गौतम । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः ।)

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥१॥
प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो आङ्गिरसो गा अविन्

इन्द्रम्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत्सरमा तनयाय धासिम् ।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ।३।
स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो नवग्वैः ।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वल रवेणा दरयो दशग्वैः ।४।
गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः ।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरं मस्तभाय ।५।१

हम इन्द्र के प्रति अङ्गिराओं के समान स्तुतियों को धारण करते हैं। हम अत्यन्त आकर्षक मन्त्रों का उच्चारण करें ।।१।। हे मनुष्यो! उस महान इन्द्र को नमस्कार करो, जिसकी स्तुति से अङ्गिराओं ने गौओं को प्राप्त किया था, उसकी उच्च स्वर से स्तुतियाँ गाओ ।।२।। इन्द्र और अङ्गिराओं की इच्छा से 'सरमा' ने अपनी सन्तान के लिये अन्न पाया। इन्द्र ने राक्षस को मार, गौओं को पाया तथा गायों के साथ देवगण ने भी हर्षयुक्त नाद किया ।।३।। हे शक्ति-शालिन्! उत्तम स्तोत्र से गान योग्य तुमने शीघ्रता पूर्वक नौ अथवा दस महीनों यज्ञ समाप्त करने वाले सप्त-ऋषियों की प्रार्थना सुनी। तुम्हारे शब्द से पर्वत और मेघ भी काँप गये ।।४।। हे विचित्रकर्मा इन्द्र! तुमने अङ्गिराओं की स्तुतियाँ प्राप्त कीं और उषा, सूर्य तथा रश्मियों द्वारा अन्धकार हटाया। तुमने पृथवी पर पर्वतों को बढ़ाया तथा आकाश के नीचे अन्तरिक्ष को दृढ़ किया ।।५।।　　(१)

तद् प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः ।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः ।६।
द्विता वि वव्रे सनजा सनीले अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः ।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद्रोदसी सुदंसाः ।७।
सनाद्दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।
[illegible] द्भिर्वपुरा चरतो अन्याया ।८।
[illegible] पयः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
[illegible] न्त पयः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु ।९।

सनात्सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥१०॥

अद्भुतकर्मा इन्द्र का यह कर्म प्रशंसनीय है कि इसने नदियों को जल से भर दिया ।६। ऋत्विजों द्वारा स्तुत इन्द्र ने परस्पर मिले हुए प्राचीन आकाश और पृथिवी को पृथक्-पृथक् किया । फिर उत्तम कर्म वाले ने आकाश के समान उन दोनों को धारण किया ।७। श्याम वर्ण से रात्रि और दीप्ति वर्ण से उषा अपनी गतियों से बारम्बार उत्पन्न होती है और आकाश-पृथिवी के चारों ओर पुरातन काल से ही चक्कर काटती है ।८। उत्तम कर्म वाले महान् इन्द्र यजमानों से मित्रता रखते हैं । हे इन्द्र ! तुम अपरिपक्व गायों में भी पक्व दूध स्थापित करते हो । काले रंग वाली गायों में भी श्वेत दूध देते हो ।९। सनातन काल से एक साथ रहने वाली उँगलियाँ अनन्य कर्मों को करती हैं । यह सभी बहनें गृहस्थ पत्नियों के समान गति करती हुई इन्द्र का सेवा-कार्य करती हैं ।१०।

सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः ।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन्मनीषाः ॥११॥
सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म ।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥१२॥
सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय ।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१३॥३

हे अद्भुत कर्म वाले ! प्राचीन धर्म की इच्छा से अभिनव स्तोत्रों के साथ ऋत्विगण आपको प्राप्त करते हैं । कामना वाले पतियों को प्राप्त होने वाली पत्नियों के समान यह स्तुतियाँ तुम्हें प्राप्त होती हैं ।११। हे विचित्र इन्द्र तुम्हारी सम्पत्ति का नाश नहीं होता वह कम नहीं होती । तुम दीप्तियुक्त, ज्ञानयुक्त, दृढ़ विचार वाले हो । हमको धन और बल प्रदान करो ।१२। हे इन्द्र !

पुरुष ! तुम अग्रणी रथ मे घोडो को जोतने वाले हो ! गौतम ने अभि-
ो्रों की रचना की है, प्रात काल में शीघ्रता पूर्वक पधारो ॥२३॥ [३।

६३ सूक्त

(ऋषि - नोधा गौतम । देवता—इन्द्र । छन्द – पंक्ति प्रभृति)

हाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावा जज्ञान पृथिवी अमे धा. ।
ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृहलस किरणा नैजन् ।१।
ादरी इन्द्र विव्रता वेरा ते वज्र जरिता बाह्वोर्धात् ।
वेहर्यतक्रतो अभित्रान्पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वी ।२।
सत्य इन्द्र घृष्णुरेतान्त्वमृभुक्षा नर्यस्त्व षाट् ।
शुष्ण वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ।३।
ह त्यदिन्द्र चोदी सखा वृत्र यद्वज्रिन्वृपकर्म सुम्ना ।
शूर वृपमण: परार्चैवि दस्यूर्योनावकृतो वृथाषाट् ।४।
ह त्यदिन्द्रारिषण्यन्दृलहस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।
मदा काष्ठा अर्वते वर्धनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ।५।

हे इन्द्र ! तुम महान हो । तुमने प्रकट होते ही बल से आकाश-पृथ्वी को
ण किया यब तुम्हारे भय से सभी प्राणी और महान् पर्वत भी किरणों के
न काँपने लगे ।१। हे निष्काम, स्तुत्य इन्द्र ! जब तुम अपने अश्वों को सारे
तब स्तोता तुम्हारे हाथो मे वज्र देता है । उससे तुम शत्रुओं पर प्रहार
ते हुये उनके दुर्गों को तोडते हो ।२। हे सत्य रूप इन्द्र ! तुम शत्रुओं को वश
करने वाले और महान हो । तुम मनुष्यो का हित करने वाले विजेता हो ।
। युवक "कुत्स" के सहायक होकर युद्ध मे "शुष्ण" का वध किया । ३ । हे
र कर्मा वज्रिन ! तुम मित्रता को निभाने वाले हो । वृत्र को मारकर गाजमो
ृढ सहित तुमने नष्ट किया ।४। हे इन्द्र ! तुम किसी दृढ मनुष्य से भी पीड़ित
ी हो सकते । तुम वज्रधारी हमारे घोडो के लक्ष को बाधा रहित करो ।
ठिन वज्र से हमारे शत्रुओं का विनाश करो ।५।   (४)

त्वं ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीलहे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ।६।
त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन्पुरो वज्रिन्पुरुकुत्साय दर्द. ।
बर्हिर्न यत्सुदासे वृथा वर्ग हो राजन्वरिवः पूरवे कः ।७।
त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्य यंसि त्मनमज न विश्वध क्षरध्यै ।८।
अकपि त इन्द्र गौतमेभिर्व्रह्मण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातमक्षू धियावसजंगम्यात् ।९।५

हे इन्द्र ! धन प्राप्ति और कीर्ति के निमित्त मनुष्य, युद्ध में सहायार्थ तुम्हारा आह्वान करते हैं। युद्ध-क्षेत्र मे तुम्हारी रक्षा निरन्तर प्राप्त होती ।६। हे वज्रिन् ! 'पुरुकुत्स' के लिये युद्ध करते हुये तुमने सातो दुर्ग ध्वंस किये। तुमने 'सुदास' के लिये शत्रुओं को कुश के समान काट डाला। राजा 'पुरु' की दरिद्रता दूर करने को धन दिया ।७। हे इन्द्र ! जल के समान विभिन्न अन्नों की वृद्धि करो। तुम हमारे लिये जीवन और बल प्रदान करते हो ।८। हे इन्द्र ! गौतम ने तुम्हारी मन्त्रयुक्त स्तुतियों की तुम्हारे अश्व को भी नमस्कार किया। तुम हमको श्रेष्ठ धन दो प्रात: काल में शीघ्र यहाँ पधारो ।।९।। (५)

६४ सूक्त

(ऋषि—नोधा गोतम । देवता—इन्द्र । छन्द—जगती)

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः ।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ।।१।।
ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ।२।
युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।
दृळ्हा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ।।
चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येति

अ मेष्वेषा नि मिमृक्षुर्ऋष्टय. साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नर. ।३।
ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतये भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रय ।४।६

हे नोधा ! पौरुषवान, पूज्य, मेधावी मरुतों के निमित्त आकर्षक स्तुतियाँ करो। जैसे कर्मवान व्यक्ति जलों को सिद्ध करते हैं वैसे ही मैं स्तुतियों को सिद्ध करता हूँ।१। वे महान, समर्थ मरुत के पुत्र हैं। वे प्राणवान, निष्पाप, पवित्रकर्ता, सूर्य के समान तेजस्वी, विकराल रूप वाले हैं।२। युवा, विकराल, अजर,न देने वालों के हिंसक अवाघगति से चलने वाले मरुद्गण पर्वत के समान महत्व वाले हुये अपने बल से पृथ्वी आकाश में उत्पन्न जीवों को कँपाते हैं।३। शोभा के निमित्त विविध अलङ्कारों से अपने को सजाने वाले मरुद्गण ने स्वर्णा-भूषण धारण किये। ये कन्धों पर अस्त्र रखते स्वेच्छा से आकाश द्वारा प्रकट हुए।४। ऐश्वर्यदाता, शत्रु को भयभीत करने वाले, भक्षक मरुतों ने अपने बल से वायु और विद्युत को प्रकट किया। सर्वत्र गमनशील वे आकाशस्थ मेघ को दुह कर पृथ्वी पर सींचते हैं।५।   [६]

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ।६।
महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ।७।
सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः ।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिरृष्टिभिः समित्सबाधः शवसाहिमन्यवः ।८।
रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ।९।
विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः ।१०।

कल्याणकारी मरुद्गण जलों को सींचते हुए यज्ञों में घृत युक्त दूध को

गण्पूर्ण ऐश्वर्य वा र, वल वान, सनुनाशक, रम सुशल मरुतो ने दोनों हाथों मे हथियार धारण किये हैं ।१०। [७]

हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो न पर्वतान्।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ।११।
घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ।१२।
प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ।१३।
चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ।१४।
नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ।१५।८

जलों को बढ़ाने वाले पूज्य, द्रुतगति वाले, अचल पदार्थों को चलाने वाले, अबाध गतियुक्त मरुद्गण सोने के रथ चक्रों से मेघों को उठाते हैं ।११। शत्रु नाशक पतितपावन, बहुकर्मा रुद्र पुत्र मरुतों की हम स्तुति करते हैं उन धूल-प्रेरक, वृद्धिप्रद, वीर्यवान् मरुतों के आश्रम मे धन के निमित्त जाओ ।१२। हे मरुतो ! तुम्हारे द्वारा रक्षित मनुष्य सब मनुष्यों मे अधिक बली हुआ। वह अश्वों द्वारा और मनुष्यों द्वारा धनों को प्राप्त

करके उत्तम यज्ञ द्वारा सुख पाया है ।१३। हे मरुतो ! कार्यों में समर्थ युद्धों में अजेय, दीप्तिमान सुख वाले की स्थापना करो । तुम अपने पुत्रों को सौ वर्ष तक पालने वाले हो ।१४। मरुद्गण ! तुम हमको स्थायी और शत्रु को जीतने वाली सामर्थ्य दो । हमको शत सहस्त्र एक साथ सम्पन्न धन स्थापित करो । तुम प्रातः काल शीघ्र हमको प्राप्त होओ ।१५। (८)

६५ सूक्त [बारहवां अनुवाक]

(ऋषि—पराशर शाक्त्य । देवता—अग्नि । छन्द—पंक्ति)

पश्वा न तायु गुहा चतन्त नमो युजानं नमो वहन्तम् ।
सजोषा धीराः पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन्विश्वे यजत्राः ।१।
ऋतस्य देवा अनु व्रता गुर्भुवत्परिष्टिर्द्यौर्न भूम ।
वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिश्विमृतस्य योना गर्भे सुजातम् ।२।
पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शम्भु ।
अत्यो नाज्मन्त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते ।३।
जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यत्ति ।
यद्वातजूतो वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः ।४।
श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत् ।
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः ।५।९

हे अग्ने ! पशु चराने वाले के पीछे-पीछे जाने वाले मनुष्य के समान तुम्हारे पद चिन्हों पर मेधावी देवता चलें । तुम यज्ञ धारण करने वाले देवताओं को हवि पहुँचाते हो इसलिए देवता तुमको प्राप्त होते हैं । १ । देवगण अग्नि को खोज में पृथवी पर आये । अग्नि जल के गर्भ में जन्मे और स्तोत्रों द्वारा उनकी वृद्धि हुई ।२। यह अग्नि अभीष्ट फल के आश्वासन के समान रमणीय, पृथिवी के समान विस्तृत पर्वत के समान भोजनदाता जल के समान शांतिप्रद, अश्व के समान युद्ध में अग्रणी और समुद्र के समान विशाल हैं । इन्हें कौन रोक सकता है ।३। बहिनों के भाई की भाँति जलों के भ्राता अग्नि राजा के शत्रुओं के समान वनों का भक्षण करते हैं । वायु के

यह अग्नि भव्य है। अग्नि कन्याओं का कौमार्य समाप्त करने वाले तथा विवाहिता के पति हैं। (विवाहिता गार्हपत्य अग्नि की पति के साथ नित्य पूजन करती है, इस दृष्टि से उसको पति कहा गया है।३।) पशु (पशु के दुग्धघृत) की तथा अन्न की आहुति से प्रदीप्त अग्नि को हम प्राप्त करें। वह अग्नि प्रवाहित जल के समान ज्वालाओं को प्रवाहित करता है। उसकी दर्शनीय किरणें आकाश में ऊपर की ओर उठती हैं।४। [१०]

६७ सूक्त

(ऋषि— पराशर शाक्त्य । देवता -- अग्नि । छन्द – पंक्ति)

वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम् ।
क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत्स्वाधीर्होता हव्यवाट् ।१।
हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्धाद्गुहा निषीदन् ।
विदन्तीमत्र नरो धियन्धा हृदा यत्तष्टान्मन्त्राँ अशंसन् ।२।
अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः ।
प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ।३।
य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य ।
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ।४।
वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः ।
चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः ।५।११

जैसे राजा सर्वगुण सम्पन्न वीर पुरुष का सम्मान करता है, वैसे ही जङ्गलों में उत्पन्न जयशील अग्नि यजमान पर कृपा करते हैं। वह अग्नि चतुर के समान अनुकूल और ज्ञान के समान कल्याणकारी हों। १। अग्नि अन्नों को साथ में धारण कर गुफा हृदय में बैठ गये, इसके फल स्वरूप देवता भतभीत हो गये। इस गुफा स्थित अग्नि को मेधावी जन हृदय से उत्पन्न स्तुतियों के उच्चारण द्वारा जान पाते हैं।२। जैसे सूर्य पृथ्वी को धारण करता है, वैसे अग्नि ने अन्तरिक्ष को धारण किया है तथा सत्य संकल्पों से आकाश को भी धारण किया है। हे अग्ने ! तुम पशुओं के स्थान की रक्षा

आह्वान करता है। तव तुम अग्नि हो सब देव-भाव को प्राप्त हो जाते हैं।३। अग्ने । जिन कर्म नियमों से तुमने मनुष्यों को सुखी किया, वे तुम्हारे नियमों को नहीं तोड़ते । तुमने ही पाप रूप दैत्यों को मनुष्यों के सहयोग से मारकर भगा दिया ।४। उषा प्रेमी सूर्य के समान प्रकाशित, प्रख्यात अग्नि मुझे जानें। अग्नि की सुन्दर लपटें, हवियाहक हुई यज्ञ गृह के द्वार को खोल कर आकाश मार्ग को जाती है ।५०।

७० सूक्त

(ऋषि—पाराशर शक्ति-पुत्र । देवता—अग्नि । छन्द—पंक्ति)

वनेम पूर्वीरयो मनीषा अग्नि सुशोको विश्वान्यश्याः ।
आ दैव्यानि चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म ।१।
गर्भो यो अपां वनाना गर्भश्च स्थाता गर्भश्चरथाम् ।
अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दु रोणे विशा न विश्वो अमृत स्वाधी. ।२।
स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणा दाशद्यो अस्मा अरं सूक्तै. ।
एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवाना जन्म मर्तांश्च विद्वान् ।३।
वर्धान्यं पूर्वी क्षपो विरूपा स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम् :
अराधि होता स्वर्निपत्त कृण्वन्विश्वान्यपांसि सत्या ।४।
गोषु प्रशस्ति वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलि स्वर्ण ।
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन्पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ।५।
साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेष. समत्सु ।६।१४

हे मनुष्यो ! हम बहुत अन्न की कामना वाले स्तोत्रो को पढ़ें । उत्तम प्रकाशवान अग्नि देवता और मनुष्यो के कार्यो और सृष्टि के रूप को जानते हुए सब मे व्यापक हैं ।१। अग्ने । जल, वन स्थावर जङ्गम के बीज विद्यमान अमर ध्यान युक्त प्राणियो को आत्मा के समान तुमको यजमान के घर या पर्वत पर हवि देते है ।२। रात्रि मे अग्नि की उत्तम स्तुति करने वालो को धन देते है । हे चैतन्य देव अग्नि ! तुम देवता और मनुष्य को जानते हुए उनके रक्षक हो । ३ । विभिन्न रूप वालो

जिस

तब उसने आकाश के गर्भ मे बीज मे डाला । इससे अनिंद्य, युवा, उत्तम कर्म वाले मरुत उत्पन्न हुए जिन्हे वृष्टि के लिए प्रेरित किया ॥ ८ ॥ मन के समान द्रुत गति वाले, मेधावी, धन, के स्वामी, सुन्दर भुजाओ वाले मित्र और वरुण हमारी गायो के उत्पन्न और अमृत तुल्य दूध की रक्षा करें ॥९॥ हे अग्ने ! सर्वज्ञाता और मेधावी तुम हमारी पैतृक मित्रता को न भूलो । बुढ़ापा कायर के समान आकर हमको नष्ट करता है । अतः वह हमारे विनाश को न आवे, उससे पहिले ही वह उपाय करो ॥१०॥ (१६)

७२ सूक्त

(ऋषि—पराशर शाक्त्य । देवता-अग्नि । छन्द त्रिष्टुप्, पंक्ति)

नि काव्या वेधस शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।
अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणा सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ।१।
अस्मे वत्स परि षन्त न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूरा ।
श्रमयुव पदव्यो धियंधास्तस्थु पदे परमे चार्वग्ने ।२।
तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचि घृतेन शुचय सपर्यान् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्व सुजाता ।३।
आ रोदसी बृहती वेविदाना प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियास. ।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्नि पदे परमे तस्थिवासम् ।४।
संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्य नमस्यन् ।
रिरिक्वांसस्तन्व: कृण्वत स्वा. सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणा. ।५।१७

मनुष्यो का हित करने वाले अग्नि बहुत सा धन हाथ मे लिये हुए है । वे विधाता के ज्ञान से सभी रमणीय धनो को उत्पन्न करते हुए ऐश्वर्यों के स्वामी होते हैं ।१। हमारे प्रिय अग्नि की इच्छा होते हुए भी अमर और सुमति वाले देवताओ ने उन्हे ठीक प्रकार नही जाना । तब वे थके हुए पैरो से चलते हुए, ध्यानपूर्वक अग्नि के स्थान मे पहुँचे ॥२॥ हे अग्ने ! जब मरुतो ने तीन वर्ष पर्यन्त तुम्हारा घृत मे पूजन किया, तब उन्होने यज्ञयोग्य नामो को धारण कर उच्च देवो मे उत्पन्न हो अमरत्व को प्राप्त किया ॥ ३ ॥ महान

पृथिवी और आकाश का ज्ञान कराते हुए पुण्य कर्मों ने अग्नि के [illegible] को भेद किया, तब उन्होंने उत्तम स्थान में स्थित अग्नि को पाया ॥ देवगण दर्शनीय हुए और [illegible] और [illegible] सहित उनकी पू[illegible] फिर अग्नि को मित्र जानकर उसका पालन कर यश किया और अपने [illegible] की रक्षा की ॥ ५ ॥

त्रिः सप्त यद् गुह्यानि त्वे इत् पदाविदन्निहिता यज्ञियासः ।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूञ्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि ।६।
विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक् छुरुधो जीवसे धाः ।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ।७।
स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।
विदद्गव्यं सरमा दृळहमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ।८।
आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ।९।
अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन् ।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ।१०।१८

हे अग्ने ! तुममें स्थित जिन इक्कीस गूढ पदों को देवगण ने प्राप्त किया, वे उनसे अपनी रक्षा करते हैं । हे अग्ने ! तुम पशुओं और स्थावर जङ्गम की रक्षा करो ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! मनुष्यों के व्यवहारों के ज्ञाता तुमने जीवन के निमित्त अन्नों की स्थापना की तथा देव-मार्गों को जानते हुए तुम निरालस्य हुए, हविवाहक दूत बने ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! ध्यान से सृष्टि के नियमों को जानने वाले ऋषियों ने आकाश से नकली सात नदियों को धन का द्वार रूप समझा । तुम्हारी प्रेरणा से सरमा ने गौओं को खोज लिया, जिनसे मनुष्यों का पोषण होता है ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! जिन्होंने उत्तम कर्मों द्वारा अमरत्व प्राप्ति का यत्न किया, उन्हीं के सत्कर्मों से यह पृथिवी महिमा पूर्वक अपने स्थान पर स्थित है ॥ ९ ॥ देवगण ने इस लोक में सुन्दर शोभा स्थापित की और आकाश को दो नेत्र दिये । इसके पश्चात ही मनुष्य सरित के समान नीचे उतरती हुई उषा को जान[illegible] ॥१०॥

७३ सूक्त

(ऋषि – पाराशर शाक्त्य । देवता-अग्नि । छन्द-त्रिष्टुप्)

रयिर्न य पितृवित्तो वयोधा सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासु ।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतेव सद्म विधतो वि तारीत् ।१।
देवो न य सविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा ।
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत् ।२।
देवो न य पृथिवी विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुर सद शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ।३।
त त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु ।
अधि द्युम्न नि दधुर्भूर्यस्मिन्भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ।४।
वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायु ।
सनेम वाज समिथेष्वर्यो भाग देवेषु श्रवसे दधाना ।५।१६

यह अग्नि पैतृक धन के समान देने है । मेधावी के समान शासक है । अतिथि के समान प्रिय है तथा होता के समान यजमान के घर की वृद्धि करते है ।।१।। ज्योतिर्मान सूर्य के समान प्रकाशित अग्नि अपने कर्मों द्वारा रक्षक हैं । मनुष्यों मे प्रशसा पाये हुए वे प्रकृति के समान परिवर्तन शील नहीं, है । वे आत्मा के समान सतोषी और यजमान द्वारा ग्रहण किये जाते हैं ।। २ ।। दीप्तिमान सूर्य के समान ससार का धारक यह अग्नि अनुकूल अनुचरों मे सम्पन्न राजा के समान निर्भय है । सभी जीव उसके पितृ तुल्य आश्रय मे रहते हैं और पतिव्रता प्रशसित नारी के समान अग्नि का अभिनन्दन करते हैं ।। ३ ।। हे अग्ने ! उपद्रव रहित घरो मे प्रदीप्त हुए तुम्हारी मनुष्यगण सेवा करते है । देवताओं ने तुम मे अत्यन्त तेज भरा है । तुम सबके प्राण रूप हो । हमारे लिए सब धनों को दो ।। ४ ।। हे अग्ने ! हम अन्न दाता अन्न प्राप्त करें ! हविदाता पूर्ण आयु प्राप्त करें । यज्ञ के निमित्त देवताओं को हवि देते हुए हम युद्ध में शत्रु के अन्न को प्राप्त करें ।।५।।　　　　(१६)

ऋतुस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नी पीपयन्तः जुभक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रु रद्रिम् ।६।
त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः ।७।
यानुराये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम् ।८।
अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नृन्वीरैर्वीरान्वनुयामा त्वोताः ।
ईशानास. पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ।९।
एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम रायः सुधरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः ।१०।२०

नित्य दूध देने वाली गौयें कामना पूर्वक यज्ञ स्थान मे अग्नि को दूध से सींचती हैं । कल्याणकारिणी नदियाँ, पर्वत के निकट से बहती हुई अग्नि के सामने झुकती है ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! कल्याणकारी बुद्धि की याचना करते हुए पूज्य देवगण ने तुमको यशस्वी बनाया है । विभिन्न रूप वाली रात्रि और उषा को विभिन्न अनुष्ठानो के लिये नियुक्ति किया है । इन दोनो के काले और अरुण रङ्ग हैं ॥७॥ हे अग्ने ! तुम जिन्हे धन के लिये प्रेरित करते हो, वे और हम धनवान हों । तुम सब संसार के साथ छाया के समान रहते हो । तुम्हीं ने आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष को प्राप्त किया ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी रक्षा से रहित हुए हमने पैतृक धन को प्राप्त किया । हमारे घोड़ों से शत्रु के घोड़ों को, मनुष्यों से मनुष्यों को, योद्धा से योद्धा को हटाते हुए स्तोता को शतायु करो ॥९॥ हे मेधावी अग्ने ! यह स्तोत्र तुमको प्रिय हों । देवताओं के दिये हुए धन को धारण करते हुए हम तुम्हारे धनवाहक रथ को स्थिर करने मे समर्थ हों । १०॥ (२०)

७४ सूक्त [तेरहवाँ अनुवाक]

(ऋषि - गोतमो राहूगणः । देवता - अग्नि । छन्द—गायत्री)

... मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च ...

यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ।२।
उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनञ्जयो रणेरणे ।३।
यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये । दस्मत्कृणोष्यध्वरम् ।४।
तमित्सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो ।
जना आहुः सुबर्हिषम् ।५।२१

दूर से भी स्तुतियों को सुनने वाले अग्नि के निमित्त यज्ञ के समीप जाते हुए स्तुति करे ॥ १ ॥ जो अग्नि हिंसक स्वभाव वाली प्रजाओं के एकत्र होने पर यजमान के घर की रक्षा करते हैं उनका हम स्तवन करें ॥ २ ॥ अग्नि शत्रु-नाशक और युद्ध में धन को जीतने वाले हैं, उनका जय घोष करें ॥३॥ हे अग्ने ! जिस घर में दूत बने तुम देवताओं के लिए हवि वहन करते हो, उस घर में यज्ञ को अभीष्टदायक बनाते हो ॥ ४ ॥ हे बल के पुत्र अग्ने ! तुम यजमान को सुन्दर हवि से युक्त सुन्दर देवताओं से तथा सुन्दर यज्ञ से पूर्ण करते हो ॥५॥　　　　　　　　　　　　　　　　　(२१)

आ च वहासि ता इह देवा उप प्रशस्तये । हव्या सुश्चन्द्र वीतये ।६।
न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन । यदग्ने यासि दूत्यम् ।७।
त्वोतो वाज्यह्रयोऽभि पूर्वस्मादपरः । प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात् ।८।
उत द्युमत्सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि । देवेभ्यो देव दाशुषे ।९।२२।

हे सुखदाता अग्ने ! उन देवता को स्तुतियां सुनने और हवि ग्रहण करने के लिए यहाँ लाओ ॥६॥ हे अग्ने ! जब तुम दूत बनकर चलते हो तब तुम्हारे शक्तिशाली रथ या अश्व का शब्द सुनाई नहीं पड़ता ॥७॥ हे अग्ने ! पहले अरक्षित रहा यजमान तुमसे रक्षित होने पर बलयुक्त साहसी हुआ वृद्धि को प्राप्त होता है ॥८॥ हे अग्ने ! तुम हविदाता के लिये सुन्दर तेज तथा बल को देवताओं से प्राप्त करते हो ॥९॥　　　　　　　　　　　　　　　　　(२२)

७५ सूक्त

(ऋषि—गौतमो राहूगण । देवता अग्नि । छन्द—गायत्री)

जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् । हव्या जुह्वान आसनि ।१।

अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम् । वोचेम ब्रह्म सानसि ।२।
कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ।३।
त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ।४।
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् ।
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ।५।२१

हे अग्ने ! मुख मे हवियों को ग्रहण कर हमारे द्वारा देवताओं को अत्यन्त प्रसन्न करने वाले स्तोत्र को स्वीकार करो ॥ १ ॥ अङ्गिराओं में श्रे अग्ने ! हम स्नेह पूर्वक तुम मेधावी की स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने मनुष्यों मे तुम्हारा बन्धु कौन है, तुम्हारा पूजक कौन है ? तुम कौन हो तथ किसके आश्रित हो ? ॥३॥ हे अग्ने ! तुम मनुष्यो मे सबके बन्धु हो । पूजक के रक्षक और मित्रों के लिये स्तुत्य मित्र हो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम हमारे लिए मित्र, वरुण तथा अन्य देवताओं की पूजा करो । अपने यज्ञ वाले घर मे निवास करो ॥५॥

(२३)

७६ सूक्त

(ऋषि गोतम राहूगण । देवता—अग्नि । छन्द-त्रिष्टुप्)

का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा ।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ।१।
एह्यग्न इह होता नि षीदादब्धः सु पुरएता भवा नः ।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनसाय देवान् ।२।
प्र सु विश्वान् रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा ।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने ।३।
प्रजावता वचसा वह्निरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः ।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ।४।
यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ।५।२२

हे अग्ने ! तुम्हारा मन सन्तुष्ट करने के लिए तुम्हारे पास आकर कौन-सी स्तुति करें जो तुमको सुख देने वाली हो ? तुम्हारे सामर्थ्य के योग्य यज्ञ कौन करे ? किस बुद्धि से तुमको हवि दें ? ॥ १ ॥ हे अग्ने ! यहाँ, इस यज्ञ में 'होता' रूप विराजो। तुम पीड़ा रहित हुए हमारे लिए अग्रणी बनो। सर्व व्यापक आकाश पृथिवी तुम्हारी रक्षा करें। तुम हमको महान प्रसाद प्राप्त कराने के लिये देवार्चन करो। २ ॥ हे अग्ने ! राक्षसों को दग्ध करो। यज्ञ को हिंसकों से बचाओ। फिर सोमस्वामी इन्द्र को अश्वों सहित हमारे आतिथ्य के लिये आओ ॥ ३ ॥ तुम अग्नि का मैं आह्वान करता हूँ। तुम देवताओं के साथ यज्ञ में रहते हो। हे पूज्य ! तुम 'होता' और 'पोता' का कर्म करने वाले हो। तुम धनोत्पादक हो, धन के निमित्त मुझ पर कृपा करो ॥४॥ हे अग्ने ! तुम सत्य स्वरूप तथा होता रूप हो ! तुमने ऋषियों के साथ मेधावी मनु की हवियाँ देवताओं को ग्रहण कराई थी। अतः प्रसन्नता देने वाली जुहू (आहुति देने का पात्र) से आहुति ग्रहण करो ॥५॥ (२४)

७७ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगण । देवता अग्नि । छन्द पंक्ति त्रिष्टुप्)

कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत्कृणोति देवान् ॥१॥
यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम्।
अग्निर्यद्वेर्मर्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥२॥
स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥३॥
स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम्।
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ॥४॥
एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः।
स एषु द्युम्नं पीपयत्स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ॥५॥२५

अग्नि को किस प्रकार हवि दें ? कौन-सी देव प्रिय स्तुति कहें ? यह मरण धर्म वाले मनुष्य के लिए उत्तम यज्ञ करने वाले, देवताओं के निमित्त यज्ञ करते हैं ॥१॥ यज्ञ-कर्म द्वारा अत्यन्त सुखदायक यज्ञ युक्त होता को नमन करो। देवताओं के समीप पहुँचने वाले अग्नि उनको जानते हैं और हृदय से उनको पूजते हैं। अग्नि ही यज्ञ, यजमान हैं, वे ही दिव्य धन प्राप्त कराने वाले मित्र के समान परोपकारी हैं तथा देवताओं की कामना करते हैं। यज्ञों में पहले उन्हीं अद्भुत कर्म वाले का आह्वान किया जाता है ॥३॥ मनुष्यों में श्रेष्ठ, शत्रु-भक्षक वह अग्नि हमारी स्तुतियों को चाहें। वे महान ऐश्वर्य वाले, ऐश्वर्य प्रेरित करने के लिए हमारे पूजन को ग्रहण करें ॥४॥ यज्ञ युक्त अग्नि की गौतमों ने स्तुति की। सर्व प्राणियों के ज्ञाता-अग्नि ने यश और धन की वृद्धि कर पोषण शक्ति को बढ़ाया। वे अग्नि अपने साधक की भक्ति को जानकर कृपा करते हैं। (५)

७८ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगण । देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री)

अभि त्वा गोतमो गिरा जातवेदो विचर्षणे ।
द्युम्नै रभि प्र णोनुमः ।१।
तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति ।
द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ।२।
तमु त्वा वाजसातममङ्गिरस्वद्धवामहे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ।३।
तमु त्वा वृत्रहन्तमं यो दस्यूँरवधूनुषे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ।४।
अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद्वचः । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ।५।२६

हे सर्वभूतों के ज्ञाता, द्रष्टा अग्ने ! गौतम वंशी तुम्हारे लिए अत्यन्त उज्ज्वल स्तुतियों को मधुर वचनों से निवेदन करते हैं ॥१॥ धन की कामना से गौतमवंशी तुम्हारी स्तुतियाँ करते हैं। हम भी उज्ज्वल मन्त्रों से तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ २ ॥ अत्यन्त अन्न प्रदानकर्त्ता तुम्हारा हम अङ्गिराओं के समान आह्वान करते हैं और उज्वल मन्त्रों से तुम्हा[illegible] हैं ॥ ३ ॥

मनुष्यों के शत्रुओं को बींधने वाले वृत्र नाशक अग्नि को हम मन्त्रों द्वारा नमस्कार करते हैं ॥४॥ राहूगण ऋषियों ने अग्नि के प्रति मधुर स्तुतियों को। उन्हीं के निमित्त हम प्रकाशित मन्त्रों से स्तुति करते हैं ॥५॥ (२६)

७९ सूक्त

(ऋषि—गोतम राहूगण । देवता अग्नि । छन्द-त्रिष्टुप्)

हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान् ।
शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ॥१॥
आ ते सुपर्णा अमिनन्त एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् ।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात्पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥२॥
यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ ॥३॥
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥४॥
स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा ।
रेवदस्मभ्य पुर्वणीक दीदिहि ॥५॥
क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥६॥२७

अग्नि आकाश के समान विस्तृत, लहराते हुए सर्पों के समान स्वर्णिम केशों वाले वायु के समान वेग वाले, उत्तम प्रकाशयुक्त तथा उषा के ज्ञाता है। वे कर्तव्य में लीन यशस्विनी महिला के समान शोभित है ॥ १ ॥ हे अग्ने ! काले बादल रूप वाले बैल के गर्जन के समान पक्षयुक्त तुम्हारी दमक, चमक कर लुप्त हो गई, तब कल्याणकारी वृष्टि हँसती-सी वर्षा ने लगी और मेघों में तुम गर्जने लगे ॥ २ ॥ यज्ञ के हव्य से वृद्धि को प्राप्त अग्नि सरल मार्ग में देवगण को यज्ञ में पहुँचाते हैं। तब अर्यमा, वरुण और मरुद्गण दिशाओं में मेघों को एकत्र करते हैं ॥ ३ ॥ हे बल के पुत्र अग्ने ! स

[illegible] के [illegible] हमको [illegible] ॥४॥ [illegible], धनों के [illegible], [illegible] उत्तम [illegible] ॥५॥ हे [illegible] और [illegible] में भी [illegible] ॥६॥ (२७)

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ।७।
आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ।८।
आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ।९।
प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये । भरस्व सुम्नयुर्गिरः ।१०।
यो नो अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः । अस्माकमिद्वृधे भव ।११।
सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि सेधति ।
होता गृणीत उक्थ्यः ।१२।२८।

हे सम्पूर्ण कर्मों मे पूज्य अग्ने ! हमारे द्वारा स्तोत्र निवेदन करने पर तुम अपने रक्षा-साधनों से हमारी रक्षा करो ।।७।। हे अग्ने ! हमारे निमित्त सदा जयशील, दूसरों के द्वारा न जीता जा सके, ऐसे ग्रहणीय धन को प्राप्त कराओ ।। ८ ।। हे अग्ने ! हमारे जीवन में सुख देने वाले तुम पूर्ण आयु के पोषक धन को स्थापित करो ।। ९ ।। हे गौतम ! सुख की इच्छा से तीक्ष्ण से तीक्ष्ण ज्वाला वाले अग्नि के निमित्त पवित्र वचनों वाली स्तुतियाँ उच्चारण करो ।।१०।। हे अग्ने ! पास या दूर वाला जो भी हमको वश मे करना चाहे उसका पतन हो । तुम हमारी वृद्धि करने वाले होओ ।११। हे सहस्राक्ष अग्ने तुम यशस्वी होता और विशेष दृष्टि वाले हो । तुम राक्षसों को दूर करने वाले हो, हम तुम्हारा पूजन करते है ।।१२।। (२८)

८० सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगणः । देवता—इन्द्र । छन्द-पंक्ति)

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्नन[illegible]राज्यम् ।१।

स त्वामदद्वृषा मद सोम श्येनाभृत. सुत ।
येना वृत्र निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ।२।
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्ण हि ते शवो हनो वृत्र जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ।३।
निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्र जघन्थ निर्दिव ।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ।४।
इन्द्रो वृत्रस्य दोधत सानु वज्रेण हीलित ।
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽप गर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ।५।२६।

हे महाबली इन्द्र ! हर्षदायक सोम के प्रभाव से स्तोता ने प्रशंसा की तुम वज्रधारी ने अपने बल से वृत्र को दण्डित किया । तुम स्वराज्य में प्रकाशित हुए प्रतिष्ठित हो ॥ १ ॥ हे वज्रिन ! श्येन से लाये निष्पन्न बलयुक्त सोम ने तुमको हर्ष युक्त और बलवान बनाया, उससे तुमने वृत्र को जलों से पृथक कर पीड़ित किया । तुम स्वराज्य में प्रकाशित हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! बढ़ो, शत्रु का सामना करो । तुम निर्भय हो । तुम्हारे वज्र का सामना कोई नहीं कर सकता । तुम्हारा वीर्य ही बल है । तुमने वृत्र को पृथिवी से खींचकर मारा और आकाश से खींचकर वध किया । तुम जीव रक्षक मरुतों से युक्त जलों की वर्षा करो । अपने में तुम स्वयं प्रकाशित हो ॥४॥ क्रोधित इन्द्र ने भय से कांपते हुए वृत्र पर प्रहार किया और जलों को प्रवाह में प्रेरित किया । वे इन्द्र स्वयं प्रकाशमान हैं ॥५॥ (२६)

अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा ।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ।६।
इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ।७।
वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्या अनु ।

महत्त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ।८।
सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः ।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ।९।
इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सह ।
महत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् ।१०।३०

सोम से आनन्दित इन्द्र ने सौ गाँठों वाले वज्र से जबड़े पर प्रहार किया । वे मित्रों के लिये धन की कामना करते हुए प्रकाशमान हैं ।। ६ ।। हे वज्रिन ! शत्रुओं का तिरस्कार करने वाला पुरुषार्थ तुम्हारा ही है । तुम्ही ने पशु रूप मायावी वृत्र को मारा । तुम स्वयं प्रकाशमान हो ।।७।। हे इन्द्र ! नब्बे गाढ़ी नदियों के समान तुम्हारा वज्र विस्तृत है । तुम्हारा बल महान है । तुम्हारी दोनों भुजायें दृढ हैं । तुम स्वयं प्रकाशमान हो ।।८।। हे मनुष्यो ! तुम हजारों की संख्या मे एकत्रित होकर इन्द्र का स्तवन करो । बीस स्तोत्र गाओ । यह इन्द्र बहुतो द्वारा स्तुत्य है । ऋषियो ने इन्द्र के लिए मन्त्र रूप स्तुतियों को उन्नत किया है । वे स्वयं प्रकाशमान हैं ।। ९ ।। इन्द्र ने वृत्र का बल क्षीण किया । अपने साहस से उसे साहसहीन बनाया । वृत्र को मारना इसका महान बल है । अपने राज्य मे यह स्वय प्रकाशमान हैं ।।१०।।　　　　(३०)

इमे चित्तव मन्यवे वेपेते भियसा मही ।
यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ।११।
न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम् ।१२।
यद्वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।
अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ।१३।
अभिष्टने ते अद्रिवो यत्स्था जगच्च रेजते ।
त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ।१४।
नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।

आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि ।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ ॥५॥

शत्रु को मारने वाले इन्द्र की प्रसन्नता और बल के मनुष्यों द्वारा वृद्धि की जाती है। उस इन्द्र का बड़े-छोटे युद्ध मे रक्षा के लिये आह्वान करते है ॥१॥ हे वीर, इन्द्र ! तुम सेना संग तथा अत्यन्त धन दाता हो। तुम छोटे को बढ़ाते हो। तुम सोम वाले यजमान को बहुत धन देते हो ॥ २ ॥ युद्धो मे अभय देने वाले इन्द्र ! तुम दोनों अश्वो को रथ मे जोड़ो। तुम मारते भी हो धन भी देते हो। हमको धन प्रदान करो ॥३॥ महान बुद्धि वाले विकराल इन्द्र ने अपने दर्शनीय बल को वृद्धि की और अश्वो से युक्त दृढ दाढ वाले इन्द्र ने यश के निमित्त-लोह वज्र को ग्रहण किया ॥४॥ इन्द्र ने पृथिवी से सम्बन्धित अन्तरिक्ष को पूर्ण किया और आकाश मे नक्षत्र स्थापित किये। हे इन्द्र ! उत्पन्न हुए प्राणियो में तुम्हारे समान कोई नही तुम अत्यन्त महान हो ॥५॥ (१)

यो अर्यो मर्तभोजनं परा ददाति दाशुषे ।
इन्द्रो अस्मभ्य शिक्षतु वि भजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ।६।
मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
स गृभाय पुरू शतोभया हस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ।७।
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि पुरूवसुमुप कामान्तससृज्महेऽथा नोऽविता भव ।८।
एते त इन्द्र जन्तवो विश्व पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जसनामर्यो वेदो अदाशुषां तेषाँ नो वेद आ भर ।६।२

जो इन्द्र ! हविदाता को मनुष्यो के उपभोग्य पदार्थो को देते है, वह हमको भी दें। हे इन्द्र ! तुम्हारे पास अनन्त धन है, उसे बाट डालो। मैं भी तुम्हारे धन मे भाग प्राप्त करूँ ॥ ३ ॥ उत्तम बुद्धि वाले इन्द्र हमको गवादि धन देते हैं। हे इन्द्र ! हमको दोनों हाथो से धन प्राप्त करने के लिये हमारी बुद्धि को तीक्ष्ण करो ॥७॥ हे वीर इन्द्र ! सोम सिद्धि होने पर तुम धन के

ए उससे हर्ष प्राप्त करो। तुम अत्यन्त धन वाले माने गये हो। तुम हमारी मना पर ध्यान देते हुए रक्षा करो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! यह मनुष्य आपके पूर्ण करने योग्य पदार्थों को बढ़ाते है। तुम दान करने वालों के धनों को लेकर हमारे लिए ले आओ ॥९॥ (२)

८२ सूक्त

(ऋषि—गौतमो राहूगण। देवता – इन्द्र। छन्द पंक्ति जगती।)

उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।
यदा न सूनृतावत कर आदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ।१।
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ।२।
सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुर स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ।३।
स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।
य पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ।४।
युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्य शतक्रतो ।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ।५।
युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्यो ।
उत्त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषु पूषण्वान्वज्रिन्त्समु पत्न्यामद ।६।३

हे धन के स्वामी इन्द्र ! तुम हमारी स्तुतियों को निकट से सुनो। पूर्वकाल के समान ही स्तुति सुनने वाले रहो। तुमने हमको सत्य और प्रिय-वाणी से युक्त किया है, तुम स्तुतियाँ सुनने के इच्छुक भी हो। अपने रथ में अश्वों को जोड़कर यहाँ आओ ॥ १ ॥ प्रिय मनुष्यों ने तुम्हारा प्रदत्त कर सोम सेवन कर लिया। आनन्द में वे झूमने लगे। मेधावी ऋषियों ने अभिनव स्तोत्र पढ़ा। हे इन्द्र ! रथ में अश्वों को शीघ्र जोड़ो ॥ २ ॥ हे मघवन् ! तुम कृपा-पूर्ण दृष्टि वाले को हम नमस्कार करते हैं। तुम स्तुति से प्रसन्न हुए धनों से पूर्ण रथ सहित आओ ॥ ३ ॥ वह अभीष्ट वर्षक, ऐश्वर्यों को

[िजाने वाले, धान्ययुक्त सोम की कामना थी। इन्द्र रथ पर असवार आवें ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम आवश्य बली हो तुम्हारे रथ के दोनों ओर घोड़े जुते है। सोम से तेज युक्त हुए रथ में अश्व जोड़कर अपनी प्रिय के पास आओ ॥५॥ हे वज्रिन् ! मैं तुम्हारे दोनों घोड़ों को स्तोत्र से र जोड़ता हूँ। तुम हाथ में रास लेकर जाओ। सोम से हर्षित हुए पत्नी के प जाओ ॥६॥

(

८३ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगण देवता—इन्द्रः। छन्द—जगती त्रिष्टुप्)

अश्वावति प्रथमो गोपु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभि:।
तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतस: ॥१॥
आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमव: पश्यन्ति विततं यथा रज:।
प्राचैर्देवास: प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥२॥
अधि द्वयोर दधा उक्थ्यं वचो यतस्रु चा मिथुना या सपर्यत:।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३॥
आदङ्गिरा: प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नय: शम्या ये सुकृत्यया।
सर्वं पणे: समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नर: ॥४॥
यज्ञैरथर्वा प्रथम: पथस्तते तत: सूर्यो व्रतपा वेन आजनि।
आ गा आजदुशना काव्य: सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५॥
बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥६॥४

हे इन्द्र ! तुम्हारे ! द्वारा रक्षित मनुष्य गौओ से युक्त धन वालो मे मुख्य होता है। सब ओर से जल समुद्र मे ही जाते है, वैसे ही तुम उसी को धनों से युक्त करते हो जो धन वालो मे मुख्य होता है ॥ १ ॥ होता [के चमस पात्र को जैसे जल प्राप्त होते हैं, वैसे ही स्तोता को स्नेह करने वाले देवता आकाश से नीचे की ओर देखते हुए साधक को प्राप्त होते हैं और ... प्रीति

करने वाले वर के समान उत्तम मार्गों से ले जाते हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! तुमने अपने पूजक में प्रशंसा योग्य वचनों की स्थापना की है। वह पूजक तुम्हारे नियमों पर दृढ़ रहता और वृष्टि को प्राप्त करता है। तुम उस सोम वाले को मङ्गल मय शक्ति देते हो ॥३॥ जिन अङ्गिराओं ने उत्तम कर्मों से अग्नि को प्रदीप्त कर पहिले हवि रूप अन्न सम्पादित किया, फिर उन्होंने गवादि युक्त धनों की प्राप्ति की ॥४॥ पहिले 'अथर्वा' ने स्वर्ग मार्गों को बढ़ाया, फिर घृतनियमा सूर्य रूप इन्द्र प्रकट हुए तब 'उशाना' से गौओं को हांका। हम उस शत्रुओं के मारने वाले इन्द्र की पूजा करते हैं ।५। जब उत्तम यज्ञ के लिए कुशा काटते हैं, साधकगण स्तोत्र पाठ करते हैं, सोम कूटने वाला पाषाण स्तोत्र के समान शब्दवान् होता है, तब इन्द्र प्रसन्न होते हैं ॥६॥   (४)

८४ सूक्त

(ऋषि—गौतमो राहूगण । देवता—इन्द्र । छन्द-अनुष्टुप् प्रभृति)

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ।१।
इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ।२।
आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ।३।
इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ।४।
इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ।५।

हे सर्वाधिक बल सम्पन्न इन्द्र ! तुम्हारे लिए सोम निचोड़ा है, तुम निःशङ्क यहाँ आओ। सूर्य अपनी किरणों से लोकों को पूर्ण करता है, उस प्रकार सोम से उत्पन्न बल तुम्हें पूर्ण करे ॥ १ ॥ किसी के वश में न होने वाले इन्द्र को उनके अश्व यज्ञों में स्तुति करते हुए ऋषियों के समीप पहुँचाते

है ॥३॥ हे वृत्र-नाशक इन्द्र ! स्तोत्र द्वारा तुम्हारे दोनों घोड़े रथ मे जुत गये तुम उन पर चढ़कर सोम कूटने के शब्द से आकर्षित हुए इधर आओ ॥३॥ इन्द्र ! इस उत्तम हर्षदायक निष्पन्न सोम का पान करो । इस यज्ञ में सोम के उज्ज्वल धार तुम्हारी ओर प्रवाहित हैं ॥ ४ ॥ अब स्तोत्र उच्चारण करते हुए इन्द्र की पूजा करो । निष्पन्न सोम से प्राप्त बल वाले इन्द्र को प्रणाम करो ॥ ५ ॥

नकिष्टवद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्च आनशे ।६।
य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ।७।
कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ।८।
यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ।९।
स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ।१०।

हे इन्द्र ! जब घोडो को रथ मे जोतते हो तब तुम्ही सर्वश्रेष्ठ रथी दिखाई पडते हो । कोई बलवान् या अश्वारोही तुम्हारे समान नही ॥ ६ ॥ जो हविदाता को अकेला ही धन देने में समर्थ है, वह इन्द्र किसी के द्वारा पीछे नही हटाया जा सकता ॥ ७ ॥ दान न देने वाले व्यक्ति को यह इन्द्र साँप की छत्री (कुकुरमुत्ता) के समान कब कुचलेंगे ? वे कब हमारी स्तुतियो को सुनेंगे ? ॥८॥ अनेकों मे जो कोई सोम निष्पन्न कर श्रद्धा भक्ति से तुम्हे पूजता है, वही अनन्त बल प्राप्त करता है । वह इन्द्र उसकी अवश्य सुनते हैं ॥९॥ सुस्वादु, शरीर मे रम जाने वाले मधुर सोम को गौर वर्ण वाली गौऐं सेवन करती हैं । वे आनन्द ... की अनुगत होती हुई उन्ही के शासन में रहती हैं ।

को जोर गकता है ? कौन शत्रु की शक्तियों को रोककर मित्रों को सुख देता है ? कौन इनका बल बढ़ाता हुआ दीर्घ जीवन प्राप्त कराता है ? ॥१६॥ कौन पालता है ? कौन कष्ट उठाता है ? कौन इन्द्र से डरने वाला उनका सत्कार करता है ? कौन समीपस्थ इन्द्र को जानता है ? कौन सन्तान, भृत्य एवं परिजनों की रक्षा के लिए इन्द्र से आश्वासन मांगता है ॥ १७ ॥ कौन अग्नि की स्तुति करता है ? कौन घृतयुक्त हवि से यज्ञ करता है ? किसके लिए देवता धन लाते हैं ? कौन देवताओं सहित इन्द्र को जानता है ? ॥१८॥ हे महाबली इन्द्र ! तुम मरणशील मनुष्यों का उत्साह-वर्द्धन करते हो । तुम वैभवदाता हो । मैं तुम्हारे निमित्त सत्य वाणी से स्तुति करता हूँ ॥१९॥ हे धन रूप इन्द्र ! तुम्हारे दान और रक्षाओं से हम कभी वंचित न रहें । तुम मनुष्य का हित करने वाले हो । हमारे लिए सब प्रकार के धनों को लाओ ॥२०॥ (८)

८५ सूक्त [चौदहवाँ अनुवाक]

(ऋषि—गोतमो राहूगणः । देवता—मरुत । छन्द—जगती ।)

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन्रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ।१।
त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ।२।
गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ।३।
वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ।४।
प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ।५।
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
... मरुतो मध्वो अंधस

द्रुतगामी मरुत जो रुद्र के पुत्र हैं, यात्रा के समय महिलाओं और पृथिवी की वृद्धि करते हैं । वे कर्मशील हमारे यज्ञ में आनन्द प्राप्त करें ।।१।। वे महान् मरुद्गण महत्तावान् हैं । उन्होंने आकाश में अपना स्थान बनाया है । इन्द्र के लिये स्तोत्र उच्चारण कर, बल धारण करते हुए उन-उन पृथिवी-पुत्रने ऐश्वर्यों को पाया ।।२।। वे पृथिवी पुत्र मरुत् अलङ्कारों से सजकर अधिक दीप्ति को धारण करते हुए शत्रु का हनन करते हैं । उनके मार्गों पर चलकर मेघ-वृष्टि करते हैं ।।३।। सुन्दर यज्ञ वाले यह मरुद्गण अपने आयुधों को चमकाते हुये पर्वत जैसे अपतनशील पदार्थों को भी गिराने में समर्थ हैं । हे मरुद्गण ! तुम मन के समान वेग वाले हो । तुम वीरों के रथों में बिन्दु चिह्नित हिरणियों को जोड़ते हो ।।४।। हे मरुतो ! जब तुम युद्ध में वज्र प्रेरित करते हुए दु दकियों वाले मृग को रथ में जोड़कर सूर्य के निकट से जल को प्रेरित करते हो तब वह गिरती हुई वर्षा पृथिवी को पूर्णत आर्द्र कर देती है ।।५।। हे मरुतो ! तुमको मन्दे चाल वाले अश्व यहाँ लावें । हाथ में धन लेकर यहाँ आओ । तुम्हारे लिए विस्तृत कुशासन यहाँ हैं उस पर बैठकर मधुर सोम का पान करो ।।६।। (६)

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद्वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ।।७।
शूरा इवेद्युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ।।८।
त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन्वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ।।९।
ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ।।१०।
जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ।।११।
या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।

अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥१२॥

अपने बल से ही वृद्धि को प्राप्त मरुद्गण स्वर्ग मे विस्तृत स्थान पा चुके हैं। वे मनोरथ दाता यज्ञ की रक्षा करते हैं ॥७॥ वीरों के समान आक्रमण करने वाले मरुद्गण यश के लिए वीर कर्म करते हैं। इनसे सब लोक भयभीत होते हैं। यह अत्यन्त तेजस्वी हैं ॥ ८ ॥ उत्तम कर्म वाले त्वष्टा ने सहस्र धार वाले वज्र को बनाया, उसे इन्द्र ने वीरकर्मों के लिये धारण किया। उसी से वृत्र को मारकर जलों को नीचे गिराया ॥ ९ ॥ अपने बल से मरुतो ने भूमि में स्थित जल को ऊपर की ओर प्रेरित किया और दृढ़ मेघो का भेदन कर शब्दवान् हुऐ तथा कल्याणकारी सोम के बल से उन्होंने अत्युत्तम कर्मो को किया ॥१०॥ मरुतो ने जलाशय (मेघ) को तिर्छा करके उडाया और प्यासे गौतम के लिए झरनों को सींचा। वे रक्षा के लिए गये और ऋषि को सन्तुष्ट किया ॥११॥ हे मरुतो ! स्तोता और हविदाता को तुम जो इच्छित मे तिगुना सुख देते हो वह हमको दो। हे वीरो ! उत्तम सन्तान से युक्त धनो को हमे धारण कराओ ॥१२॥　　　(१०)

८६ सूक्त

(ऋषि—गौतम राहूगण देवता—मरुत. छन्द– गायत्री।)

मरुतो यस्य क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः ।१।
यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम्। मरुत शृणुतः हवम् ।२।
उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत। स गन्ता गोमति व्रजे ।३।
अस्य वीरस्य बर्हिषि सुत सोमो दिविष्टिषु। उक्थ मदश्च शस्यते ।४।
अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि।
सूरं चित्सस्रुषीरिषः ।५।११

हे महापुरुषो ! तुम जिसके घर मे सोम-पान करते हो, वह पुरुष निश्चय रक्षित होता है ॥ १ ॥ हे यज्ञ को पूर्ण करने वाले मरुद्गण ! हमारे यज्ञ में स्तुतियों को ग्रहण करो ॥ २ ॥ हे मरुतो ! जिस यजमान के ऋत्विज को तुमने ऋषि बनाया, वह यजमान अधिक गौओं वाला होगा

है ।।३।। यज्ञों में जो मरुतों के लिए कुशा पर निचोड़ा सोम रखता है, उसके घर में प्रसन्नताप्रद स्तोत्रों का गान होता है ।।४।। हे मरुद्गण ! इस श्रेष्ठ यजमान की प्रार्थना को सुनो । मैं स्तोता भी उनसे अन्न प्राप्त करूँ ।।५।। (११)

पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम्, अवोभिश्चर्षणीनाम् ।६।
सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ ।७।
शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ।८।
यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना । विध्यता विद्युता रक्षः ।९।
गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम्
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ।१०।।२

हे मरुद्गण ! तुम्हारे रक्षण-सामर्थ्यों से पुष्ट हुए हम बहुत समय से हवि देते रहे हैं ।।६।। हे उत्तम प्रकार से पूज्य मरुतो ! जिसे तुम अन्न से सम्पन्न बनाओ, वह तुम्हारा उपासक हो ।। ७ ।। हे सत्य बल वाले मरुतो ! यज्ञ परिश्रम से थके हुए स्तोता की इच्छा पूर्ण कर उसके अभीष्ट को प्राप्त कराओ ।।८।। हे सत्य बल से युक्त मरुतो ! तुम अपनी महत्ता से दैत्यों को मारने वाले प्रसिद्ध बल को प्रकट करो ।। ९ ।। हे मरुद्गण ! अन्धकार को छिपाओ, राक्षसों को भगाकर प्रकाश करो । तुमसे ज्ञान की याचना करते हैं ।।१०।। (१२)

८७ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगण । देवता—मरुत । छन्द—जगती ।)

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ।१।
उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित्पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ।२।
प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ।३।

स हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणो या ईशानस्तविषीभिरावृतः ।
असि सत्य ऋणयावाऽनेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ।४।
पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ।५।
श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ।६।१३

महान् बली, वक्ता, अपतित, अभय, द्रुतगामी, प्रिय मरुद्गण स्वल्प तारों से सजे हुए इस प्रकार दिखाई देते हैं, जैसे प्रातःकालीन उषा सुन्दर दिखाई देती है ।।१।। हे मरुतो ! तुमने आकाश के निचले मार्गों मे मेघ को अवस्थित किया है । तुम्हारे रथ मे बूँदें बरसती है तुम उपासक को मधुर जल से सींचो ।।२।। मरुतों के युद्ध मे जाने पर पृथिवी भय से कांपती है । वे खेलने वाले, गर्जनशील, चमकते आयुधों से युक्त मरुत्, विजय के निमित्त पूजे जाते है ।।३।। स्वचालित, चित्र विचित्र अश्व वाले मरुत बलो से युक्त हैं । वे सत्य रूप, पापियों को छानने वाले तथा यज्ञ की रक्षा करने वाले हैं ।।४।। मरुतो की जन्म-कथा हमने पूर्वजों से सुनी । हमारी जिह्वा सोम को देखकर अधिक स्तुति करती हैं । स्तुति करते हुए मरुत जब युद्ध मे इन्द्र के सहायक हुए जब उन्होंने यज्ञ-योग्य नामो को धारण किया ।।५।। उन सुशोभित मरुतो ने स्तोताओ के निमित्त वर्षा करने की इच्छा की वेग से चलते हुये अपने प्रिय स्थान को पाया ।६। (१३)

८८ सूक्त

(ऋषि-गोतमो राहूगण । देवता - मरुत । छन्द पंक्तिः त्रिष्टुप्)

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ।१।
तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान्पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूमि ।
श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना कृणवन्त ऊर्ध्वा ।

युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ।३।
अहानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ।४।
एतत्त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।
पश्यन्हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्विधावतो वराहून् ।५।
एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी ।
अस्तोभयद्वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ।६।१४

हे मरुद्गण ! तुम अत्यन्त दीप्ति और गति, आयुधों से युक्त हुए उड़ने वाले अश्वों को रथ में जोतकर आओ । तुम्हारी बुद्धि कल्याण करने वाली है । अधिक अन्नों के साथ हमको प्राप्त होओ ॥१॥ वे विजय की आशा से लाल-पीले रङ्ग के घोड़ों से दौड़ आते हैं, उनका रथ सोने के वर्ण का है । वे वज्रयुक्त हैं। उस रथ के पहिले की लीक से पृथिवी को उखाड़ते हैं । हे मरुद्गण ! तुम शस्त्रों से सुशोभित हो मेघों को वृक्षों के समान ऊपर उठाओ । यजमान तुम्हें आकर्षित करने को सोम कूटने के पाषाण से शब्द करते हैं ॥ ३ ॥ हे स्तुति की इच्छा वालो ! तुम्हारे शुभ दिन लौट आये हैं । स्तुति करते हुए गौतमों ने, पीने के लिए मेघ रूप कूप को यज्ञ-कर्म द्वारा ऊपर की ओर प्रेरित किया है ॥ ४ ॥ हे मरुतो ! इस प्रसिद्ध स्तोत्र को हमने पहले नहीं जाना जिसे गौतम ऋषि ने तुम्हारे लिए उच्चारण किया था ॥ ५ ॥ हे मरुतो ! मेरी जिह्वा ऋषियों की वाणी का अनुसरण कर तुम्हारी स्तुति करती है । यह स्तुति सहज स्वभाव से ही की जा रही ॥६॥ (१४)

८६ सूक्त

(ऋषि गोतम राहूगण पुत्र । देवता-विश्वेदेवा । छन्द-जगती त्रिष्टुप् ।)

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ।१।
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।

देवाना सख्यमुप सेदिमा वय देवा न आयु: प्र तिरन्तु जीवसे ।२।
तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भग मित्रमदिति दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुण सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।३।
तन्नो वातो मयोभु वातु भेपज तन्माया पृथिवी तत्पिता द्यौ ।
तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्त दश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ।४।
त मीशानं जगतस्तथुस्पति धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम ।
पूपा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ।५।१५

अमर, अपराजित, वृद्धियुक्त, कल्याणकारी सकल्पो को हम प्राप्त करें जिससे विश्वेदेवता हमारी वृद्धि करते हुए रक्षक हो ।।१।। देवताओ का ध्यान और दान हमारी ओर प्रेरित हो । हम उनके मित्र बनने का यत्न करें। वे हमारी आयु-वृद्धि करें ।।२।। उन भग, मित्र, अदिति, दक्ष, अयमा वरुण, चन्द्र, अश्विनीकुमारो का हम प्राचीन स्तुतियो से आह्वान करते हैं । वे और सौभाग्य देने वाली सरस्वती हमको सुख दें ।। ३ ।। वायु, हमको सुख देने वाली औषधि प्राप्त करावे । माता पृथ्वी, पिता आकाश और सोम निष्पन्न करने वाले पाषाण वह औषधि लावें । हे अश्वदेवो ! तुम ऊँचे पद वाले हो, हमारी प्रार्थना सुनो ।।४।। स्थावर जङ्गम के पालनकर्ता, बुद्धिप्रेरिक विश्वेदेवो को हम रक्षार्थ बुलाते है जिससे अहिंसित पूषा हमारे धन के बढाने वाले और रक्षक हो ।।५।। (१५)

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा. स्वस्ति न. पूपा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।६।
पृषदश्वा मरुत. पृश्निमातरः शुभयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूर चक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ।७।
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।८।
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ।९।

मरुद्गण, पूषा, भग ये स्तुत्य देवगण हमको कल्याण मार्ग पर चलावें ॥४॥ हे पूषा, हे उत्तम मार्ग वाले विष्णो ! तुम हमको ऐसे कर्म की ओर प्रेरित करो जिससे हम गौऐं प्राप्त कर सकें । तुम हमारे लिए कल्याणकारी बनो ।५। (१७)

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ।६।
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः मधु द्यौरस्तु नः पिता ।७।
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ।८।
शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ।९।१८

यज्ञशील के लिए वायु, नदियाँ तथा औषधियाँ मधुर रस वर्षक होती हैं ।।६।। रात्रि और दिवस माधुर्यमय हो । पृथिवी और अन्तरिक्ष तथा हमारे पिता (आकाश) मधुर रस देने वाले हो ।।७।। वनस्पतियाँ मधुर हों, सूर्य मधुर रस की वर्षा करें, गौऐं हमको मधुर दूध दें ।।८।। मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, बृहस्पति और विस्तृत पैर रखने वाले विष्णु हमारे लिए साक्षात् सुख के स्वरूप हों ।।९।। (१८)

९१ सूक्त

(ऋषि-गौतमो राहूगणः पुत्र । देवता-सोम छन्द पंक्ति प्रभृति)

त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्द्रो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ।१।
त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः ।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः ।२।
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ।३।
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन्राजन्सोम प्रति हव्या गृभाय ।४।

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा ।
त्वं भद्रो असि क्रतु ।५।१६

हे सोम ! बुद्धि से तुमको हम जान सके । तुम हमको सुन्दर मार्ग बनाते हो तुम्हारे नेतृत्व मे हमारे पितर देवताओं से रमणीय सुख को प्राप्त करने मे समर्थ हुए ।।१।। हे सोम ! तुम उत्तम प्रज्ञा वाले सभी धनो से युक्त, मन की पवित्र द्वारा चतुर हुए । तुम मनुष्यों को उत्तम सीख देने वाले महिमा से पुरुषार्थ युक्त तथा तेजस्वी हुए ।।२।। हे सोम ! वरुण के सभी नियम तुममें निहित हैं । तुम अत्यन्त तेजस्वी हो । तुम पवित्र, मित्र के समान प्रिय और अर्यमा के समान वृद्धि कारण हो ।।३।। हे राजा सोम ! तुम्हारे जो तेज आकाश, पृथिवी पर्वतो, औषधियो और जलो मे है, उनके सहित क्रोध रहित मुद्रा मे, प्रसन्नता पूर्वक हमारी हवियो को ग्रहण करो ।।४।। हे सोम ! तुम उत्तम पुरुषो के पालक वृत्र नाशक एव उत्तम बल के साक्षात् रूप हो ।।५।।   (१६)

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ।६।
त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते । दक्षं दधासि जीवसे ।७।
त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः न रिष्येत्त्वावतः सखा ।८।
सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ।९।
इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि ।
सोम त्वं नो वृधे भव ।१०।२०

हे सोम ! प्रिय स्तोत्रो से युक्त वन-राज ! तुम हमारे जीवन की चाहना करो, जिससे हम मृत्यु को प्राप्त न हों ॥ ६ ॥ हे सोम ! यज्ञाभिलाषी युवक तथा वृद्धों को ऐश्वर्य और जीवन के निमित्त आप शक्ति धारण हो ॥ ७ ॥ हे सोम ! पापी जनों से हमारी रक्षा करो । तुम्हारे मित्र हम कभी दुख न उठावें ॥ ८ ॥ हे सोम ! हविदाता को सुखी करने वाले

अपने रक्षा-साधनों से तुम हमारे रक्षक हो ॥९॥ हे सोम ! इस यज्ञ में हमारी इन स्तुतियों को ग्रहण कर हमारी वृद्धि के निमित्त पधारो ॥१०॥ (२०)

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः सुमृळीको न आ विश ।११।
गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ।१२।
सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । मर्य इव स्व ओक्ये ।१३।
यः सोम सख्ये तव रारणद्देव मर्त्यः दक्षः सचते कविः ।१४।
उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः ।
सखा सुशेव एधि नः ।१५।२१

हे सोम ! स्तुति वचनों के ज्ञाता हम तुम्हें स्तुतियों से सम्पन्न करते हैं । तुम कृपा पूर्वक हमारे शरीरों में प्रविष्ट होओ ॥११॥ हे सोम ! तुम हमारे धन की वृद्धि करने वाले, रोगनाशक पुष्टिदायक और उत्तम मित्र होओ ॥१२॥ हे सोम ! गौओं के घासों के समूह में और मनुष्यों के घर में रमण करने के समान, तुम हमारे हृदयों में रमण करो ॥ १३ ॥ हे सोम ! जो मनुष्य तुम्हारी मित्रता का इच्छुक हैं तुम मेधावी और शक्तिमान् सदा उसके साथी रहते हो ॥१४॥ हे सोम ! हमको अपयश से बचाओ, पाप से हमारी रक्षा करो, तुम हमारे लिए सुखकारी मित्र होओ ॥१५॥ (२१)

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य सङ्गथे ।१६।

आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ।१७।

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ।१८।

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ।१९।

सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ।२०।२२

हे सोम ! तुम वृद्धि को प्राप्त होओ । तुम वीर्यवान होओ । युद्ध-काल उपस्थित होने पर हमारे सहायक बनो ।१६। हे अत्यन्त हर्षित करने वाले सोम ! तुम सुन्दर यश रूप रश्मियों से तेज वान बनो । तुम हमारे मित्र रहकर सुबुद्धि की ओर प्रेरित करते रहो ।१७। हे सोम ! तुम शत्रुओं को वश में करने वाले हो तुमको अन्न,बल और वीर्य की प्राप्ति हो । अमरत्व की इच्छा में बढ़ते हुये आकाश के समान उत्तम यश तुम्हें प्राप्त हो ।१८। हे सोम ! तुम्हारे जिन तेजों में यजमान हवि द्वारा यज्ञ करते हैं, वे सब तेज हमारे यज्ञ के सब ओर विद्यमान हों । तुम धन की वृद्धि करने वाले, पाप से उबारने वाले वीरतायुक्त, सन्तानों के रक्षक हमारे घरों में निवास करो ।१९। गो अश्व के देने वाले तथा कर्मवान गृह कार्य-कुशल, यज्ञाधिकारी, पितरों को यश दिलाने वाले पुत्र के दाता सोम को हवि देनी चाहिये ।२०। [२२]

अषाळ्हं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ।२१।
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ।२२।
देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ।२३।२३

हे सोम ! हम युद्धों के प्रबल, पालक, प्रकाशदाता, जलों के पोषक बल-रक्षक, स्तोत्र रूप, उत्तम वास वाले, यशस्वी और अजेय होते हुए तुम्हारे बल से प्रसन्न रहें ।२१। हे सोम ! तुमने औषधि जल और गौओं को उत्पन्न किया, अन्तरिक्ष को चारों ओर फैलाकर विस्तार किया तथा अन्धकार को दूर कर दिया ।२२। हे शक्तिशाली सोम ! तुम दिव्य हृदय वाले युद्ध में हमारे धन-भाग जीतकर लाओ । इस कार्य में तुम्हें कोई रोक न सके । तुम बल के स्वामी हो, युद्ध में दोनों पक्षों को समझ लो कि कौन मित्र है और कौन शत्रु है ।२३। (२३)

९२ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगण पुत्र, । देवता—उषा । छन्द—जगती, त्रिष्टुप पंक्ति)

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ।१।
उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ।२।
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ।३।
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ।४।
प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ।५।२४

उषाऐं अन्तरिक्ष के पूर्वार्द्ध में प्रकाश को फैलाती हुई संकेत करती हैं। अरुण वर्ण की गौ माताऐं शस्त्रों से सजे हुये वीरों के समान आगे बढ़ रहीं है ।१। अरुण उषा उदय हो गई। उसने शुभ्र गौओं (रश्मियों) को रथ में जोड़ा है। पूर्व के सदान स्थानों को स्पष्ट करती हुई वह चमकीले प्रकाश को सेवन करती हैं ।२। सोम निष्पन्नकर्ता उत्तम कर्मवान् तथा दानशील यजमान को दूर से आकर भी उषाऐं सब धनों को पहुंचाती हुई कार्यव्यस्त महिलाओं के समान सुशोभित होती हैं ।४। उषा नर्तकी के समान विविध रूपों को धारण करती तथा गौ के समान स्तन प्रकट कर देती है वह समस्त लोकों के लिए प्रकाश से भरती और अन्धकार मिटाती है ।४। उषा की दमक सर्वत्र फैल रही है, जिसने विशाल काय अन्धकार को दूर किया। आकाश की पुत्री उषा अद्भुत प्रकाश से युक्त हुई ।५।   (२४)

अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ।६।
भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।

प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषे गोअग्रा उप मासि वाजान् ।७।
उषस्तमश्या यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ।८।
विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्य प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति ।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ।९।
पुनः पुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ।१०।२५

हम उस अन्धकार से निकल गये । उषा ने स्थानों को स्पष्ट कर दिया वह दमकती हुई स्वच्छन्द भाव में हँस रही है । वह हर्षित हुई सुन्दर मुख वाली स्त्री के समान शोभित है । प्रिय सत्यवाणी की ओर प्रेरित करने वाली, दमकती हुई आकाश-पुत्री उषा गौतमों द्वारा स्तुत्य है । हे उषे ! तुम हमको पुत्र, पौत्र और घोड़ों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो ।७। हे उषे ! तू सौभाग्यवती है । मुझे सुन्दर पुत्रों, सेवकों अश्वों से युक्त उस यशपूर्ण धन को प्राप्त कराओ, जिसे तू अपने बल से और कर्म से प्रेरित करती है ।८। सब लोकों को देखती हुई देवी पश्चिम की ओर मुख करके चमकती और सब जीवों को गति देती हुई चैतन्य करती है । यह चिन्तनशील प्राणियों की वाणी को जानने वाली है ।९। पुनः पुनः प्रकट होती हुई और समान रूप से सब ओर सुशोभित हुई यह प्राचीन उषा मरणशील जीवों की आयु क्षीण करने वाली है, जैसे व्याधि-स्त्रियाँ पक्षियों को मारती हुई उनकी गणना कम करती है ।१०।				(२५)

व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति ।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ।११।
पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत् ।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ।१२।
उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ।१३।

उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरी ।
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ।।१४।
युक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणां उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ।।१५।२६

यह स्त्री आकाश की सीमाओं को प्रकट करने वाली है अपनी बहिन रात्रि को दूर करती हुई दिखाती है। यह मनुष्यों से युगों का ह्रास करने वाली अपने प्रेमी दर्शन से चमकती है।११। उज्ज्वल वर्ण वाली सौभाग्यशालिनी उषा पशुओं के समान वृद्धि को प्राप्त हुई, नदियों के समान फैलती है ! वह देवताओं के नियमों की अवहेलना नहीं करती और सूर्य की किरणों सहित दीखती है ।१२। हे उषे ! तू अत्यन्त अन्न वाली है। उस अद्भुत अन्न को हमारे लिए ला जिससे हम अपने पुत्रादि का पोषण कर सकें ।१३। हे गौ, अश्व, प्रकाश, सत्य वाणी से युक्त उषे ! तू हमारे लिए धन वाली होकर आ ।१४। हे अत्यन्त अन्न वाली उषे ! अरुण घोड़ों को छोड़कर हमारे लिये सभी सौभाग्यों को लाने वाली बनो ।१५। (२६)

अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ।१६।
यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथु ।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ।१७।
एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी ।
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ।१८। २७

हे विकराल कर्म वाले अश्विदेवो ! तुम एक मन वाले, गौ-घोड़ों से युक्त अपने रथ को हमारे घर के सामने रोको ।१६। हे अश्विनीकुमारो ! तुमने आकाश से स्तोत्रों को लाकर मनुष्यों को प्रकाश दिया है। तुम हमारे निमित्त भी बल लाने वाले बनो ।१७। स्वर्णिम मार्ग वाले सुखदाता विकराल अश्विनीकुमारों को उषा काल में चैतन्य हुए उनके अश्व सोमपानार्थ यहाँ ला (२७)

९३—सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगणपुत्र । देवता - अग्नीषोमौ । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्, पंक्ति त्रिष्टुप्, गायत्री)

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।
प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ।१।
अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।
तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ।२।
अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ।३।
अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ।४।
युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूंरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ।५।
आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ।६।१८

हे पुरुषार्थ युक्त अग्नि और सोम ! तुम दोनो मेरे आह्वान् को सुनो मेरे सुन्दर वचनों से हर्षित होओ । मुझ हविदाता के लिये सुखस्वरूप बनो । १ । हे अग्ने ! हे सोम ! तुम दोनो के प्रति निवेदन करता हूँ तुम उत्तम पुरुषार्थ धारण कर सुन्दर अश्वो और गौओ की वृद्धि करो । २ । हे अग्ने ! हे सोम ! जो तुमको घृतयुक्त हवि दे, वह सन्तानवान्, वीर्यवान् और पूर्ण आयु को प्राप्त करे ।३। हे अग्ने ! हे सोम ! तुम दोनो बल मे प्रसिद्ध हो । तुमने 'पणि' के अन्न रूप गौओ का हरण किया "बृसय" की सन्तान का हनन किया और अनेकों के लिए ही प्रकाश (सूर्य) को प्राप्त किया ।४। हे सोम ! हे अग्ने ! तुम दोनो समान कर्म वाले हो। तुमने आकाश मे ज्योतियाँ स्थापित की तुम दोनो ने हिंसक वृत्र से नदियों को मुक्त कराया ।५। हे अग्ने ! हे सोम ! तुममें से एक को मातरिश्वा

आकाश से लाये, दूसरे को स्येन पक्षी पर्वत के ऊपर से लाया। तुम स्तोत्रो (पढ़ने वालो ने लोक को यज्ञ के लिए विस्तृत किया ।६।

अग्नीषोमा हविष: प्रस्थितस्य वीत हर्यन्त वृषण जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय श यो. ।७
यो अग्नोषोमा हविषा सपर्याद्देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षत पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।८।
अग्नीषोमा सवेदमा सहूती वनत गिर: । स देवत्रा बधूवथु: ।६।
अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति । तस्मं दोदयति वृहत् ।१०।
अग्नीषोमाविमामो नो युवं हव्या जुजोषतम् ।
आ यातमुप न. सचा ।११।
अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूद: ।
अस्मे वलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वर श्रुष्टिमन्तम् ।१२।२६

हे वीर्यवान् अग्नि, सोम ! तुम हमारी हवियो को ग्रहण करके प्रसन्न होओ तुम उत्तम सुख युक्त रक्षा करो। मुझ यजमान के रोगो को दूर कर शांति दो ।७। हे अग्नि, सोम ! जो देवताओ मे मन लगाने वाला घृत, हवि से तुमको पूजता है, उसके व्रत की रक्षा करो। उसे पाप से बचाओ और उसके कुटुम्बियो को शरणागत करो ।८। हे अग्नि, सोम ! एकत्रित ऐश्वर्य वाले तुम दोनो एक साथ बुलाये जाते हो। तुम दोनो देवत्व से युक्त हो। हमारी स्तुतियो को ग्रहण करो। हे अग्ने ! हे सोम ! जो तुम दोनों के लिए घृतयुक्त हवि दे, उसके लिए तुम जाज्वल्यमान होओ ।१०। हे अग्नि ! हे सोम ! तुम दोनों हमारी हवियां ग्रहण करो। हमको प्राप्त होओ ।११। हे अग्नि, सोम ! तुम दोनो हमारे अश्वो को बल दो। हवि उत्पन्न करने वाली हमारी गौएं वृद्धि को प्राप्त हो। तुम दोनो हम धनवानों को शक्ति दो। हमारे यज्ञ को गुणकारी बनाओ १२। (२६)

९४ सूक्त [पन्द्रहवाँ अनुवाक]

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरस । देवता-अग्नि । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्, पंक्ति)

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।१।
यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम् ।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।२।
शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।३।
भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।४।
विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।५।२०

हम धनोत्पादक पूज्य अग्निदेव के लिये रथ के समान बुद्धि से इस स्तोत्र को महत्व दें। हमारी सुमति कल्याणकारिणी हो। हे अग्ने! तुम्हारे मित्र होकर कभी सन्तापित न हों ।१। हे अग्ने! जिसके लिए तुम देवपूजन करते हो, उसके अभिष्ट पूर्ण होते हैं। वह किसी का आश्रय नहीं खोजता। उत्तम वीर्ययुक्त हुआ वह बढ़ता है तथा दरिद्र नहीं रहता। हे अग्ने! तुम्हारी मित्रता होने पर फिर हम दुखी न रहें ।२। हे अग्ने! हम तुम्हें प्रदीप्त करने की सामर्थ्य प्राप्त करें। तुम हमारे कार्य को सिद्ध करो। तुम में दी गई हवियों को देवता प्राप्त करते हैं। हम आदित्यों की कामना करते हैं, उन्हें यहाँ लाओ। तुम्हारी मित्रता प्राप्त कर हम दुखी न हों ।३। हे अग्ने! तुम्हें चैतन्य करने के लिए हम ईंधन एकत्रित करें, हवि-सम्पादन करें, तुम हमको वर्धमान बनाकर उच्च जीवन की ओर प्रेरित करो। तुम्हारी मित्रता प्राप्त करके हम दुखी न हों ।४। दुपाये और चौपाये कर प्रजा के रक्षक इस अग्नि के दूत रश्मि से विचरण करते हैं। हे अग्ने! तुम

तथा का अभाव देने वाले महान हो । हम तुम्हारे मित्र होने पर पीड़ित न हों ।५।   (३०)

त्वमध्वर्यु रुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः ।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।६
यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित्सन्तलिदिवाति रोचसे ।
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।७
पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्य ।
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।८।
वधैर्दुः शंसा अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।९।
यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।१०।३१

हे दृढ़ विचार वाले अग्निदेव ! तुम अध्वर्यु प्राचीन होता प्रशास्ता, पोता एवं जन्मजात पुरोहित हो । ऋत्विजो के हर कर्मों के जानने वाले तुम कर्मों को पुष्ट करते हो तुम्हारी मित्रता प्राप्त करके फिर हम पीड़ित न हों ।६। हे सुन्दर मुख वाले अग्ने ! तुम सब ओर से समान हो तुम दूर रहो तो भी पास ही दिखाई पड़ते हो । तुम रात्रि के अन्धकार को चीर कर देखने वाले हो । हम तुम्हारे मित्र होकर कभी दुखी न हों ।६। हे देवगण ! सोम निष्पन्नकर्ता का रथ अग्रणी हो । हमारे स्तोत्र मे पाप-बुद्धि वाले हार जावें ।७। तुम हमारे वचनो से बढो हे अग्ने ! तुम्हारे मित्र होकर हम कभी दुख न पावें ।८। हे अग्ने ! जो भक्षक दैत्य निकट या दूर हो उन्हें तथा अपशब्दवक्ता पापियों को शास्त्रों से मारो और स्तोता के यज्ञ मे सुखमय मार्ग बनाओ । हम तुम्हारी मित्रता पाकर पीडित न हो । ९ । हे अग्ने ! तुम वायु वेग वाले रोहित नामक अश्वों को रथ मे जोड़कर बैल के समान शब्द करते हो और धूमध्वज वाले रथ को वृक्षों की ओर उठाते हो । हम तुम्हारे मित्र होकर पीड़ित न हो ।१०।   (३१)

अध स्वनादुत बिभ्यु पतत्रिणा द्रप्सा यत्ते यवसादो व्यस्थिरन् ।
सुगं तत्ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।११।
अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसेऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुत ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मन पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।१२।
देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।१३।
तत्ते भद्रं यत्समिद्ध स्वे दमे सोम हुतो जरसे मृळयत्तम ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।१४।
यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ।१५।
स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायु प्र तिरेह देव ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति सिन्धु पृथिवी उत द्यौ ।१६।२

हे अग्ने ! जब तुम्हारी लपटें जङ्गल में फैलती हैं, तब पक्षी भी डरते हैं। उस समय तुम्हारा रथ निर्भय विचरता है। तुम्हारे मित्र होकर हम कभी पीड़ित न हों ।११। यह अग्नि मित्र और वरुण को धारण करने में समर्थ है। नीचे उतरते हुए मरुतों का क्रोध भयानक है। हे अग्ने ! कृपा करो इनके मन को हमारे लिए कल्याणकारी बनाओ। तुम्हारे मित्र हम दुःखी न रहें ।१२। हे अग्ने ! तुम देवताओं के मित्र हो। धन वाले तुम यज्ञ में शोभा पाते हो। हम तुम्हारे आश्रय में रहें और कभी पीड़ित न हों ।१३। हे अग्ने ! तुम अपनी कृपा द्वारा घर में प्रदीप्त होते और सोम द्वारा हवि-ग्रहण करते हुए सुखमय शब्द करते हो। तुम हविदाता को रत्न धन देने वाले हो। हम तुम्हारी मित्रता से सुखी हों ।१४। हे सुन्दर ऐश्वर्य रूप अनन्त बल युक्त अग्ने ! तुम जिसकी पाप कर्मों से रक्षा करते हो, जिसे प्रजायुक्त धन देकर कल्याण करते हो, वे हम हों ।१५। हे अग्निदेव ! तुम सर्व सौभाग्यों के ज्ञाता हमारी आयु-वृद्धि करो। मित्र, वरुण, अदिति

समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को सम्मान दें ।१६। (३२)

। पञ्च अध्याय समाप्तम् ।

६५ सूक्त

(ऋषि—कुत्सआङ्गिरसः । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्ति)

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ।१।
दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ।२।
त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून्प्रशासद्वि दधावनुष्ठु ।३।
क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातॄर्जनयत स्वधाभिः ।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान्कविर्निश्चरति स्वधावान् ।४।
आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात्प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ।५।१

उत्तम उद्देश्य वाली दो भिन्न रूपणी स्त्रियाँ गमन शील हैं। दोनों एक दूसरे के बालकों का पोषण करती हैं। एक से सूर्य अन्न प्राप्त कराता और दूसरी से अग्नि सुन्दर दीप्ति से युक्त होती है।१। त्वष्टा के इस खेलने वाले शिशु को निरालस्य दसों युवतियाँ दश (उंगलियाँ) प्रकट करती हैं। तीक्ष्ण मुख वाले, लोकों में यशवान् दीप्तिमान् इसे सब ओर ले जाया जाता है।२। यह अग्नि तीन जन्म वाला है – एक समुद्र में एक आकाश में और एक अन्तरिक्ष में सूर्य रूप अग्नि ने ऋतुओं का विभाग कर पृथिवी के प्राणियों के निमित्त पूर्व दिशा के पश्चात् क्रम पूर्वक दिशाओं को बनाया।३। छिपे हुए इस अग्नि का ज्ञाता कौन है? जो पुत्र होकर भी हव्यान्न द्वारा अपनी माताओं को जन्म देता है तथा जो अनेक जलों का गर्भ रूप समुद्र से प्रकट होता है।४। जलोत्पन्न अग्नि, यज्ञ, के साथ प्रकाशित हुए बढ़ते हैं। इसके उत्पन्न होने [illegible] त्वष्टा की दोनों पुत्री

(अग्नि को उत्पन्न करने वाले दोनों काष्ठ या अरणियाँ) भयभीत हुई, इस सिंह को पीठ से सेवा करती है ।५।   (१)

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ।६।
उद्यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ।७।
त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ।८।
उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ।९।
धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मि शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु ।१०।
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।११।१

सुन्दर स्त्रियों के समान यह आकाश और पृथिवी, उस अग्नि की सेवा करते हैं। यह अग्नि अत्यन्त बल से युक्त हैं और ऋत्विज दक्षिण की ओर खड़े होकर हवियों से इनकी सेवा करते हैं।६। यह सूर्य की किरणों के समान अपनी भुजाओं को फैलाते हैं। वे विकराल रूप वाले दिन - रात्रि की सीमाओं को पहुँचते हुए सब वस्तुओं से गुण खींचते हैं और जल रूप माताओं के लिए रस (वर्षा) छोड़ते हैं।७। मेधावी अग्नि जलों से मिलकर उज्ज्वल रूप धारण करते है। वे अपने कर्म से अन्तरिक्ष को तेजस्वी बनाते हैं।८। हे अग्ने ! तुम्हारा अत्यन्त प्रकाशयुक्त तेज अन्तरिक्ष मे फैल जाता है, तुम अपने उस अक्षय तेज से हमारी रक्षा करो।९। अग्नि मरुभूमि मे भी जल प्रवाह को प्रेरित करने मे समर्थ हैं। वह पृथिवी को लहरों मे युक्त करते हैं। सब अन्नों के धारक और मातृ-भूत औषधियों मे रमण करने वाले हैं।१०। हे पावक ! तुम ईंधन द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुए

मन से पूर्ण यज्ञ द्वारा प्रदीप्त होओ । हमारी स्तुतियों को मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश ग्रहण करें ।११। (२)

९६ सूक्त

(ऋषि – कुत्स आङ्गिरस । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्)

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ।१।
स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ।२।
तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ।३।
स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर्विदद्गातुं तनयाय स्वर्वित् ।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ।४।
नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ।५।२

शक्ति (काष्ठों) के घर्षण से प्रकट अग्नि ने पुरातन के समान सब ज्ञानों को तुरन्त ग्रहण किया । धनदाता अग्नि को जलों और पृथिवी ने मित्र बनाया तथा देवगण ने दूत रूप से उनको नियुक्त किया ।१। अग्नि ने प्राचीन स्तुति मन्त्रों से मनुओं की प्रजा को प्रकट किया और आकाश 'अन्तरिक्ष' को तेज से व्याप्त किया । उस धनदाता और अग्नि को देवगण ने दूत रूपसे धारण किया ।२। हे मनुष्यो ! तुम यज्ञ को पूर्ण करने वाले, हवियों द्वारा पूज्य, अभीष्ट वाले, बल के पुत्र, पालक, धनदाता अग्नि प्रधान रूप से पूजो । उसी धनदाता अग्नि को देवगण ने दूत-रूप से धारण किया ।४। बहुतों द्वारा वरणीय, पोषक रक्षक, आकाश-पृथिवी के उत्पत्तिकर्त्ता मातरिश्वा अग्नि ने स्वर्ग-पथ को प्राप्त किया । उसी धनदाता अग्नि को देवताओं ने धारण किया ।५। एक दूसरे के वर्ण रूप अस्तित्व को नष्ट करती हुई उषा और रात्रि [illegible] (अग्नि) को

सकता है। वह नित्य आकाश-पृथिवी के मध्य प्रदीप्त होता है। उसी को देवताओं ने धारण किया है।५। (३)

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ।६।
नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ।७।
द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदा सनरस्य प्र यंसत् ।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायु ।८।
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे विभाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति सिन्धु पृथिवी उत द्यौ ।९।८

यह ऐश्वर्य के कारण रूप, धन-स्थान, यज्ञ के ध्वज रूप अग्नि मनुष्य का अभीष्ट पूर्ण करने में समर्थ है। अमरत्व के रक्षक देवगण ने इन्हीं को धारण किया है।६। अब और पहले से ही अग्नि धनों के उत्पत्ति स्थान हैं। जन्मे हुए और भविष्य में जन्म लेने वाले प्राणियों के रक्षक एवं धनदाता अग्नि को देवगण ने धारण किया।७। धनदाता अग्नि हमारे लिये बढ़ने योग्य धन दें। वे हमें वीरतायुक्त धन, सन्तान, अन्न आदि से पूर्ण दीर्घायु प्रदान करें।८। हे हे पावक ! हमारे ईंधन से वृद्धि को प्राप्त, यशपूर्ण धन वाले प्रदीप्त होओ। हमारी इस प्रार्थना को मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश अनुमोदित करें।९। (४)

९७ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः । देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री)

अप न: शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् ।१।
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप न: शोशुचदघम् ।२।
प्र यद्भन्दिष्ट एषां प्रास्माकासश्च सूरयः । अप न: शोशुचदघम् ।३।
प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप न शोशुचदघम् ।४।

प्र यदग्ने सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानव. । अप न: शोशुचदघम ।५।
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वत परिभूरसि । अप न: शोशुचदघम् ।६।
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय । अप न. शोशुचदघम् ।७।
स न. सिन्धुमिव नावया ति पर्षा स्वस्तये ।

अप न. शोशुचदघम् ।८।६

हमारे पाप भस्म हो । हे अग्ने ! हमारे चारो ओर धन को प्रकाशित करो हमारे पाप नष्ट हो ।१। हम सुन्दर क्षेत्र सुन्दर मार्ग और श्रेष्ठ धन की इच्छा से यज्ञ करते हैं । हमारा पाप भस्म हो ।२। सबसे अधिक स्तुति करने वालो मे मैं अग्रणी हो हमारा पाप भस्म हो ।४। अग्नि की शत्रु विजयी प्रबल ज्वालाऐ सब ओर बढ़ती हैं । हमारा पाप भस्म हो ।५। हे सर्वतोप्रमुख अग्ने ! तुम सर्वत्र फैलने वाले हो । हमारा पाप जलकर नष्ट हो ।६। हे अग्ने ! तुम हमको नौका के समान शत्रुओ से पार लगाओ । हमारा पाप भस्म हो ।८। हे अग्ने ! समुद्र से पार ले जाने के समान, हिंसको से हमको पार ले जाओ । हमारा पाप जल जावें ।८।   (५)

९८ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरस । देवता—अग्नि, । छन्द—त्रिष्टुप्)

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ।१।
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्नि. पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानर: सहसा पृष्टो अग्नि: स नो दिवा स रिष: पातु नक्तम् ।२।
वैश्वानर तव तत्सत्यमस्त्वस्मान्रायो मघवान: सचन्ताम् ।
... मामहन्तामदिति: सिन्धु: पृथिवी उत द्यौ: ।३।

... कया । उमी ... दया से ... लोकों के पालक और
... तत्व को ...

उत्तेजित किया। मनुष्यों ने अपनी कुशल के लिये उन्हें रक्षक माना। वह अकेले ही सब धर्मों के स्वामी है। इन्द्र मरुतो सहित हमारी रक्षा करें ॥७॥ युद्धों में मनुष्य इन्द्र को धन और रक्षा के लिए बुलाते हैं। वह अन्धकार में भी प्रकाश करने वाले हैं। वह इन्द्र मरुतों सहित हमारे रक्षक हो ॥ ८ ॥ वह इन्द्र बाएं हाथ से हिंसकों को रोकते और दाएं हाथ से यजमान की हवियाँ ग्रहण करते है। वे स्तोता को धन देते है। मरुतों के साथ वे हमारे रक्षक हों ॥९॥ वे अपने सहायकों सहित धन प्राप्त कराते है। वैरियों को शक्ति से वशीभूत करने वाले यह इन्द्र मरुतों सहित हमारी रक्षा करे ॥१०॥ (६)

स जामिभिर्यत्समजाति मीलहेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥११
स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१२
तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान् ।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१३
यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वतः सीम् ।
स पारिषत्क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१४
न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१५॥१०

बहुतों द्वारा आहूत इन्द्र बन्धुओं अथवा अन्य व्यक्तियों के साथ युद्ध-यात्रा करते है, तब वे मरुतों सहित हमारी रक्षा में तत्पर रहें ॥ ११ ॥ वे वज्रधारी इन्द्र, दैत्यों के हननकर्ता, विकराल पराक्रमी, बहुतों पर कृपा करने वाले, सर्व-दर्शक, प्रकाशमान, सोम के समान पुष्ट है। वे मरुतों सहित हमारे रक्षक हों ॥१२॥ इन्द्र का चमकता हुआ वज्र घोर शब्द करता दर्शनीय है। उनकी स्तुतियां और ऐश्वर्य सेवा करते है। मरुतों सहित वही इन्द्र हमारी रक्षा करने वाले हों ॥ १३ ॥ जिनका बल असीम पृथिवी का पालन

यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन्पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।२।
यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।३।
यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणि कर्मणि स्थिरः ।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।४।
यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।५।
यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।६।१२

हे मित्रो ! इस प्रसन्न हुए इन्द्र के निमित्त अन्नयुक्त स्तुतियाँ अर्पण करो। जिसने राजा 'ऋजिश्वा' के साथ 'कृष्ण' नामक दैत्य की प्रजाओं का नाश किया, हम उस वज्रधारी वीर्यवान् इन्द्र का मरुतों सहित रक्षा के लिये आह्वान करते हैं ॥१॥ जिसने अपने अत्यन्त क्रोध से 'व्यंस' 'शम्बर,' 'पिप्रु' और 'शुष्ण' नामक दुष्टों का नाश किया हम उस इन्द्र को मरुतों सहित बुलाते हैं ।२। जिसके बल से आकाश पृथिवी प्रेरित है, जिसके नियम में वरुण, सूर्य और नदियाँ स्थित हैं उस इन्द्र को मरुद्गण सहित बुलाते हैं ॥ ३ ॥ अश्वों, गौओं के स्वामी, पूजनीय, कर्मों में स्थिर, सोम विरोधी दुष्टों के शत्रु, इन्द्र को मरुद्गण सहित बुलाते हैं ।४। जो गतिमान् और श्वासधारी जीवों के स्वामी हैं, जिन्होंने ब्राह्मणों के भी अपहृत गौओं का उद्धार किया तथा दुष्टों का पतन किया, वे इन्द्र मरुद्गण सहित हमारे मित्र हों ॥५॥ जो वीरों द्वारा एवं कायरों द्वारा भी बुलाये जाते हैं, जो विजेताओं तथा पलायनकर्त्ताओं के द्वारा आहूत किये जाते हैं, उन इन्द्र को विद्वज्जन सम्पूर्ण लोकों का स्वामी मानते हैं। वे मरुतों सहित हमारे मित्र बनें ॥६॥

(१०)

रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।७।

करता है वे हमारे यज्ञ-कर्म से सन्तुष्ट हों और मरुतो सहित रक्षा करें ॥ १४ ॥ जिसके बल का पार देवता या मनुष्य कोई नही पाते, वे अपने बल से पृथिवी और आकाश से भी महान् है । मरुतो सहित वे हमारी रक्षा करें ।१५। (१०)

रोहिच्छ्यावा सुमदंशूर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ।१६
एतत्यत इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः ।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ।१७।
दस्यूञ्छिम्यूंश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ।
सनत्क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत्सूर्यं सनदपः सुवज्रः ।१८।
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।१९।११

रोहित और श्यामा अत्यन्त सुन्दर रूप वाले घोड़े धन के निमित्त पुरुषार्थी इन्द्र के रथ को ले जाते हुए प्रसन्नता सूचक शब्द करते हैं । इन्द्र 'ऋज्राश्व' को धन दान करते है ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त वृषागिर' के पुत्र 'ऋज्राश्व,' 'अम्बरीष' 'सहदेव' 'भयमान' और 'सुराधा' इस प्रसिद्ध स्तोत्र का उच्चारण करते है ॥१७॥ अनेकों द्वारा आहूत इन्द्र ने हिंसकों को मारकर गिरा दिया । उस उत्तम वज्र वाले ने मनुष्यों के साथ भूमि को, सूर्य को और जलो को पाया ॥१८॥ इन्द्र हमारे पक्ष को सबल करें । हम सीधे मार्ग से अन्न सेवन करें । हमारी इस प्रार्थना को मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश सुनें ॥१९॥ (१९)

१०१ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आंगिरस. देवता-इन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप्, जगती)

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।१।

यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन्पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।२।
यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।३।
यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणि कर्मणि स्थिरः ।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।४।
यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।५।
यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।६।१२

हे मित्रो ! इस प्रसन्न हुए इन्द्र के निमित्त अन्नयुक्त स्तुतियाँ अर्पण करो । जिसने राजा 'ऋजिश्वा' के साथ कृष्ण नामक दैत्य की प्रजाओं का नाश किया, हमें उस वज्रधारी, वीर्यवान् इन्द्र का मरुतों सहित रक्षा के लिये आह्वान करते हैं ॥१॥ जिसने अपने अत्यन्त क्रोध से 'व्यंस' 'शम्बर,' 'पिप्रु' और 'शुष्ण' नामक दुष्टों का नाश किया हम उस इन्द्र को मरुतों सहित बुलाते हैं ।२। जिसके बल से आकाश पृथिवी प्रेरित है, जिसके नियम में वरुण, सूर्य और नदियाँ स्थित हैं उस इन्द्र को मरुद्गण सहित बुलाते हैं ॥ ३ ॥ अश्वों, गौओं के स्वामी, पूजनीय, कर्मों में स्थिर, सोम विरोधी दुष्टों के घातक इन्द्र को मरुद्गण सहित बुलाते हैं ।४। जो गतिमान् और श्वासधारी जीवों के स्वामी हैं, जिन्होंने ब्राह्मणों के भी अपहृत गौओं का उद्धार किया तथा दुष्टों का पतन किया, वे इन्द्र मरुद्गण सहित हमारे मित्र हों ॥५॥ जो वीरों द्वारा एवं कायरों द्वारा भी बुलाये जाते हैं, जो विजेताओं तथा पलायनकर्त्ताओं के द्वारा आहूत किये जाते हैं, उन इन्द्र को विद्वज्जन सम्पूर्ण लोकों का स्वामी मानते हैं । वे मरुतों सहित हमारे मित्र बनें ॥६॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　(१०)

रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।७।

अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥२
त स्मा रथ मघवन्नाव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम सङ्गमे ।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥३
वय जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥४
नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥५॥१४

हे इन्द्र ! मैं इस अत्यन्त महान स्तोत्र को तुम्हारे प्रति निवेदन करता हूँ । तुम्हारा मेरे ऊपर अनुग्रह इस स्तोत्र पर निर्भर है । इन्द्र के साथ देवगण उस विजयी मद में निष्पन्न सोम द्वारा पुष्ट हुए हैं ॥ १ ॥ इस इन्द्र के यश को सब नदियां, इनके रूप को आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष धारण करते हैं । हे इन्द्र ! हमारे हृदय में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिये सूर्य और चन्द्रमा विचरण करते हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम वैभवयुक्त विजेता हो, तुम्हारे रथ को रण-स्थल में देखकर हम आनन्द विभोर होते हैं । उस रथ को धन प्राप्ति के लिये हमारी ओर प्रेरित करो । तुम हमारे बहुत बार स्तुति किये गये हो । हम तुम्हारे आश्रय को प्राप्त हों ॥३॥ हे ऐश्वर्यशालिन ! हम तुम्हारे सहायक रूप में लड़ते हुए सम्पत्ति को प्राप्त हों तुम हमारे पक्ष की रक्षा करो । धन को सरलता से पावें और शत्रु की शक्ति को नष्ट करें ॥४॥ हे धनों के धारक इन्द्र ! यह रक्षा की याचना करने वाले मनुष्य तुम्हारा हार्दिक आह्वान करते हैं । तुम हमको सम्पत्ति प्राप्त कराने के लिए रथ पर चढ़ो । तुम्हारा स्थिर मन विजय प्राप्त करने में पूर्ण समर्थ है ॥५॥   (१६)

गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिम कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजङ्करः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥६
उत ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत्सहस्राद्रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरन्दर ॥७
त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।

अतीदं विश्वं भुवन ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ।८।
त्वां देवेषु प्रथम हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं न. कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ।९।
त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन्महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे स शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ।१०।
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति. सिन्धु पृथिवी उत द्यौ ।।११।।१५

इन्द्र की भुजाओ मे अत्यन्त बल है, वे गौओ के लिये लाभकारी है। इन्द्र रक्षा-साधनो से सम्पन्न, बाधा रहित, शत्रु मे क्षोभ उत्पन्न करने वाले एवं बल स्वरूप है। धन की कामना से याचकगण इनका आह्वान करते है।६। हे ऐश्वर्ययुक्त इन्द्र ! तुम्हारा यश हजारो गुना फैला हुआ है। तुम अभेद्य दुर्गो को तोडने वाले तथा असीम बल वाले हो। तुमको वेदवाणी प्रकाशित करती है। हे इन्द्र ! शत्रुओं का नाश करो ।।७।। हे मनुष्यो के स्वामिन् ! तुम तीन लोकों में तीन रूप (सूर्य, विद्युत, अग्नि) से विद्यमान हो। निलडी रस्सी के समान प्राणियों के बल रूप हो। तुम सम्पूर्ण जीवो से महान् और शत्रु रहित हो ।।८।। हे इन्द्र ! तुम देवो मे प्रमुख हो। तुम्हारा हम आह्वान करते है। तुम सदा विजेता रहे हो। इस स्तोता को बुद्धि देकर कार्य कुशल बनाओ। रण क्षेत्र मे अपने रथ को आगे रखो ।। ९ ।। हे इन्द्र ! तुमने छोटे या बड़े कैसे भी युद्ध मे पराजय नही पायी। तुमने जीते हुए धन को कभी नही रोका। हम स्तुति द्वारा तुमको युद्धार्थ आमन्त्रित करते हैं तुम हमको उचित प्रेरणा दो ।।१०।। हे इन्द्र ! हमारे पक्ष मे रहो, कुटिल मति से रहित हम अन्नो को उपभोग करें। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारे निवेदन पर ध्यान दें ।।११।। (१५)

१०३ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरस देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्.)

तत्त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवय पुरेदम् ।

क्षमेदमन्यद्दिव्यन्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ।१।
स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज ।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन्व्यंसं मघवा शचीभिः ।२।
स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः ।
विद्वान्वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ।३।
तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ।४।
तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत्सो अविन्दद्श्वान्त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ।५।१६

हे इन्द्र ! तुम्हारा प्रसिद्ध गर्य रूप उत्तम बल आकाश में स्थित है। पृथिवी पर इस अग्नि रूप बल को ऋषियों ने यज्ञ-रूप से धारण किया। यह दोनों बल ध्वजाओं के समान मिलते हैं ॥ १ ॥ उस इन्द्र ने पृथिवी को विस्तृत किया। वृत्र का नाश कर जलों की वर्षा की। 'अहि' और 'रोहिण' असुरों को विदीर्ण किया। 'व्यंस' को मार डाला ॥ २ ॥ वज्रधारी वह इन्द्र शत्रु-दुर्गों को नष्ट करने के लिए जाते हैं। हे इन्द्र ! दैत्यों पर वज्र डालो और आर्यों के बल और कीर्ति की वृद्धि करो ॥३॥ मनुष्यों में कीर्तन योग्य 'मघवा' नाम को धारण करते हुये इन्द्र ने साधक के शत्रुओं को मारने से प्राप्त हुए यश और बल को धारण किया ॥४॥ हे मनुष्यो ! इन्द्र के प्रसिद्ध पराक्रम को देखो, उसके बल का आदर करो, उसने गौओं और घोड़ों को प्राप्त किया। औषधियों, जलों और वनों को भी प्राप्त किया ॥१५॥ (१६)

भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ।६।
तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।७।
शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।८।१७

हम यज्ञकर्मा श्रेष्ठ, पुरुषार्थी बल वाले इन्द्र के लिए सोम निष्पन्न करें। वे लालची, अकर्मी दुष्टों के धन को छीनकर कर्मशील उपासकों में बांटते हैं।६। हे इन्द्र ! सोते हुए वृत्र को वज्र से जगाना वास्तव में तुम्हारा परम शौर्य है। उस समय तुमको पुष्ट देखकर देवताओं ने अपनी पत्नियों सहित अत्यन्त हर्ष प्राप्त किया ।।७।। हे इन्द्र ! जब तुमने 'शुष्ण' 'पिप्रु' 'कुयव', 'वृत्र', को मारा और 'शम्बर' गढ़ों को तोड़ा तब हमारी प्रार्थना सफल हुई। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी प्रार्थनाओं का अनुमोदन करें ।।८।।

१०४ सूक्त

(ऋषि — कुत्स आङ्गिरसः । देवता-इन्द्र । छन्द त्रिष्टुप्, पंक्ति)

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ।।१
ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम् ।।२
अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन् ।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ।।३
युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः ।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ।।४
प्रति यत्स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात् ।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः ।।५।।१८

हे इन्द्र! तुमने अपने लिये जो स्थान बनाया है, उस पर अपने घोड़ों को रथ से खोलकर बैठो। वे घोड़े यज्ञ का अवसर आने पर दिन-रात तुम्हारे रथ को चलाते हैं ।।१।। मनुष्यों ! रक्षा के निमित्त इन्द्र के समीप जाओ। वे दुष्कर्म करने वालों के क्रोध को नष्ट करें। मनुष्य जाति भी उत्तम प्राप्ति करें ।। २ ।। जैसे जल पर फेन स्वयं ही उठता है, वैसे ही अपने [illegible] है। 'कुयव' नामक असुर की स्त्रियाँ दुग्ध से स्नान करती हैं, हे [illegible] में जाकर

डूब मरें ॥३॥ आर्यों का सम्बन्ध इन्द्र से भङ्ग हो गया । वह शक्तिशाली 'कुयव' पूर्व की नदियों के पार राज्य करता था । उसकी अञ्जसी, कुलिशी और वीरपत्नी नामक नदियाँ जल के साथ दूध को ले जाती है ॥४॥ गोष्ठ को जानने वाली गौ के समान दैत्यों ने भी हमारे निवास स्थान का मार्ग देख लिया है । हे इन्द्र ! हमारी अब भी रक्षा करो । जैसे कामुक धन का त्याग करता है, वैसे हमको न त्यागो ॥५॥ (१८)

स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे ।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥६
अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भयो वय आसुतिं दाः ॥७
मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥८
अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥९॥१९

हे इन्द्र ! हमें सूर्य और जलों के प्रति स्तुति करने वाला पापों से रहित बनाओ । तुम हमारी गर्भस्थ सन्तान का नाश न करो । हमको तुम्हारी शक्ति पर पूरा भरोसा है ॥६॥ बहुतों द्वारा आहूत इन्द्र ! मैं आपके वश में विश्वास करता हूँ तुम हमको महान ऐश्वर्य की ओर प्रेरित करो । हमको अन्न विहीन घर में भूखा नहीं रखना ॥७॥ हे समर्थ इन्द्र ! तुम हमारी हिंसा न करो । हमारा त्याग न करो । हमारे उपभोग पदार्थों को नष्ट न करो ॥८॥ हे सोमभिलाषी इन्द्र ! हमारे सामने आओ । यह निष्पन्न सोम रखा है । इसे आनन्द के निमित्त पान करो । बुलाये जाने पर पिता के समान हमारी स्तुति को सुनो ॥९॥ (१९)

१०५ सूक्त

(ऋषि आप्त्यस्त्रित आङ्गिरस कुत्स वा । देवता-विश्वेदेवा ।
छन्द—पंक्ति, बृहती, त्रिष्टुप् ।)

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमय पदं विन्दन्ति विद्युता वित्तं मे अस्य रोदसी ।१।
अर्थमिद्वा उ अर्थिनआ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्य पय परिदाय रस दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ।२।
मो षु देवा अद: स्वरव पादि दिवस्परि ।
मा सोम्यस्य शंभुव. शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ।३।
यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद्दूतो वि वोचति ।
क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद्बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ।४।
अमी ये देवा स्थन त्रिष्वा रोचने दिव ।
कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ।५।२०

चन्द्रमा अन्तरिक्ष मे और सूर्य आकाश मे गति करते हैं । हे स्वर्णिम बिजलियो ! मनुष्य तुम्हें ढूँढने मे असमर्थ हैं । हे आकाश-पृथिवी ! हमारे निवेदन को सुनो ।।१।। धन की इच्छा वाले धन पाते हैं, स्त्री पति पाती हैं । वे दोनों मिलकर सन्तान प्राप्त करते है । हे आकाश पृथिवी ! मेरे कष्ट को समझो ।।२।। हे देवगण ! आकाश के ऊपर की यह ज्योति न नष्ट हो । सोम निष्पन्न करने योग्य सुखकारी पुत्र का अभाव हमको कभी न हो । हे आकाश और पृथिवी ! हमारे कष्ट को समझो ।।३।। मैं सबसे युवा अग्नि से पूछता हूँ । वे देवदूत उत्तर दें कि पुरातन नियम कहाँ है ? कौन नया पुरुष उसे धारण करता है ? हे आकाश, पृथिवी ! मेरे दुःख को समझो ।।४।। हे देवगण ! तीनो मे से प्रकाशित आकाश में तुम्हारा स्थान है । तुम्हारा नियम क्या है ? उन नियमो के विपरीत क्या है ? तुम्हारा प्राचीन आह्वान कहाँ गया ? हे आकाश पृथिवी ! मेरे दुःख पर ध्यान दो ।।५।। (२०)

कद्व ऋतस्य धर्णसि कद्वरुणस्य चक्षणम् ।

कद्र्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्त मे अस्य रोदसी ।६।
अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
तं मा व्यन्त्याध्यो वृको न तृष्णजं मृगं वित्त मे अस्य रोदसी ।७।
सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्त मे अस्य रोदसी ।८।
अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिराततना ।
त्रितस्तद्वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्त मे अस्य रोदसी ।९।
अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्त मे अस्य रोदसी ।१०।२१

देवगण ! हमारे नियम का आधार क्या है ? वरुण की व्यवस्था कहा है ? अर्यमा किस प्रकार हमको दुष्टों से पार लगा सकते हैं ? हे आकाश पृथिवी ! हमारे दुःख को समझो ॥६॥ मैंने पूर्वकाल में, सोम के निचोड़े जाने पर बहुत स्तोत्र कहे । प्यासे हिरण को भेड़िये द्वारा भक्षण कर लेने के समान मेरे मन की पीड़ा ही मुझे खाये जाती है । हे आकाश-पृथिवी ! मेरे कष्ट पर ध्यान दो ॥७॥ दो सौतिनों द्वारा पति को सताये जाने के समान कुँए की दीवारें मुझे सता रही हैं । हे इन्द्र ! चुहिया द्वारा अपनी पूंछ को चबाने के समान मेरे मनकी पीड़ा मुझे चबा रही है । हे आकाश पृथिवी ! मेरे दुःख को समझो ॥८॥ इन सूर्य की सात किरणों से मेरा पैतृक सम्बन्ध है- इस बात को जल का पुत्र 'त्रित' जानता है । इसलिये वह उन किरणों की स्तुति करता है हे आकाश पृथिवी ! मेरे कष्ट को समझो ॥९॥ आकाश में यह पाँच वीर (अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र, विद्युत) स्थित हैं, वे मिलकर मेरे द्वारा रचित इस स्तोत्र को देवताओं को सुनाकर लौट आवें हे आकाश-पृथिवी ! मेरे इस दुःख को जानो ॥१०॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　(२१)

सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्त मे अस्य रोदसी ।११।

तन्न इन्द्रस्तद्वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत्सविता चनो धात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।।३।२५

हमारे यज्ञ को देवगण स्वीकार करें । हे आदित्यो ! हम पर अनुग्रह करो । तुम कल्याणकारी मनको हमारी ओर फेरो । हमारा दारिद्र दूर हो और हम अत्यन्त धन प्राप्त करें ।।१।। अङ्गिराओं द्वारा गाई गई स्तुतियों से हमारी रक्षा के लिये देवगण आवें । वसुओं के साथ इन्द्र, वायुओं के साथ मरुद्गण और आदित्यों के साथ अदिति हमको आश्रय प्रदान करें ।। २ ।। इन्द्र, वरुण, अग्नि, अर्यमा और सूर्य हमारे लिये सुख धारण कराने वाले हों । मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र पृथिवी और आकाश हमारी प्रार्थना को अनुमोदित करें ।।३।।   (२४)

१०८ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः । देवता—इन्द्राग्नी । छन्द—त्रिष्टुप्) पंक्ति

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ।।१।
यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम् ।
तावाँ अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ।२।
चक्राथे हि सध्र्यङ्नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।३।
समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।४।
यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ।५।२६

हे इन्द्र-अग्ने ! तुम दोनों का अद्भुत रथ सब संसार को देखता है, उस पर चढ़कर यहाँ आओ और निष्पन्न सोम का पान करो ।। १ ।। हे इन्द्र-अग्ने ! जितना गम्भीर और विस्तृत यह संसार है उतना विस्तृत होता हुआ सोम तुम्हारे लिये पर्याप्त हो ।। २ ।। हे वृत्रहन्ता इन्द्र अग्ने ! तुम

रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अहसो निष्पिपर्त्तन ।६।
देवैर्नो देवयदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
त नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति. सिन्धु. पृथिवी उत द्यौ ।७।२४

इन्द्र, मित्र, वरुण अग्नि, मरुद्गण और अदिति का रक्षार्थ आह्वान करते है । हे कल्याणकारी वसुओ ! रथ को सकीर्ण मार्ग से निकलने के समान सब पापो से निकालकर हमारी रक्षा करो ॥ १ ॥ हे आदित्यो ! तुम हमारी कामनापूर्ति के लिये आओ । युद्धो मे दुख न दो । रथ को सकीर्ण मार्गो से निकालने के समान हमको पापो से निकालो ॥२॥ उत्तम यश वाले पितर और यज्ञ को बढ़ाने वाली देवमाताएँ हमारी रक्षक हो । हे वसुओ ! रथ को निकालने के समान पापो से निकालकर रक्षा करो ॥३॥ मनुष्यो द्वारा स्तुत्य बलवान् अग्नि को पूजते हुए हम वीरो के स्वामी पूषा की स्तुति करते हैं । हे कल्याणकारी वसुदेवो ! रथ को निकालने के समान हमको पापो से निकालो ॥ ४ ॥ हे वृहस्पति ! हमको सुख दो । तुम मनुष्यो के रोग और भयो का निवारण करते हो । हम वही चाहते है । हे वसुदेवो ! रथ को संकीर्ण पथ से निकालने के समान पापो से हमको निकालो ॥५॥ कुएँ मे गिरे कुत्स ऋषि ने वृत्र हन्ता को पुकारा । हे कल्याणकारी वसुदेवो ! हमको पापो से उबारो ॥ ६ ॥ देवताओ सहित अदिति हमारी रक्षा करें । रक्षा-साधनो से युक्त देवगण आलस्य छोड़कर हमे बचावें । मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुमोदित करें । ७॥ (२४)

१०७ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः । देवता—विश्वेदेवा । छन्द-त्रिष्टुप्)

यज्ञो देवाना प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्त ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ।१।
उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभि स्तूयमाना ।
इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भिरादित्यैर्नो अदिति ...

तन्न इन्द्रस्तद्वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत्सविता चनो धात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।।३।।२५

हमारे यज्ञ को देवगण स्वीकार करें। हे आदित्यो ! हम पर अनुग्रह करो। तुम कल्याणकारी मनको हमारी ओर फेरो। हमारे दरिद्र दूर हों और हम अत्यन्त धन प्राप्त करें ।।१।। अङ्गिराओं द्वारा गाई गई स्तुतियों से हमारी रक्षा के लिए देवगण आवें। वसुओं के साथ इन्द्र, वायुओं के साथ मरुद्गण और आदित्यों के साथ अदिति हमको आश्रय प्रदान करें ।। २ ।। इन्द्र, वरुण, अग्नि, अर्यमा और सूर्य हमारे लिए सुख धारण कराने वाले हों। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र पृथिवी और आकाश हमारी प्रार्थना को अनुमोदित करें ।।३।। (२४)

१०८ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः । देवता—इन्द्राग्नी । छन्द-त्रिष्टुप्) पंक्ति
य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ।।१।।
यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम् ।
तावाँ अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ।।२।।
चक्राथे हि सध्र्यङ्नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।।३।।
समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।।४।।
यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ।।५।।२६

हे इन्द्र-अग्ने ! तुम दोनों का अद्भुत रथ सब संसार को देखता है, उस पर चढ़कर यहाँ आओ और निष्पन्न सोम का पान करो ।। १ ।। हे इन्द्र-अग्ने ! जितना गम्भीर और विस्तृत यह संसार है, उतना विशाल होता हुआ ... तुम्हारे लिये पर्याप्त हो ।। २ ।। हे ... इन्द्र अग्ने ! तुम

दोनों इन्द्र मत्सर इकट्ठे बैठकर सोम का पान करें ॥ ३ ॥ हे इन्द्र अग्ने ! अग्नि के प्रदीप्त होने पर हमने हवियों को घृतयुक्त किया तथा कुश को बिछाया है। हम स्रुच लिये खड़े हैं। तुम दोनों आकर सोम से तृप्त होओ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र अग्ने ! तुमने विविध वीर कर्मों को किया तथा वीर वेशों को धारण किया। तुम्हारी मित्रताऐं कल्याण करने वाली हैं। तुम उन मित्र भावों सहित आकर सोम पीओ ॥५॥ (२६)

यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो यं सोमो असुरैर्नो विहव्यः ।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिवत सुतस्य ॥६
यदिन्द्राग्नी मदथ. स्वे दुरोणे यद् ब्रह्माणि राजनि वा यजत्रा ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवत सुतस्य ॥७
यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद्द्रुह्यु ष्वनुषु पूरुषु स्थ. ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवत सुतस्य ॥८
यादिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यापरमस्यामुत स्थ. ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवत सुतस्य ॥९
यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥१०
यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत्पृथिव्यां यत्पर्वते ष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥११
यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥१२
एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं स जयतं धनानि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धु पृथिवी उत द्यौः ॥१३॥२७

हे इन्द्र अग्नि ! मेरा संकल्प था कि मैं तुम दोनों को वरण कर सोम से तृप्त करूँगा। तुम मेरी हार्दिक श्रद्धा पर ध्यान देकर पधारो। [illegible] सोम का पान करो ॥ ६ ॥ हे पूज्य इन्द्र अग्ने ! तुम जिस यजमान [illegible] हो रहे हो, वहां से मेरे [illegible] आकर सोम-पान करो ॥ ७ ॥ [illegible]

युक्त इन्द्र-अग्ने ! तुम 'यदुओं,' 'तुर्वशों', 'द्रुह्युओं' और 'पुरुओं' में रहते हो, वहाँ से आकर सोम पीयो ।।८।। हे यौवनवान् इन्द्राग्ने ! तुम यदि निम्न पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश में विद्यमान हो तो मेरे पास आकर सोम पीओ ।।९।। हे इन्द्राग्ने ! यदि तुम उच्च पृथिव्यादि लोकों में हो तो भी वहाँ आकर सोम को पीओ ।।१०।। हे इन्द्राग्ने ! तुम यदि आकाश-पृथिवी, पर्वत, ओषधि, जल आदि में जहाँ कहीं हो वहीं से मेरे पास आकर सोम सेवन करो ।।११।। हे इन्द्राग्ने ! यदि तुम आकाश के मध्य में सूर्य के चढ़ने पर स्वेच्छा-पूर्वक विश्राम कर रहे हो, तो भी यहाँ आकर इस सोम का पान करो ।। १२ ।। हे इन्द्राग्ने ! इस निष्पन्न सोम को पीकर सभी धनों को जीतो । मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी प्रार्थना का अनुमोदन करें ।।१३।। (२७)

१०९ सूक्त

(ऋषि कुत्स आङ्गिरस । देवता इन्द्राग्नी । छन्द-त्रिष्टुप्)

वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।
नान्या युवत्प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ।।१।।
अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ।।२।।
मा च्छेद्म रश्मीँरिति नाधमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ।।३।।
युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ।।४।।
युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन्प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ।।५।।२८

हे इन्द्राग्ने ! अपनी भलाई के निमित्त मैंने अपने बान्धवों की ओर भी देख लिया, परन्तु तुम्हारे समान कृपा करने वाला अन्य नहीं मिला, मैंने तुम्हारे चाहने वाले स्तोत्र को रचना की ।। १ ।। हे इन्द्राग्ने ! तुम अयोग्य

जामाता तथा साले से भी अधिक धन दान करने वाले हो। मैं तुम्हें करता हुआ स्तोत्र रचता हूँ ॥ २ ॥ 'सन्तान की सही न काटें' इस प्रार्थना करते हुए पितरों के अनुकरण में वीर्यवान् इन्द्र और अग्नि के द्वारा प्रसन्नता को यह सोम कूटने के पाषाण मर्म वर पड़े हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम्हारी कामना के लिये ही यह सोम कूटा जा रहा है। हे सुन्दर कल्याण करने वाले अश्विद्वयों ! शीघ्र आओ। सोम को मीठे जलों से युक्त करो ॥४॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम धन बाटने और शत्रु का नाश करने मे अत्यन्त बलवान् हो। इस यज्ञ मे कुश पर बैठ कर निष्पन्न सोम से आनन्द प्राप्त करो ॥५॥

प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥६
आ भरतं शिक्षत वज्रबाहू अस्मां इन्द्राग्नी अवत शचीभिः।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभि सपित्वं पितरो न आसन् ॥७
पुरंदरा शिक्षत वज्रहस्तास्मां इन्द्राग्नी अवतं भरेषु।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति. सिन्धु पृथिवी उत द्यौ ॥८॥२६

हे इन्द्राग्ने ! तुम मनुष्यों से बढ़कर युद्ध मे ताड़ना करते हो। पृथिवी और आकाश से भी महान् हो। तुम पर्वतों, समुद्रों तथा अन्य लोकों से भी बढ़ कर हो ॥६॥ हे वज्रिन्, हे अग्ने ! तुम दोनों धनों को लाकर हमे दो। अपने बलों से हमारी रक्षा करो। यह वही सूर्य किरणें हैं जो हमारे पितरों को भी प्राप्य थीं ॥ ७ ॥ हे दुर्गभञ्जक इन्द्राग्ने ! हमें इच्छित फल दो। युद्धों मे रक्षा करो। मित्र, वरुण अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी प्रार्थना को अनुमोदित करें ॥१८॥ (२६)

११० सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरस. । देवता—ऋभुगण । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

ततं मे अपस्तदु तायते पुन स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥१॥
आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापय.

सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ।२।
तत्सविता वोऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ।३।
विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ।४।
क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमाना ।५।३०

हे ऋभुओ ! जो पूजन कर्म मैंने पहले किया था, यह अब फिर करता हूँ। तुम्हारे निमित्त स्तोत्र उच्चारण करता हूँ। यह समुद्र-सा विशाल गुण वाला सोम सब देवताओं के लिए है। स्वाहायुक्त होम होने पर तुम इससे अत्यन्त तृप्त होओ ॥१॥ हे सुधन्वा-पुत्रो ! जब तुम सोम की इच्छा से विचरे तब तुम अपने महत्व से सूर्य के घर में जा पहुँचे ॥ २ ॥ हे ऋभुगण ! सूर्य ने तुमको अमरत्व प्रदान किया क्योंकि तुमने उस प्रकाशमान पर अपनी इच्छा व्यक्त की और त्वष्टा के सोम भक्षण करने वाले चमस को चार भागों में बाँट दिया ॥३॥ मरणधर्मी ऋभुओं ने अपने निरन्तर कर्मों द्वारा अमरत्व पाया। वे सूर्य के समान तेजस्वी हुए, वर्ष भर में ही यज्ञ-कर्म में संयुक्त हुए ॥ ४ ॥ निकटस्थों से स्तुति किए गए ऋभुओं ने उत्तम पद माँगते हुए देवत्व की कामना की। बाँस से खेत को नापने के समान चौड़े मुख के पात्र को उन्होंने नापा ॥५॥ (३०)

आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचेव घृतं जुहवाम विद्मना ।
तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन्दिवो रजः ।६।
ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ।७।
निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ।८।
वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥

मन्त्र द्वारा पूत करने से ऋभुओं के प्रति ज्ञान द्वारा पूर्ति करें। उन ऋभुओं ने पिता के कर्मों का अनुसरण कर आकाश में स्थान पाया ॥६॥ ऋभु अपने बल से इन्द्र के समान हुये। वे वर्षों द्वारा वाले हैं। हे देवगण! हम तुम्हारी रक्षा में रहकर मनचाहे दिनों में द्रोहियों की सेनाओं को पराजित करें ॥ ७ ॥ हे ऋभुओं! तुमने गौ बनाई। माता से बछड़े का योग किया, उत्तम कर्मों की इच्छा से पिता को युवावस्था दी ॥ ८ ॥ हे इन्द्र! ऋभुओं सहित तुम युद्धों में शक्तियों से हमारी रक्षा करना और अद्‌भुत धनों को प्रकट करना। मित्र, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी प्रार्थना को अनुमोदित करें॥

१११ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः। देवता-ऋभवः। छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

तक्षन्रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन्हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू।
तक्षन्पितृभ्यामृभवो युवद्वयस्तक्षन्वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥१॥
आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम्।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥२॥
आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥३॥
ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय ऋभून्वाजान्मरुतः सोमपीतये।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥४॥
ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५॥१२

ज्ञान द्वारा कर्मों में नियुक्त ऋभुओं ने उत्तम रथ की रचना की। इन्द्र के इस घूमने वाले रथ के लिये घोड़े बनाये। माता पिता के लिये युवावस्था को प्रेरित किया और बछड़े के साथ रहने वाली माता को रचा ॥ १ ॥

हे ऋभुओ ! यज्ञ-कर्मों के निमित्त हमको स्वास्थ्य प्रदान करो । कर्म करने के लिए शक्ति चाहिए, अतः श्रेष्ठ प्रजायुक्त अन्न की रचना करो । हे उत्तम बल धारण करने वालो ! हम वीर सन्तान के लिए विद्यमान हों ॥२॥ हे ऋभुओ ! हमारे लिए, हमारे रथ के लिए और हमारे घोड़े के लिए अन्न, धन आदि प्राप्त कराओ । हमको विजय दिलाने वाले और शत्रुओं को दबाने वाले रक्षा-साधनों की वृद्धि करो ॥ ३ ॥ अपनी रक्षा तथा सोम-पान के निमित्त इन्द्र, ऋभुगण, वाज मरुद्गण, मित्र, वरुण, अश्विनीकुमारों का मैं आह्वान करता हूँ । वे धन प्राप्ति, उत्तम बुद्धि और जय-लाभ के लिए हमें प्रेरित करें ॥ ४ ॥ युद्ध के लिए ऋभुगण हमको धन दें । युद्धों को जीतने वाले वाज हमारे रक्षक हों । मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुमोदित करें ॥५॥ (३२)

(ऋभुगण पहले मनुष्य थे । अंगिरा-वंश में सुधन्वा के ऋभु, विभु और वाज नामक तीन पुत्र थे, वे अपने महान् कर्मों द्वारा देवता हो गये ।)

११२ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरस । देवता—आदिमे मन्त्रे प्रथमपादस्य द्यावापृथिव्यौ, द्वितीयस्य अग्निः, शिष्टस्य सूक्तस्याश्विनौ । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्,

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१॥
युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२॥
युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥३॥
याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥४॥

याभी रेभ निवृतं सितमद्भ्य उद्वन्दनमैरयत स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना
गतम् ।५।३३

मैं चैतन्यता के निमित्त आकाश-पृथिवी की स्तुति करता हूँ। हे अश्विनीकुमारो के शीघ्र आगमन के लिये श्रेष्ठ कान्तियुक्त अग्नि का स्तवन करता हूं। हे अश्विओ ! जिन सुन्दर रक्षा साधनो से सग्राम मे धन जीतकर देते हो, उनके साथ यहाँ आओ ॥१॥ हे अश्विनीकुमारो ! जैसे कर्मों मे सम्पति के लिये विद्वानों के चारों ओर खड़े रहते हैं वैसे ही तुम्हारे रथ के चारो ओर खड़े होकर स्तोतागण गान योग्य स्तोत्रों सहित स्थित होते हैं। जिन रक्षा-साधनों को अभीष्ट सिद्धि के लिये प्रेरित करते हो, उनके सहित यहाँ आओ ॥२॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम आकाशस्थ अमृत के बल से प्रजाओ पर शासन करने मे समर्थ हो। जिस उपाय से तुमने वन्ध्या गौओ को दूध से परिपूर्ण किया, उसके साथ आओ ॥३॥ हे अश्वियो ! जिन उपायो से द्विमातृक अग्नि पुत्र रूप यजमान के बल से उत्पन्न होकर तेज से सुशोभित होते हैं तथा जिन उपायो से "कक्षीवान्" तीन यज्ञों के ज्ञाता विद्वान् हुये, उन उपायों सहित आओ ॥४॥ हे अश्विदेवो ! जिन उपायो से कुँए मे पड़े हुये बन्धनयुक्त 'रेभ' ऋषि को जल से बाहर प्रकट मे निकाला और इसी प्रकार "वन्दन" ऋषि को बचाया तथा जिन उपायों से 'कण्व' ऋषि की रक्षा की, उनके साथ यहाँ पधारो ॥५॥ (३३)

याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।६।
याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।७।
याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।८।
याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।

याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।९।
याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना
गतम् ।।१०।३४

हे अश्विदेवो ! जिन साधनो से कूप मे डालकर हिंसा किये जाते 'अन्तक' ऋषि को बचाया, समुद्र मे पड़े "भुज्यु' की रक्षा की, 'कर्कन्धु' और 'वय्य' की रक्षा की, उन साधनो सहित आओ ॥ ६ ॥ हे अश्विदेवो ! जिन साधनो से 'शुचन्ति' को उत्तम धन और निवास दिया 'अत्रि' को दग्ध करने वाली अग्नि के ताप से बचाया, 'पृश्निगु' और 'पुरुकुत्स' की रक्षा की, उनके सहित आओ ॥७॥ हे अश्विदेवो ! जिन बलो से अन्धे लूले 'परावृज' को नेत्र और पाँव दिये, जिन साधनो से भेड़िया द्वारा ग्रसित 'वर्तिका' की रक्षा की उनके सहित यहाँ आओ ॥ ८ ॥ हे अजर अश्विदेवो ! जिन साधनो से आपने मधुमयी नदी को प्रवाहित किया, जिन साधनो से 'वशिष्ठ' 'कुत्स' और 'श्रुतर्य' की रक्षा की, उनके साथ आओ ॥ ९ ॥ हे अश्विद्वय ! जिन साधनो से धन की इच्छुक और पंगु 'विश्पला' को असंख्य धन वाले युद्ध मे जाने की शक्ति दी। साधनो से स्तुति करते हुये अश्वराज' के पुत्र वश' ऋषि की रक्षा की, उनके साथ आओ ॥१० ॥ (३४)

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।११।
याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे ।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।१२।
याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।१३।
याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम् ।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।१४।
याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः ।

याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।१५।३

हे कल्याणकारी अश्विद्वय ! जिन साधनों से वणिक् (वैश्य) 'उशि के पुत्र 'दीर्घश्रवा' के लिये वर्षा की तथा जिनसे स्तोता 'कक्षीवान्' की र की, उनके साथ आओ ॥ ११ ॥ हे अश्विद्वय ! जिन साधनों से नदी तटों तुमने जलपूर्ण किया, जिन साधनों से बिना अश्व के रथ को विजय के लि चलाया तथा जिन साधनों से 'त्रिशोक' ने गौओं को हाँकने की प्रेरणा पायी उ के साथ आओ ।।१२।। हे अश्विद्वय ! जिन साधनों से दूरवर्ती सूर्य को प्राप्त हो हो । जिन उपायों से 'मान्धाता' की क्षेत्रपति के कार्य में रक्षा की और 'भर द्वाज' ऋषि को जिन उपायों से बचाया उनके साथ आओ ।।१३।। जिन साधने से तुमने अतिथि प्रेमी 'दिवोदास' की 'शम्बर' के साथ युद्ध करते हुये रक्षा क तथा 'त्रसदस्यु' को संग्राम में बचाया, उन साधनों सहित आओ ।। १४ ।। हे अश्विदेवो ! जिन साधनों से 'वम्र' ऋषि की, 'उपस्तुत' की, स्त्री पाने पर 'कलि' ऋषि की रक्षा की तथा जिन साधनों से 'व्यश्व' और 'पृथि' को बचाया, उनके साथ आओ ।।१५।। (३५)

याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः ।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।१६

याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना ।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।१७

याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।१८।

याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।१९।

याभिः शंताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् ।
ओम्यावती सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।२०।३६

हे अश्विनीकुमारो ! 'वशु' 'अत्रि' और 'मनु' के लिये जिन साधनों से मार्ग दिखाया तथा 'स्यूमरश्मि' की रक्षा के लिये उनके शत्रु पर बाण चलाया, उन साधनों सहित आओ ॥१६॥ हे अश्विद्वय ! जिन शक्ति साधन से तेज समूह युक्त अग्नि के समान 'पठर्वा' को युद्ध में प्रकाशित किया तथा 'शर्यात' की युद्ध में रक्षा की, उसके सहित आओ ॥ १७ ॥ हे अङ्गिराओ ! हे अश्विद्वय ! जिन रक्षा साधनों से तुम हर्षित रहते हो, जिनमें 'पणि' द्वारा अपहृत गौओं के स्थान में सब देवों में आगे गये, जिनसे 'मनु' को अन्न से पूर्ण किया, उनके साथ यहाँ आओ ॥ १८ ॥ हे अश्विनी कुमारो ! जिन साधनों से तुमने 'विमद' को पत्नी युक्त किया मनुष्यों के लिए अरुण उपायें प्रेरित की 'सुदास' को दिव्य धन दिया, उनके साथ आओ ॥१९॥ हे अश्विद्वय ! जिन साधनों से तुम हविदाता को सुख प्रदान करते हो, यज्ञ की रक्षा करते हो, जिनसे 'अध्रिगु', वेदवाणी और ऋतु के पूजन की रक्षा करते हो उनके साथ यहाँ आओ ॥२०॥ (३६)

याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।
मधु प्रियं भरथो यत्सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।२१।

याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।२२।

याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।
याभिर्ध्वसन्तिमावत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।२३।

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ।२४।

द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।२५।३७

हे अश्विद्वय ! जिन साधनों से युद्ध में 'कृशानु' को बचाया, जिनसे युवा "पुरुकुत्स" के अश्व को वेग से चलाया, जिन साधनों से मधुमक्खियों को

यह ज्योतियो मे श्रेष्ट ज्योति प्रकट हुई। अद्भुत प्रकाश सर्वत्र फैल गया। रात्रि ने जैसे सूर्य मे जन्म लिया था, वैसे ही उषा के लिये अपना स्थान दे दिया ।१॥ श्वेतवर्ण के बछड़े के समान चमकती हुई उषा आ गई। रात्रि ने इसके लिये स्थान छोड़ दिया। ये दोनो परस्पर बँधी हुई अमर आकाश मे क्रम पूर्वक गति करती हुई एक दूसरे के वर्ण को मिटा देती है ॥२॥ इन दोनों बहनों का मार्ग एक ही है, उस पर देवताओ की प्रेरणा से यह बारम्बार यात्रा करती हैं। एक मन वाले यह उषा और रात्रि विभिन्न वर्ण की हैं और परस्पर टकराती नहीं हैं ॥३॥ स्तुतियो से प्राप्त कांतिमती उषा आई। उसने हमारे लिये धर्मक्षेत्र का द्वार खोल दिया। ससार को कार्यो मे प्रेरित कर धनो को प्रकट किया। उसने सब भुवनो को प्रकाश से पूर्ण कर दिया ॥४॥ सिकुड कर सोते हुये को यह धनेश्वरी उषा चैतन्य करती है। वह भोग, पूजा, धन, दृष्टि, आरोग्य की प्रेरणा देती हुई हुई सब भुवनो को प्रकाश मे भर देती है ॥५॥ (१)

क्षत्राय त्व श्रवसे त्व महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।
विसदृशा जीविताभि प्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ।६।
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवति शुक्रवासा ।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ।७।
परायतीनामन्वेति पाथ आयतीना प्रथमा शश्वतीनाम् ।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृत क चन बोधयन्ती ।८।
उषो यदग्नि समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य ।
यन्मानुषान्यक्ष्यमाणा अजीगस्तद्देवेषु चकृषे भद्रमप्न. ।६।
कियात्या यत्समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नून व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरति ।१०।२

राज्य, यश, यज्ञ, अपेक्षित कार्य और आजीविका की ओर मनुष्यो को प्रेरित करने वाली उषा ने सब भुवनो पर अधिकार कर लिया ॥ ६ ॥ यह उज्ज्वलवसना युवती सभी पार्थिव धनों की स्वामिनी है। वह आकाश की पुत्री

मधु दिया. उनके साथ आओ ॥ २१ ॥ हे अश्विद्वय ! जिन साधनो से गवादि धन के लिये युद्ध मे मनुष्यो की रक्षा करते हो, जिनमे रथ और घोडो की रक्षा करते हो, उनके साथ आओ ॥ २२ ॥ हे महावली अश्विद्वय ! जिन रक्षा साधनो से अर्जुनि पुत्र 'कुत्स', 'तुर्वीति', 'दभीति' 'ध्वसन्ति' और 'पुरपन्ति' की तुमने रक्षा की, उन साधनो सहित आओ ॥ २३ ॥ हे अश्विदेवो ! हमारे वचन और वृद्धि को कर्म मे युक्त करो। मै, निष्कपट कर्मो मे रक्षा के निमित्त तुम्हारा आह्वान करता हूँ। युद्ध मे हम हमारी वृद्धि करो ॥२४॥ हे अश्विदेवो! दिन और रात मे भी विनाश रहित सौभाग्यो द्वारा हमारी सब ओर से रक्षा करो। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुमोदित करें। (त्वष्टा की कन्या सरण्यू ने अश्व का रूप धारण कर अश्विद्वय को जन्म दिया। यह आधि-व्याधि के देवता माने गये हैं) ॥५॥　　(३७)

॥ सप्तम् अध्याय समाप्तम् ॥

११३ सूक्त

(ऋषि—कुत्स, आङ्गिरस। देवता-उषा, द्वितीयस्यार्द्धचंस्य रात्रिरपि। छन्द- त्रिष्टुप् पंक्ति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक ।१।
रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागाद रैगु कृष्णा सदनान्यस्याः।
समानवन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत अमिनाने ।२।
समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ।३।
भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ।४।
जिह्मश्ये चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उ त्वं।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ।५।

सौभाग्य से खिल उठती है। वह आज यहाँ खिले ॥ ७ ॥ नित्य आने वाली उषाओं में यह उषा विगत उषाओं के मार्ग पर चलती है। यह जीवित को प्रेरणा देने वाली उषा मृतवत् को भी चैतन्यता प्रदान करती है ॥८॥ हे उषे! तुमने हवि-दान के लिए अग्नि प्रदीप्त की और सूर्य के प्रकाश से अन्धकार को मिटाया। यज्ञ मे लगे मनुष्यों के लिए प्रकाश दिया। तुम्हारा यह कार्य देवगण के लिए भी हितकर है ॥९॥ जो उषायें खिलीं और जो अब खिलेंगी, यह निकटस्थ उषा कितनी देर ठहरेगी, जो बीती हुई उषाओं का इतना सोच करती तथा आगे आने वालियों का हर्ष करती है ॥१०॥ ।२)

ई युष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥११॥
यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥१२॥
शश्वत्पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः ॥१३॥
व्यञ्जिभिर्दिव आतास्वद्योदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥१४॥
आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥१५॥

जिन्होंने पुरानी उषाओं को खिलते हुए देखा, वे मरकर चले गये। हम देखते हैं और आगे आने वाली उषाओं को वे देखेंगे जो आगे आवेंगे ॥११॥ हे उषे! सत्य को प्रकाशित करने वाली, नियमों में अटल, स्तुतियों की प्रेरक, देवताओं के लिए हवि धारक सर्वश्रेष्ठ तू आज यहाँ प्रकट हो ॥१२॥ प्राचीन काल मे धन युक्त उषा प्रकट होती थी। आज इस उषा ने अन्धकार को पराजित किया है। भविष्य मे भी तू खिलेगी। अजर, अमर यह उषा अपनी इच्छा से विचरती है ॥ १३ ॥ उषा अपने तेज से आकाश में चमक उठी। उसने काले अन्धकार को दूर कर दिया। जीवों को चैतन्य करती हुई वह अरुण अश्वों वाले

११४ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरस. देवता–रुद्रः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।
यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ।१।
मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ।२।
अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः ।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ।३।
त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ।४।
दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि शर्म वर्म छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ।५।

महान्, वीरों के स्वामी, जटिल रुद्र के निमित्त स्तुतियाँ करते हैं। दुपाये चौपाये सुखी हों। इस ग्राम के वासी सभी प्राणी निरोग रहते हुए पुष्ट हों।१। हे रुद्र! दया करो, सुख दो। तुम वीरों के स्वामी को हम नमस्कार करें। [illegible] शान्ति को यज्ञ द्वारा मनु ने पाया था उसे हम तुमसे प्राप्त करें।२। [illegible] हम तुम्हारे उपासक देवार्चन द्वारा तुम वीरों के स्वामी की दयाबुद्धि पावें। [illegible] हमारी संतति को सुख दो। दुःखित वीरों से युक्त हम तुमको हवि भेंट करें।३। दीप्ति, यज्ञ सिद्ध करने वाले, तिरछी गति वाले मेधावी रुद्र का रक्षा के निमित्त हम आह्वान करते हैं। वे देवताओं के क्रोध का निवारण करें। हम उनकी [illegible] चाहते हैं।४। हम आकाश के [illegible] [illegible] [illegible] तथा महान् तेजस्वी रुद्र का नमस्कार पूर्वक आह्वान करते हैं। वे [illegible] [illegible] विधी को हाथ में धारण कर हमको सुखी करें [illegible] निर्भय बनावें।५।

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ।६।

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ।७।
मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ।८।
उप ते स्तोमान्पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे ।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे ।९।
आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ।।१०।
अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।।११।६

मरुद्गणों के जनक रुद्र के निमित्त यह मधुर स्तोत्र हम उच्चारण करते हैं। हे अविनाशी रुद्र ! हमको सेवनीय पदार्थ प्रदान करो। हम पर और हमारी सन्तति पर दया करो।६। हे रुद्र ! हमारे वृद्ध, बालक, वृद्धि को प्राप्त हो, पुत्र युवावस्था वालों को न मारो। हमारे शरीरों को सन्ताप न दो।।७।। हे इन्द्र ! हमारे पुत्र आदि सन्तान, भृत्यादि, गौओं और अश्वों को मत मारो। तुम हमारे वीरों के नाश के लिये क्रोध न करो। हम सदैव हवि देते हुए तुम्हारा आह्वान करते हैं।।८।। हे मरुतों के पिता रुद्र ! पशु रक्षक अपने पशुओं को स्वामी को भेंट करता है, वैसे ही मैंने तुम्हारे लिये स्तोत्र भेंट किये हैं। तुम हमको सुख दो। तुम्हारी बुद्धि कल्याण करने वाली है। हम तुम से रक्षा की याचना करते हैं ।। ९ ।। हे वीरों के स्वामी रुद्र ! तुम्हारा पशुओं और मनुष्यों को मारने वाला अस्त्र दूर पहुँचे। हम पर तुम्हारी कृपा रहे। तुम हम पर दया करो और हमारा पक्ष लेते हुए आश्रय प्रदान करो।।१०।। रक्षा की कामना से 'रुद्र को नमस्कार हो' ऐसा वचन हमने उच्चारण किया है। वे रुद्र मरुद्गण सहित हमारे आह्वान को सुनें। मित्र, वरुण अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुम-

को हटाते हैं, तब रात्रि अपना काला वस्त्र फैलाती है ॥ ४ ॥ मित्र और वरुण के देखने को सूर्य आकाश की गोद में उस प्रसिद्ध रूप को प्रकट करते हैं। इसके सुनहरी अश्व अपने प्रकाशयुक्त बल को प्रत्यक्ष कर दूसरी ओर अन्धकार कर देते हैं ॥ ५ ॥ हे देवगण ! आज सूर्योदय होने पर हमको पाप कर्मों तथा निन्दा से बचाओ। मित्र, वरुण, अदिति समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुमोदित करें ॥ ६ ॥ (सूर्य अदिति पुत्र होने से आदित्य कहे गये हैं। कर्म काल और परिस्थिति के अनुसार सूर्य के अनेक नाम रखे गये हैं।) (७)

११६ सूक्त [सत्रहवां अनुवाक]

(ऋषि—कक्षीवान्। देवता—अश्विनौ। छन्द - त्रिष्टुप् पंक्ति)

नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः ।
यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥१॥
वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥२॥
तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः ।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥३॥
तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ॥४॥
अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥५॥८

सत्य रूप अश्विद्वय के लिये स्तोत्र तैयार करता हूं ऐसी प्रेरणा करता हूं जैसे वायु जलों को प्रेरित करता है। अश्विनीकुमारों ने 'विमद' की स्त्री को, सैन्य प्रेरणा द्वारा 'विमद' के यहां पहुँचा दिया ॥ १ ॥ हे असत्य रहित अश्विद्वय ! तुम बलपूर्वक उड़ने वाले, गतिवान् घोड़ों से उत्साहित हुए थे। यम के प्रिय उस युद्ध प्रतियोगिता में तुम्हारे वाहन ने सहस्रों पर विजय प्राप्त की ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! 'तुग्र' ने 'भुज्यु' को समुद्र में उसी प्रकार

बन्धुओं द्वारा परित्यक्त ऋषि की आयु को बढ़ाकर कन्याओं का पति बना दिया ॥१०॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　(६)

तद्वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम् ।
यद्विद्वांसा निधिमिवापगूळ्हमुद्दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥११॥
तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् ।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥१२॥
अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरन्धिः ।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥१३॥
आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम् ।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥१४॥
चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥१५॥१०

हे मिथ्यात्वहीन अश्विदेव ! कामना के योग्य तुम्हारा रक्षण सामर्थ्य पूजनीय तथा प्रशंसनीय है । तुमने छिपे हुए कोष के समान 'वन्दन' को कुँए से निकला ॥ ११ ॥ हे वीरो ! मेघ के गर्जन वर्षा को प्रकट करता है, वैसे ही मैं तुम्हारे उग्र कर्म को प्रकट करता हूँ । तुम्हारे लिए 'अथर्वा' के पुत्र 'दध्यङ्' ने अश्व के सिर से मधु-विद्या सिखाई ॥ १२ ॥ बहुतों के पालनकर्ता, असत्य-रहित अश्विद्वय ! तुम्हें वध्रिमती ने आहूत किया । तुमने प्रसन्न होकर हिरण्यहस्त नामक पुत्र उसे दिया ॥ १३ ॥ हे मिथ्यात्व रहित अश्विदेवो ! तुमने 'बटेरी' को भेड़िये के मुख से निकाला और रोते हुए 'कण्व' को देखने की शक्ति दी ॥ १४ ॥ राजा 'खेल' की पत्नी का पैर युद्ध में कट गया । तुमने उसके चलने के लिये लोहे की जांघ बना दी ॥१५॥　　　　　　　　(१०)

शतं मेषान्वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥१६॥
आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥१७॥

यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिशुमारश्च युक्ता ।१८।
रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायु सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।
आ जह्नावी समनसोप वाजैस्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ।१९।
परिविष्टं जाहुषं विश्वत सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वतां अजरयू अयातम् ।२०।११

हे मिथ्यात्व रहित विकराल रूप वाले भिषको ! वृकी को सौ मेष काट कर देने का दण्ड स्वरूप 'ऋजाश्व' को उसके पिता ने अन्धा कर दिया था। उसके लिये तुमने उत्तम ज्योति वाले नेत्र दिये ।।१६।। हे अश्विद्वय ! सूर्य पुत्री तुम्हारे द्वारा विजित हुई, तुम्हारे रथ पर चढ गई । उस समय तुम्हारे अश्व तेजी से दौड़कर सबसे पहले काष्ठ खण्ड (घुडदौड मे विजय के लिये चिह्न स्वरूप) के समीप पहुचे । तब देवगण ने तुम्हारे कार्य का हार्दिक अनुमोदन किया ।। १७ ।। हे अश्विद्वय ! जब तुम 'दिवोदास' और 'भरद्वाज' के लिए चले तब तुम्हारा रथ ऐश्वर्य से पूर्ण था । उस रथ मे बैल और ग्राह जुते थे ।। १८ ।। हे असत्य रहित अश्विनीकुमारो ! हवि रूप अन्न के तीन भाग देने वाले 'जह्नु' की सन्तान को तुमने सुन्दर राज्ययुक्त ऐश्वर्य और पुरुषार्थयुक्त आयु को प्रदान किया ।।१९।। मिथ्यात्व रहित अजर अश्विदेवो ! तुम शत्रु से घिरे जाहुष को रातों रात सुगम्य मार्ग से ले चले और अपने रथ से पर्वतो को चीरकर निकल गये ।।२०।।   (११)

एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ।२१।
शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ।२२।
अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।२३।
दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः ।

विप्रुत रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथु सोममिव स्रुवेण ।२४।
प्र वा दसास्यश्विनाववोचमस्य पति. स्या सुगव सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाण जगम्याम् ।२५।१२

हे अश्विदेवो ! इन्द्र सहित तुमने एक दिन मे हजारो सुन्दर धनो को पाने के लिये 'वश' ऋषि को सहायता दी और पृथुश्रवा' के शत्रुओ को नष्ट किया ।।२१।। हे अश्विद्वय ! तुमने 'ऋचत्क' के पुत्र 'शर' की प्यास मिटाने को गहरे कुँए के जल को ऊँचा किया और परिश्रान्त 'शयु' के निमित्त बन्ध्या गाय को दूध से पूर्ण कर दिया ।।२२।। हे अश्विदेवो ! तुम्हारी रक्षा चाहने वाले कृष्ण ऋषि के पुत्र विश्वक को तुमने शत्रु के समान खोए हुए पुत्र विष्णापु से मिला दिया ।।२३।। हे अश्विदेवो ! स्रुव के सोम निकालने के समान दस रात और नौ दिन तक जल मे पाशो से बँधे हुए आहृत 'रेभ' ऋषि को तुमने बाहर निकाला ।।२४।। हे अश्विदेवो ! मैने तुम्हारा यश गान किया है, मैं सुन्दर गौओ और वीरो से युक्त होकर राष्ट्र का स्वामी बनूँ । नेत्रो से स्पष्ट देखता हुआ, दीर्घायु प्राप्त कर वृद्धावस्था मे प्रवेश करूँ ।।२५।।   (१२)

११७ सूक्त

(ऋषि—कक्षीवान् । देवता—अश्विनौ । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

मध्व सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यात नासत्योप वाजै ।।१।।
यो वामश्विना मनसो जवीयान्रथ स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथ. सुकृतो दुरोण तेन नरा वर्तिरस्मभ्य यातम् ।।२।।
ऋषिं नराव्हस. पाञ्चजन्यमृबीसादत्रि मुञ्चथो गणेन ।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्व वृषणा चोदयन्ता ।।३।।
अश्व न गूळहमश्विना दुरेवैर्ऋषि नरा वृषणा रेभमप्सु ।
स त रिणीथो विप्रुत दंसोभिर्न वा जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ।।४।।

हे अश्विदेवो ! तुम्हारा सवत्र फैला हुआ कर्म 'कक्षीवान्', द्वारा प्रशंसा किया गया है। तुमने वेगवान् अश्व के खुर से मनुष्यों के लिये भरपूर जल की वर्षा की ॥६॥ हे अश्विद्वय ! तुमने स्तोता 'विश्वक' को उसका पुत्र 'विष्णापू' दिया और पिता के घर पर बूढी होती हुई घोषा' को पति प्रदान किया ॥७॥ हे अश्विद्वय ! तुमने काले वर्ण वाले कण्व को उज्ज्वल वर्ण वाली बड़े घर की पुत्री पत्नी रूप में प्राप्त कराई। तुमने नृषद के पुत्र को यश दिया। तुम्हारा यह कर्म वर्णन करने योग्य है। हे अश्विद्वय ! तुम अनेक रूप धारण करने वाले हो ॥८॥ 'पेदु' के निमित्त तुम वेगवान अश्व को लाए जो कभी पीछे न हटने वाला, बहुत धन देने वाला शत्रुओं में निर्भय जाकर उन्हें मारने में सहायक तथा विजय दिलाने में समर्थ था ॥९। हे कल्याणकारी अश्विदेवो ! तुम्हारे कर्म श्रवण योग्य हैं वेदमन्त्र तुम्हारा स्तोत्र और आकाश पृथिवी वासस्थान है। जब तुम्हें अङ्गिराओं ने बुलाया तब तुम अन्न, बल के साथ आए ॥१०॥ (१४)

सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्या रिणीतम् ॥११॥
कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥१२॥
युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥१३॥
युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद्विभिरूहथुरृज्रेभिरश्वैः ॥१४॥
अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥१५॥१५

हे पालनकर्त्ता ! अश्विदेवो ! पुत्र के समान भक्ति से अगस्त्य ने स्तुति की। स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त हुए तुमने उस मेधावी 'भरद्वाज' को अन्न दिया और 'विश्पला' को स्वस्थ किया ॥ ११ ॥ हे अश्विद्वय ! 'शयु' के रक्षक,

॥१६॥ हे अश्विद्वय ! तुमने 'शयु' के लिए बांझ गाय को दूध से पूर्ण किया। तुमने 'पुरमित्र' की पुत्री को 'विमद' की स्त्री बनाया ॥२०॥ (१६)

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ।२१।
आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
स वां मधु प्र वोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ।२२।
सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे ।
अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम् ।२३।
हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम् ।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू ।२४।
एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवाभ्यां सुवीरासो विदथमा वदेम ।२५।७

हे अश्विद्वय ! तुमने खेत जुतवा कर अन्न उपजा कर, वज्र से दैत्यों को मारते हुये मनुष्यों का परम उपकार किया ॥ २१ ॥ हे अश्विद्वय ! तुमने 'अथर्वा' के पुत्र 'दध्य' के घोड़े का सिर जोड़ा तब उसने इन्द्र से प्राप्त मधु विद्या तुम्हें सिखाई। वह विद्या तुमको अधिक बल देने वाली हुई ॥२२॥ हे अश्विद्वय मैं तुम्हारी दया-बुद्धि की याचना करता हूँ। तुम मेरे कार्यों के रक्षक हो। हम को सन्तान युक्त अनिन्द्य धन प्रदान करो ॥२३॥ हे अश्विद्वय ! तुमने वध्रिमती को हिरण्यहस्त नामक पुत्र दिया। तुमने तीन टुकड़े हुए 'श्याव' ऋषि को जोड़कर जीवित कर दिया ॥२४॥ हे अश्विदेवो ! तुम्हारे प्राचीन वीर कर्म को पूर्वजों ने कहा। तुम्हारी स्तुति करते हुये सुन्दर और वीर पुत्रादि से युक्त होकर यज्ञ कर्म में लगते हैं ॥२५॥ (१७)

११८ सूक्त

(ऋषि—कक्षीवान् देवता—अश्विनौ । छन्द-पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।

यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान्त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः ।१।
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ।२।
प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविम श्रृणुत श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वा प्रत्यवर्ति गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजा ।३।
आ वा श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशव पतङ्गा ।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ।४।
आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अमीके ।५।१८

हे अश्विद्वय ! वज्र के समान उड़ने वाला परम ऐश्वर्यवान् तुम्हारा र[illegible] यहाँ आये । वह रथ वायु के समान गति वाला और अत्यन्त वेगवान् है ॥१॥ हे अश्विद्वय ! तुम तीन काष्ठ वाले रथ से यहाँ आओ । हमारी गौओं को दु[illegible] वाली करो, घोड़ो को वेगवान् बनाओ और वीरो को उन्नति करो ॥ २॥ [illegible] अश्विद्वय ! उतरते हुए रथ से सोम कूटने का शब्द सुनो, तुम्हें पूर्वज [illegible] नाश करने वाला कहते हैं ॥ ३ ॥ हे अश्विदेवो ! द्रुत वेग वाले घोड़ो युक्त र[illegible] मे यहाँ आओ । वह आकाश मे उड़ते हुये पक्षी के समान आपको यहाँ लावे ॥४॥ हे अश्विदेवो ! प्रसन्नवदना सूर्य पुत्री हमारे रथ पर चढ़ी थी । उस र[illegible] को आपके सहित पक्षी रूप वरुण वर्ण के अश्व यहाँ लावे ॥५॥ (१८)

उद्वन्दनमैरत दसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात्पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ।६।
युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ।७।
युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ।८।
युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।

जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ।९।
ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।
आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ।१०।
आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः ।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ।११।१६

हे उग्रकर्मा अश्विद्वयो ! तुमने 'वन्दन' का उद्धार किया, 'रेभ' को बचाया, 'तुग्र' पुत्र को समुद्र से निकाला और 'च्यवन' को युवावस्था दी ।।६।। हे अश्विद्वय ! तुमने जलाये जाते अत्रि को सुख करने वाला अन्न दिया । कण्व को स्तुति ग्रहण कर उनको नेत्र दिये ।। ७ ।। हे अश्विदेवो ! प्रार्थी 'शयु' की गौ को दूध वाली बनाया, 'वर्तिका' का दुःख दूर किया, और 'विश्पला' की जाँघ ठीक की ।। ८ ।। हे अश्विद्वय ! तुमने 'पेदु' को इन्द्र द्वारा प्रेरित, शत्रु-नाशक विकराल ऐश्वर्यशाली श्वेत अश्व प्रदान किया ।। ९ ।। हे अश्विद्वय ! हम अपनी रक्षा के लिये तुम्हारा आह्वान करते हैं । तुम हमारी स्तुतियों को स्वीकार कर धनयुक्त रथ में हमारे पास आओ ।। १० ।। हे अश्विद्वय ! तुम बाज की चाल से हमारे पास आओ । मैं इस उषाकाल में हवि हाथ में लिए तुम्हारा आह्वान करता हूँ ।।११।।   (१६)

११६ सूक्त

(ऋषि-कक्षीवान् दैर्घतमसः । देवता—अश्विनौ । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ।१।
ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ।२।
सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ।३।
युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं दिवोदासाय महि चेति वामवः ।४।

सूर्योरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् ।
आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती ॥५॥

हे अश्विद्वय ! मैं जीवन धारण के निमित्त तुम्हारे बुद्धिमान, उत्तम अश्व वाले पुत्र, पौत्र युक्त सम्पत्ति से युक्त रथ को हवियों की आकर्षित करता हूँ ॥१॥ इस रथ के चलने पर हम ऊपर देखते हैं। स्तुतियाँ एकत्रित होती हैं। मैं यज्ञ हवि को सुस्वादु बनाता हूँ। उसकी ओर जाते हैं। हे अश्विद्वय ! तुम्हारे रथ पर सूर्य-पुत्री चढ़ी है ॥२॥ हे अश्विदेवो ! परस्पर ईर्ष्यालु परन्तु प्रसन्न चित्त वाले वीर युद्ध द्वारा प्राप्ति के लिए एकत्रित होते हैं। तब तुम्हारा रथ नीचे उतरता जाता है। उसी से तुम स्तोता वीर के लिए वरणीय धनों को लाते हो ॥३॥ हे अश्विदेवो ! समुद्र की लहरों में समा कर नष्ट प्राय हुए 'भुज्य' को तुमने स्वयं जुड़ने वाले अश्वों द्वारा ले जाकर उसके घर पहुंचाया। 'दिवोदास' की जो आपने रक्षा की वह प्रसिद्ध ही है ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारे सुन्दर अश्वों ने स्वयं जुतकर शोभित रथ को उचित स्थान पर पहुँचाया। सूर्या ने मैत्री भाव के निमित्त आकर 'तुम मेरे पति हो' कहकर तुम्हें वरण किया ॥५॥ (२०)

युवं रेभं परिपूतेरुरुष्यथो हिमेन धर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥६॥
युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः ।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ॥७॥
अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥८॥
उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति ।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥९॥
युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥१०॥२१

है ॥२॥ हे अश्विद्वय ! तुम विद्वानो का ही आह्वान करते हैं। हमको मु
योग्य मन्त्र बताओ। तुमको हवि देने वाला अत्यन्त भक्ति से नमस्कार क
है ॥३॥ हे अश्विद्वय ! मैं बालक के समान देवगण से यज्ञ के सम्बन्ध मे जिज्ञा
करता हूँ। अधिक बलवान और भयङ्कर व्यक्ति से तुम हमारी रक्षा करो ॥४
तुम्हारी स्तुति रूप वाणी 'भृगु' के समान आचरण वाले 'घोषा' के पुत्र मे सुशो
भित मे सुशोभित हुई, जिसके द्वारा पज्रवंशी तुम्हारा स्तवन करता है। यह
वाणी अत्यन्त ज्ञान से भरी हुई हो ॥५॥ (२२

श्रुतं गायत्र तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम्।
आक्षी शुभस्पती दन् ॥६॥
युवं ह्यास्तं महो रन्युवं वा यन्निरततंसतम्।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं वृकादघायो ॥७॥

गले रथ को अन्न सहित प्राप्त किया है। मैं उसके द्वारा महान् ऐश्वर्य प्राप्ति की आशा करता हूँ ॥ १० ॥ हे धनदाता रथ ! मुझे बढ़ा। यह सुखकारी रथ सोम पीने योग्य स्थानों में पहुँच कर मनुष्यों को प्राप्त होता है ॥११॥ प्रातःकालीन स्वप्न और सम्पदा का उपभोग न करने वाले धनिक दोनों ही प्रकार से उपेक्षा स्वप्न और सम्पदा का उपभोग न करने वाले धनिक दोनों ही प्रकार से उपेक्षा पात्र है। वह शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥१२॥ (२३)

१२१ सूक्त [अठारहवाँ अनुवाक]

(ऋषि—औशिज कक्षीवान्। देवता—विश्वेदेवा इन्द्रश्च। छन्द—पंक्ति त्रिष्टुप्।)

कदित्था नॄँ पात्रं देवयतां श्रवद्गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन्।
प्र यदानड् विश आ हर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यजत्रः ।१।
स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ।२।
नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून्।
तक्षद्वज्रं नियुतं तस्तम्भद्द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ।३।
अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम्।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ।४।
तुभ्यं पयो यत्पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ।५।२४

मनुष्यों के रक्षक इन्द्रदेव भक्त आङ्गिराओं की प्रार्थना कब सुनेंगे? वे जब गृहस्थ यजमान के समस्त यज्ञकर्त्ताओं को अपने सब ओर देखेंगे तब अत्यन्त उत्साहपूर्वक शीघ्रता से प्रकट होंगे ॥ १ ॥ मेधावी वीर पुरुष ने आकाश को धारण किया, अन्न के निमित्त गौओं को पुष्ट किया और धन के लिये पृथिवी को सींचा। उसने अपनी महानता से उत्पन्न प्रजाओं पर कृपा की। अश्व सूर्य) की स्त्री को पृथिवी माता बनाया ॥२॥ उषाओं के स्वामी इन्द्र अङ्गिराओं के आह्वान पर नित्य जाते थे। उन्होंने हननशील वज्र बनाया और दुपाए, चौपायों के लिए आकाश को धारण किया ॥३॥ हे इन्द्र!

तुमने इस सोम से पुष्ट होकर गौओ का समूह सचमुच दान किया। जब तुम्हारा त्रिकोण वज्र शत्रुओ का हनन करता है, तब मनुष्यों को दुःख देने वाले पणि के द्वारों को गौओं के निकलने के लिये खोल देता है ॥४॥ शीघ्र कार्य करने वाले इन्द्र के लिए माता-पिता आकाश और पृथिवी, उत्पादन शक्ति युक्त प्रद दुग्ध लाये थे। उस समय अमृत रूप दुग्ध वाली गौ का दूध रूप धन तुम्हें भेंट किया था ॥५॥ (१)

अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु रोच्यस्या उपसो न सूरः।
इन्दुर्योभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ।६।
स्विध्मा यद्वनधितिरपस्यात्सूरो अध्वरे परि राधना गोः।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूननर्विशे पश्विषे तुराय ।७।
अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम्।
हरिं यत्ते मन्दिनं दुक्षन्वृधे गोरभसद्रिभिर्वाताप्यम् ।८।
त्वमायसं प्रति वर्तयो गोर्दिवो अश्मानमुपनीतमृभ्वा।
कुत्साय यत्र पुरुहूत वन्वञ्छुष्णमनन्तैः परियासि वधैः ।९।
पुरा यत्सूरस्तमसो अपीतेस्तमद्रिवः फलिगं हेतिमस्य।
शुष्णस्य चित्परिहितं यदोजो दिवस्परि सुग्रथितं तदादः ।१०।२५

तब द्रुतगामी सूर्य रूप इन्द्र उषा के समीप प्रकाशित हुए। यह [illegible] विजयी हमको प्रसन्न करें। जैसे चमकती हुई हवियो से स्रुचा के द्वारा सिंचन करता हुआ सोम साधको के हृदयों को प्राप्त होता है ॥६॥ हे इन्द्र! विद्वानों के यज्ञ मे इन्द्रियो को निग्रह करने वाला तेज सूर्य चमकता है। गाड़ीवान, पशु-रक्षक और शीघ्रता से कार्य करने वाले सभी प्राणी अपने कार्यों को करते है, वह तुम्हारे किरण-दान का ही प्रतिफल है ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ? प्रकाश को छिपाने वाले कूप का खण्डन करने के लिये तुम विशाल आकाश मे आठ घोड़ों को लाये। उस समय साधको ने तुम्हारे निमित्त दूध मे भीगे हुए सोम का रस पाषाणों से कूटा ॥ ८ ॥ बहुतों द्वारा आहूत इन्द्र ने रस्सी द्वारा [illegible] लोहे के वज्र को वर्म द्वारा आकाश से फेंका। उस समय शुष्ण को [illegible] कर कुत्स की रक्षा की (वज्र को फेंकते समय पकड़ने के [illegible] ॥ [illegible]

द्वितीय अष्टक

प्रथम अध्याय

१२२ सूक्त [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—कक्षीवान । देवता—विश्वेदेवा । छन्द पंक्ति त्रिष्टुप्)

प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम् ।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ।।१।।
पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने ।
स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ।२।
ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान् ।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवा. ।३।
उत त्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै ।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ।४।
आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे ।
प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ।५।।

हे द्रुतगामी मरुद्गण हम रुद्र के निमित्त अन्नरूप हविदान करते हैं । मैं उन आकाश के वीरो के सहित उनकी स्तुति करता हूँ । वे आकाश और पृथिवी के वीरो के समान अस्त्र धारण कर शत्रुओ को निरस्त करते हैं ।१। पति के बुलाने पर पत्नी शीघ्र उपस्थित होती है वैसे ही अहोरात्र देवता हमारे प्रथम आह्वान पर पधारें । रात्रि धूम्र वर्ण के वस्त्र वाली है और उषा सूर्य की

किरणों में युक्त अत्यन्त सुन्दर दिखाई पढ़ती है।२। दिन वाला मतिमान सूर्य हमको प्रसन्नता देने वाला हो। जल वर्षक वायु हमको आनन्द प्रद हो। इन्द्र और पर्वत हमको उत्साहित करें। विश्वेदेवा हमको धन दान करें।३। हे ऋत्विजो! मुझ उशिज-पुत्र के लिये हवि भक्षक और स्तुत्य अश्विनीकुमारों का आह्वान करो। हे मनुष्यो! तुम जलों के पुत्र की पूजा करो और स्तोताओं की मातृ भूमि पृथिवी और आकाश का भी स्तवन करो।४। हे मनुष्यो! मैं उशिज पुत्र कक्षीवान गर्जनशील इन्द्र का तुम्हारे लिये आह्वान करता हूँ। घोषा नामक नारी ने रोग निवृत्ति के लिये अश्विद्वय का आह्वान किया वैसे मैं भी करता हूँ। मैं दानशील पूषा की स्तुति करता हुआ अग्नि सम्बन्धी धनों की याचना करता हूँ।५। (५)

श्रुत मे मित्रावरुणा हवेमान श्रुत सदने विश्वत. सीम्।
श्रोतु न. श्रोतुराति सुश्रोतु सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः।६।
स्तुषे सा वा वरुण मित्र रातिर्गवा शता पृक्षयामेषु पज्रे।
श्रुतरथे प्रियरथे दधाना सद्य पुष्टि निरुन्धानासो अग्मन्।७।
अस्य स्तुषे महिमघस्य राध सचा सनेम नहुष. सुवीराः।
जनो य: पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्य सूरि.।८।
जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वा सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक्।
स्वय स यक्ष्म हृदये नि धत्त आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा।९।
स व्राधतो नहुषो दसजूत सधस्तरो नरां गूर्तश्रवा.।
विसृष्टरातिर्याति बाल्हसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदामिच्छूर.।१०।२

हे मित्र और वरुण! मेरी पुकार सुनो। यज्ञ-गृह तथा चारों ओर से मेरे आह्वान पर ध्यान दो। हमारे खेतों में जल-वर्षक देव वर्षा करें।६। हे मित्र-वरुण! मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। तुम मुझ पज्रवंशी को सौ गायें दो। सुन्दर रथ में बैठकर शीघ्र यहाँ आओ और मुझे पुष्ट करो।७। मैं इन महान् वैभवशाली देवों की स्तुति करता हूँ। हम मनुष्य इस सुन्दर धन का उपभोग करें। वे देवता अङ्गिराओं को बहुत अन्न प्रदान करते और मुझे

अश्व-रथादि युक्त धन देते है ।८। हे मित्र वरुण ! जो द्रोही कुटिल
तुम्हारे लिये सोम निष्पन्न नहीं करता, वह अपने हृदय में यक्ष्मा रोग
करता है । नियम पूर्वक रहता हुआ तुम्हारी स्तुतियां करता है । जो
पूर्वक रहता हुआ तुम्हारी स्तुतियाँ करता हुआ सोम तैयार करता है
तुम्हारा कृपा पात्र होता है ।९। वह व्यक्ति दानवान्, बलवान्, उत्तम
त्यागी होता हुआ शत्रुओं को परास्त करता है और विकराल मनुष्यों से
नहीं डरता ।१०।

अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरे श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्रा ।
नभोजुवो यन्निरवस्य राध प्रशस्तये महिना रथवते ।११।
एतं शर्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन्दशतयस्य नंशे ।
द्युम्नानि येषु वसुतानि रातिर्विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् ।१२।
मन्दामहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत्पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना ।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ।१३।
हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ।१४।
चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वस्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः ।
रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत् ।१५।

चार और 'आयवस' राजा के तीन चालक घोड़े मिले हैं । तुम्हारा अति सुन्दर सुशोभित रथ सूर्य के समान चमकता है ।१५। (३)

१२३—सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमस कक्षीवान् । देवता—उषा । छन्द—त्रिष्टुप्)

पृथु रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः ।
कृष्णादुदस्थादर्या विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ।१।
पूर्वा विश्वस्माद्भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सुपुत्री ।
उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ।२।
यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ।३।
गृहंगृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना ।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ।४।
भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व ।
पश्चा स दघ्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ।५।

दक्षिण की ओर उषा का रथ जुड़ गया । अमर देवता इस पर चढ़ गये । रोगों का नाश करने वाली उषा आकाश में उठ पड़ी ।१। धन को जीतने वाली उषा सबसे पहिले जागी । वह युवती है, बार बार प्रकट होती है ।हमारे आह्वान पर यह सबसे पहिले आती है ।२। हे उत्तम प्रकार से उत्पन्न उषे ! तुम मनुष्यों को प्रकाश या अन्न का भाग देती हो । दान के प्रेरक देव, सूर्योदय [illegible] स्वीकार करें ।३। नित्य प्रति उषा अपने [illegible] । वह कांतिमती सदा धन देने की इच्छा [illegible] ।४। [illegible] उषे ! तुम भग (सूर्य) की [illegible] सुनो । पापियों को पीछे [illegible] जित करें ।५। (४)

स्पार्हा वसूनि तमसापगू लहाविष्कृण्वन्त्यपसो विभातीः।६।
अपान्यदेत्यभ्य न्यदेति विपुरूपे अहनी सं चरेते।
परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकरद्यौदुपाः शोशुचता रथेन।७।
सदृशीरद्यसदृशोरिदुश्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम।
अनवद्यास्त्रिंशत योजनान्येकैका क्रतुं परि यन्ति मद्यः।८।
जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ठ शिवतीचो।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती।६।
कन्येव तन्वा शाशदानां एषि देवि देवमियक्षणमाणम्।
सस्मयमाना युवतीः पुरस्तादाविर्वक्षासि कृणुषे विभाती।१०।

हमारे मुख्य स्तुति गावें, बुद्धियां उन्मुख हों, प्रदीप्त अग्नि वृद्धि को [illegible] हो। अत्यन्त कान्ति वाली उषा अन्धकार में छिपे हुये धन को प्रकट [illegible] एक के हटने पर दूसरा आता है। भिन्न-भिन्न रूप वाले रात और दिन [illegible] शील हैं। एक सब पदार्थों को छिपाता और दूसरा प्रकाशमान रथ द्वारा [illegible] करता है।७। उषा जैसी आज है, कल भी वैसी ही थी। यह वरुण के स्थान [illegible] बहुत दूर तक वास करती है। यह तीसों दिन आकाश की परिक्रमा [illegible] रहती है तथा प्रतिदिन अपने नियत स्थान को प्राप्त होती है।८। दिन के आरम्भिक काल को जानती हुई अन्धकार में चमकती हुई उषा उत्पन्न हुई है। यह युवती प्रतिदिन नियत स्थान पर पहुंच जाती है तथा नियम का [illegible] कभी नहीं करती।९। हे देवी! तुम कन्या के समान अपने शरीर को [illegible] कर प्रकाशमान सूर्य को प्राप्त होती हो। फिर युवती की तरह [illegible] मुस्कराती हुई वक्ष देश को खोल देती हो।१०।

सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे [illegible]।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न [illegible] अन्या [illegible]।११।
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः।१२।

निरन्तर विगत होती हुई उषा साकार हुई । भविष्य में आने वाली उषाएँ यह प्रथम उषा मुस्करा रही है ।२। ज्योतिर्मय वसन धारण किये यह आ की पुत्री अकस्मात सामने आ गई । यह नियमों में दृढ रहती हुई सब दिन को जानती हैं और उन्हें विनष्ट नहीं होने देती ।३। जैसे सूर्य अपना वक्ष दिखाते हैं नोधा अपनी प्रिय वस्तुओं को बनाते हैं, वैसे ही उषा ने अपने प्रकट किया है । गृहस्थ पत्नी सर्व प्रथम जागती ओर फिर सबको जगाती उषा भी उसी के समान वर्तती है ।४। नवादि को उत्पन्न करने वाली उषा अन्तरिक्ष के मध्य में ध्वजा रूप तेज को प्रकट किया वह आकाश पृथिवी माता पिता की गोद को भरती हुई सर्वत्र फैलती है ।५।

एवदेषा पुरुतमा दृशे क न नाजामि क परि वृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ।६।
अभ्रातेवपुंस एति प्रतीचि गर्तारूगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उसती सुवासा उषा हृस्रेव रिणीते अप्सः ।७।
स्वसा स्वस्त्रे ज्यायस्यै योनिमारैं गपैत्यस्या प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभि सूर्यस्याञ्ज्यलक्ते समनगाइव व्राः ।८।
आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ।९।
प्र वोधयोषः पृणतो मघोन्यवुध्यमाना पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत्स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ।।१०।८

प्रत्यक्ष में महान यह उषा अपने पराये का ध्यान रखे बिना सभी को प्र होती है । वह पाप रहित शरीर से बढ़ती हुई छोटे या बड़े किसी से भी नहीं हटती ।६। बिना भाई की बहिन के समान उषा पश्चिम की ओर मुख करके चलती है । धन प्राप्ति के लिये रथारूढ़ होने वाले के समान [illegible] सुन्दर वस्त्र पहिन कर सौभाग्युक्त नारी के समान अपना स्वरूप दिखाती है ।७। रात्रि रूप बहन, अपनी बड़ी बहन उषा के लिए स्थान छोड़ती हुई दूर जाती है ।

उत्सव में जाने वाली नारियों के समान उषा सूर्य रश्मियों से अपने को सजाती है ।८। इन सब बहुत हवियों उषाओं में एक दूसरी के पीछे पीछे नित्य चलती है । उन प्राचीन उषाओं के समान नवीन उषा प्रकट होकर हमको धनों से युक्त करें ।९। हे धनवती उषे ! दानशीलों को चैतन्य करो लोभीजन सोते रहें । तुम मनुष्यों की आयु क्षय करने वाली मनुष्यों को धन से युक्त करो और स्तोता के लिये धन वाली होकर फैलो ।१०। (८)

अवेयमश्वेत्‌ वति पुरस्ताद्‌ युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।
वि नूनमुच्छादसति प्र केतुर्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ।११।
उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ।१२।
अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ।१३।६

यह युवती पूर्व दिशा में उतर रही है । इसके रथ में अरुण बैल जुते हैं । जब यह मुसकरायेगी तब इसका प्रकाश फैलेगा और घर-घर में अग्नि प्रदीप्त होगी ।११। हे उषे ! तुम्हारे खिलते ही पक्षी भी घोसला छोड़ देते हैं । मनुष्य भी अन्न के लिये कर्म करने लगते हैं । तुम हविदाता को अत्यन्त धन देने वाली हो ।१२। हे स्तुति पात्र उषाओ ! मेरे स्तोत्र तुम्हारी स्तुति करें । तुम वृद्धि को प्राप्त होओ और तुम्हारे रक्षा साधनों पर निर्भर रहते हुये हम असंख्य धन प्राप्त करें ।१३। (६)

१२५ सूक्त

(ऋषि—कक्षीवान् दैर्घतमस । देवता-दम्पती । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)
प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान्प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ।१।

गुगुरगत्गुद्रिरण: स्वदनो गृहदरमै वय इन्द्रो दधाति ।
पस्त्वावन्त वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ।२।
अगमद्य सुकृतं मातरिच्छद्मिष्टे: पुत्रं वसुमता रथेन ।
अंशो: सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभि: ।३।
उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनव. ।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वत. ।४।
नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो य: पृणाति सह देवेषु गच्छति ।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तामा इय दक्षिणा पिन्वते सदा ।५।
दक्षिणावताम दमानि चित्रा दक्षिणावता दिवि सूर्यास: ।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तो प्र तिरन्त आयु: ।६।
मा पृणन्तो दुरियमेन आरन्मा जारिषु. सूरय: सव्रतास: ।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि स यन्तु शोका. ।७।१०

दान शील व्यक्ति प्रात.काल होते ही धन दान करता है, विद्वान उसे ग्रहण करते है । वह उस धन से सन्तान, आयु और बल युक्त हुआ रक्षित होता है ।१। वह असंख्य गो, घोडे, स्वर्ण से युक्त होता है । इन्द्र उस दानी को महान सामर्थ्य देते है । वे प्रात काल ही आकर धनो से उसे आबद्ध कर देते है ।२। मै आज शोमन कर्म वाले यज्ञ को देखने के लिए रथ पर चढकर आ गया । हे यजमान तू बालको के स्वामी इन्द्र को हर्षदायक सोम निचोड कर पिला और स्तुतिगान से उन्हें प्रसन्न कर ।।३ कल्याण कारिणीगो रूप नदीयां यज्ञ की इच्छा करने वाले यजमान के निकट प्रवाहित होती है । यज्ञ की इच्छाकरने वाले दानी को घृत की धाराये सब ओर से प्राप्त होती हैं ।४। दानी का स्वर्ग में भी सत्कार होता है । वह देवताओ मे पहुँचता है । नदियां उसके लिये जल रूप घृत प्रवाहित करती हैं । उसकी दी हुई दक्षिणा सदा बढती रहती है ।५। दानियो के पास विभिन्न ऐश्वर्य हैं । दानी के लिऐ ही आकाश मे सूर्य स्थित हैं । दानी अपने दान रूप अमृत से हो दीर्घायु प्राप्त करता है ।६। दानी दुःख नही पाता । उसे पाप नही घेरता । नियमों मे दृढ स्तोता क्षीण नहीं होता

ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ।६।
उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ।७।१६

मैं सिन्धु नदी के तट पर वास करने वाले राजा भावयव्य के लिये बुद्धि द्वारा स्तोत्र भेंट करता हूं । उस राजा ने यश की इच्छा से मेरे निमित्त सहस्त्र यज्ञानुष्ठान किये हैं ।१। मुझे कक्षीवान् भेंट करते हुये राजा के सौ स्वर्णहार सौ सुन्दर अश्व और सौ गाय ग्रहण की । उस राजा का यश आकाश तक फैल रहा है ।२। स्वनय के दिये हुये विभिन्न वर्णों के अश्व और दस रथ मुझे प्राप्त हुये । साठ हजार गौवें भी मिली, जिन्हें मुझ कक्षीवान ने ग्रहण कर अपने पिता को भेंट कर दिया ।३। हजार गौओं की कतार के

भाग इस रथ पर आए। स्वर्णाभूषणों से युक्त अश्वों को कक्षीवान् के मिलने लगे ।८। हे पज्रवंशियो ! मैं प्रथम दान के अनुसार तुम्हारे लिये दस रथ और आठ उत्तम गायें लाया हूँ। कुटुम्ब वाले पज्रवंशी कष्ट से मुक्त होकर दान के इच्छुक हों ।५। मेरी पत्नी सहस्वामिनी के रूप पुत्र (स्वनय राजा) को सैकड़ों प्रकार के भोग्य पदार्थ और ऐश्वर्य प्रदान करती है। वह मेरी अत्यन्त प्रेम रखने वाली सहधर्मिणी है।६। (पत्नी कहती है) मुझे पास आकर स्पर्श करो। मुझे अल्प रोम वाली न समझो। मैं गांधार के समान रोम वाली अवयवों से पूर्ण हूँ। (पत्नी कहती है) हे प्रियतम ! मेरे समस्त अङ्गों का निरीक्षण कर, मेरे गुण अवगुण पर पूर्ण रूप से विचार कर। तुम मेरे अङ्गों गुणों और गृह कार्यों को तनिक भी हानि कारक न पावोगे ।७। (११

१२७ सूक्त

(ऋषि परुच्छेपः । देवता—अग्निः । छन्द—अष्टि शक्वरी ।)

अग्नि होतारं मन्ये दास्वन्त वसुं सूनुं
सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ।१।
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां
विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम्
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ।२।
स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो
भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।
वीळु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम्
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ।३।

आदद्धव्यान्यददिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा ।
अध स्मास्य हर्षतो हृषीवता विश्वे
जुषन्त पन्थां नरः शुभे न न पन्थाम्
द्विता यदी कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त
भृगवो मथ्नतोदाशा भृगवः
अग्निरीशे वसना शुचिर्यो धर्णिरेषाम्
प्रियाँ अपिधीर्व निपीष्ट मेधिर आ वनिपीष्ट मेधिरः ।६।
विश्वासा त्वा विशा पति हवामहे सवसाँ समान
दम्पति भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे
अतिथिं मानुषाणाँ पितुर्न यस्वासया
अभी च विश्व अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः ।८।
त्वमग्ने सहसा सहन्तमैः शुष्मिन्तमो चायसे
देवतातये रयिनं देवतातये ।
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतु
अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रष्टीवानो नाजर ।६।
प्र वो महे सहसा सहस्व उपर्बुधे
पशुषे नाग्नये स्तोमो बभूत्वग्नये ।
प्रति यदी हविष्मन्विश्वासु क्षासुजोगवे
अग्रे रेभो न जरत ऋपूणा जूर्णिहोत ऋपूणाम् ।१०।
स नो नेदिष्ठं दहशान आ भराग्ने देवेभिः सचनाः
सुचेतना महो रायः सुचेतना ।
महीं शविष्ठ नस्कृधि सञ्चक्षे भुजे अस्यै ।
महि स्योतृभ्यो मघवन्त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ।११।१३।

मरुतो के समान यह अग्नि उर्वरा और मरुभूमि में यश योग्य हैं । यह
यज्ञो मे ध्वज रूप हुये हव्य भक्षण करते हैं । अग्नि के उत्तम

करते हुये सब इनकी पूजा करें ।६। भृगुओं ने मुख ऊँचा कर जब इनका यश गान किया और अग्नि के समीप जाकर हवियाँ दीं, तब धनों के स्वामी अग्नि ने तृप्त होने पर प्रसन्नता प्रकट की ।७। हे प्रजाओं के स्वामी पालक अग्ने ! तुम्हें धारण करने के लिये आहूत करते हैं । तुम मनुष्यों के अतिथि हो । पिता के समान तुमसे यह मरणधर्मा मनुष्य अमरत्व प्राप्त करते हैं । तुम देवताओं को हवि रूप बल पहुँचाते हो ।८। हे अग्ने ! तुम देवार्चन के निमित्त प्रकट होते हो । तुम्हारा हर्ष ही बल है । ज्ञान में ही यशस्वी हो । हे जरारहित ! मनुष्य इसलिए तुम्हारी सेवा करते हैं । । उपासको ! बल से विजेता, प्रातःकाल में जागने वाले उपकारी अग्नि के लिये तुम्हारी वाणी स्तोत्र पाठ करे वंदीजन जैसे स्तुति करते हैं वैसे ही यजमान हवियों से युक्त हुआ अग्नि का स्तवन करता है ।१०। हे अग्ने ! देवताओं के साथी तुम हमारे पास रहते हुये हितकारी धनों को लाओ । इस पृथिवी में भोगों का उपभोग करने की हमें सामर्थ्य दो अपने स्तोताओं को बल से युक्त करो ।११। (१३)

१२८ सूक्त

(ऋषि—परुच्छेप । देवता—अग्नि । छन्द—अत्यष्टि)

अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ
उशिजामनु व्रतमग्निः स्वमनु व्रतम् ।
विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते
अदब्धो होता नि षददिळस्पदे परिवीत इळस्पदे ।।१।।
तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा
हविष्मता देवताता हविष्मता ।
स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ।२।
एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः
कनिक्रदद्दधद्रेतः कनिक्रदत्

शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ।३।

स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ।४।

क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण मरुतां
न भोज्येषिराय न भोज्या ।

स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना
स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः ।५।१४

यह पूजनीय होता अग्नि मनुष्यो द्वारा अरणियो से उत्पन्न हुये साधकों के सब बात सुनते है । वे यशस्वी को धन के समान है कभी पीडित न होने वाले होता रूप से पूजा स्थान मे विराजते है ।१। हम अत्यन्त विनम्र हुये यज्ञानुष्ठान मे घृतादि युक्त हवि भेंट करते हुये अग्नि का स्तवन करते है । वे हमारी हवियों को ग्रहण कर बढेंगे । जैसे मातरिश्वा ने अग्नि को दूर से लाकर वन के लिये प्रदीप्त किया, वैसे हमारे यज्ञ स्थान मे अग्नि दूर से आकर प्रदीप्त हो ।२। सदा स्तुत्य हवियुक्त अभीष्टदाता, समर्थ अग्नि वेदी के चारो ओर शब्द करते हुये प्राप्त होते है । वे स्तोत्र ग्रहण करते हुये उत्तम यज्ञ मे तुरन्त प्रदीप्त होते है ।पुरोहित रूप अग्नि यजमान के घर मे अविनाशी यज्ञ के ज्ञाता है वे कर्मों का बल देने की इच्छा से हवि ग्रहण करते है । वे अतिथि रूप से घृत भक्षण करने वाले हविदाता को अभीष्ट देते है ।४। जैसे मरुद्गण भक्ष्य द्रव्य को एकत्र करते हैं वैसे ही मनुष्यो भक्ष्य पदार्थ को एकत्र कर अग्नि को हवि देते है, तब वह दान की प्रेरणा करते हुये हविदाता को पाप कर्म से बचाते है

विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न
शिश्रथच्छ्रवस्यया न शिश्रथत् ।

श्वस्मा इदिपुष्यते देवत्रा हव्यमोहिषे
विश्वस्मा इत्सुकृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा व्यूण्वति ।६।
मानुषे वृजने शन्तमो हितोग्निर्यज्ञेषु जेन्यो
न विश्पति प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः ।
हव्या मानुषाणामिला कृतानि पत्यते
स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः ।७।
ग्नि होतारमीलते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं
न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे ।
विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम्
देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भी रण्वं वसूयवः ।८।१५

अग्नि रूप वे सब स्वामी दाँए हाथ मे धन लेकर परोपकारार्थ छोड़ते हैं। वे स्तोता की हवियाँ देवताओं को पहुचाते हैं। सुकर्म वालों को उत्तम धन भण्डारों के द्वार खोल देते हैं। ।।६।। वे अग्नि वेदी में राजा के समान स्थापित किये गये हैं। वे मनुष्यों की स्तुतियों के साथ दी गई हवियों के स्वामी हैं। वह हमें वरुणादि देवगण के कोप से बचाते हैं ।।७।। धन-धारक, अत्यन्त चैतन्य, प्रिय होता अग्नि की यजमान पूजा करते हैं। सबके प्राण रूप, धनेश, यजन योग्य मेधावी अग्नि के समीप सब देवगण धन की कामना वाले की रक्षा के लिये पहुँचते हैं ।।८।। (१५)

१२६ सूक्त

(ऋषि – परुच्छेप । देवता—इन्द्र । छन्द—अष्टि, शक्वरी ।)

य त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका
सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि ।
सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम्
सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ।१।
स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्दक्षाय्य

इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्त ये [illegible]

यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता ।

तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं वाजिनम् ।

दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद्यावीररुं

शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यं

इन्द्रोत तुभ्य तद्दिवे तद्रुद्राय स्वयशसे ।

मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृलीकाय सप्रथः ।

अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं

प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं यु[illegible]

अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित् ।

नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यं ।

नि षू नमातिमतिं कयस्य

चित्तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभिरुग्राभिरुग्रो[illegible]

नेषि णो यथा पुरानेनाः शूर मन्यसे ।

विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्निरासा वह्निर्नो अच्छ ।[illegible]

हे बली इन्द्र ! तुम अपने रुके हुए रथ को यज्ञ में पहुँचाने के [illegible] बढ़ाते हो । तुम हमारी रक्षा करो, बल दो और हमारी वाणी को [illegible] की वाणी के समान सुनो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम संग्राम में आहूत होने [illegible] देने में समर्थ हो । बुद्धिमानों के साथ यज्ञ की प्रेरणा करते हो । युद्ध के [illegible] वेगवान् घोड़ों को बुलाने के समान ऐश्वर्यवान् साधक तुम्हारी साधना [illegible] है ॥२॥ हे वीर ! तुम त्वचा रूप मेघ को तोड़ते हो । विरोधियों के [illegible] नहीं जाते । मैं तुम्हारे लिये आकाश, रुद्र, मित्र और वरुण के लिये [illegible] प्रसिद्ध स्तोत्र को कहता हूँ ॥३॥ मनुष्यो ! तुम्हारी रक्षा के लिए [illegible] रूप इन्द्र से याचना करते हैं । हे इन्द्र ! सब युद्धों में हमारी रक्षा [illegible] तुम्हारा बल उल्लङ्घन योग्य नहीं है । तुम सब शत्रु-समूह [illegible] हो ॥४॥ हे उग्र कर्म वाले इन्द्र ! शत्रु के [illegible] [illegible]

पने रक्षा-साधनों से उचित मार्ग पर ले चलो। तुम पाप-रहित हो, अग्रणी
होकर मनुष्यों के पाप दूर करते हो। तुम हमारे समीप ठहरो ॥५॥ (१६)

तद्वोचेय भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान्मन्म
रेजति रक्षोहा मन्म रेजति।
वय सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम्।
अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥६॥
वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं
रयिव सुवीर्यं रण्व सन्त सुवीर्यम्।
दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि।
आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूहिभिः ॥७॥
प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो
दुर्मतीनां दरीमन्दुर्मतीनाम्।
स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः।
हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥८॥
त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ
अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा।
सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ।
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदापाह्यभिष्टिभिः ॥९॥
त्वं न इन्द्र राया तरूषसोग्रं चित्त्वा महिमा
सक्षदवसे महे मित्रं नावसे।
[illegible] क चिदमर्त्यं।
[illegible]द्रिरिषे: क चिदद्रिवो रिरिक्षन्त चिदद्रिवः ॥१०॥
[illegible]त द्विषोऽवयाता सदमिदुर्मतीनां
देवः सन्दुर्मतीनाम्।

हन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावत. ।
अधा हि त्वा जनिता जीजनद्वसो रक्षोहणं त्वा जीजनद्वसो ॥११॥

मैं सोम से प्रार्थना करूँ जो इन्द्र को बुलाने योग्य स्तोत्र की देते हैं। वह निंदक की कुमति को हमसे दूर करें। पाप का साधक नष्ट गिरे ॥ ६ ॥ हे इन्द्र! हम ध्यानपूर्वक वीरतायुक्त, रमणीय, रक्षा वाले माँगते हैं। सुन्दर स्तोत्रों और हवियों से प्रसन्न करते हैं। सत्य हार्दिक करते हुए तुम्हें पूजते हैं ॥ ७ ॥ मनुष्यो! तुम्हारे और हमारे रक्षक इन्द्र बुद्धि वालों को दूर करे। उन्हें चीर डालें। जो वर्छी हमारे लिए दैत्य चलाई है, वह लौटकर उन्हीं को मारे ॥ ८ ॥ हे इन्द्र! तुम धन के लिए प्राप्त होओ। तुम दूर हो तो भी हमारे साथ रहो। दूर या पास जहां हमारी रक्षा करो ॥९॥ हे अत्यन्त बली, पालक, अमर इन्द्र! तुम हमसे सहित प्राप्त होओ। यश के लिए बल दो। हमारे द्रोहियों को पीडित करो॥ हे स्तुत्य इन्द्र! पापियों का पतन करने वाले, दैत्यों के नाशक, स्तोताओं रक्षक, पीड़ाओं से हमारी रक्षा करो। हे धनेश, हे वज्रिन्! इसीलिए प्रकट हुए हो ॥१०॥

१३० सूक्त

(ऋषि—परुच्छेप । देवता—इन्द्र । छन्द - अष्टि, त्रिष्टुप् ।)

एन्द्र याह्यु प नः परावतो नायमच्छा
　　　　　　विदथानीव सत्पतिरस्तं राजेव सत्पतिः ।
हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा
　　　　　　पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥
पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन
　　　　　　सिक्तमवतं न वंसगस्तातृषाणो न वंसगः ।
मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे
　　　　　　आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम् ॥
आविन्ददिवो निहितं गुहा निधिं

रवीतमश्मन्यन्ते अन्तरश्मनि ।
व वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तम ।
पावृणोदिष इन्द्र परीवृता द्वार इष परीवृता ।।३।।
दृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्यो. क्षद्मेव
ग्ममसनाय स स्यदहिहत्याय सस्यन् ।
विव्यान ओजसा शवेभिरिन्द्र मज्मना ।
ष्टेव वृक्ष वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ।।४।।
व वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेऽच्छा समुद्रमृजो
र्थां इव वाजयतो रथां इव ।
त ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
नूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहस ।।५।।१८

जैसे अग्नि यज्ञ को प्राप्त होते हैं वैसे ही हे इन्द्र ! तुम दूर हो तो भी हमको प्राप्त होओ । हम सोम निचोड़ कर बल के लिए तुम्हारा आह्वान करते हैं । पुत्र द्वारा पिता को बुलाने के समान हम तुम्हें बुलाते हैं ।।१।। हे इन्द्र ! पत्थर से निचोड़े गए इस सोम का पान करो । यह तुम्हारे बल शक्ति और बुद्धि का वर्द्धक हो । तुम्हारे अश्व सूर्य के अश्वों के समान यहाँ आवें ।। २ ।। अङ्गिराओं में प्रधान इन्द्र ने पर्वत की गुफा में छिपे हुए खजाने को ढूँढकर पाया । उन्होंने गौओं के गोष्ठ के समान उसे खोल दिया ।। ३ ।। इन्द्र ने वज्र को खूब पैनाया । हे इन्द्र ! तुम बल से युक्त होकर उस वृत्र को बढ़ई के समान काटते हो ।।४।। हे इन्द्र ! तुमने नदियों को समुद्र की ओर जाने के लिए रथों के समान छोड़ा है । इन नदियों के नाश न होने वाले धन का सम्पादन किया है, जैसे गौऐं मनुष्यों को पुष्टिप्रद पय देती हैं ।।५।।   (१८)

इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीर
स्वपा अतक्षिषु सुम्नाय त्वामतक्षिषु. ।
शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम् ।

अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनासि सातये ।६।
भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि
दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो ।
अतिथिग्वाय शम्वरं गिरेरुग्रो अवामरत् ।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ।७।
इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु ।
शतमूतिराजिषु स्वर्मीलहेष्वाजिषु ।
मनवे शासदव्रतान्त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ।८।
सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो
मुषायतीशान आ मुषायति ।
उशना यत्परावतोऽजगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ।९।
स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ।।१०।।१

र सहायताओं से हमारी रक्षा करो। दिवोदास के वंशजों की स्तुति से दिन आकाश के बढ़ने के समान वृद्धि को प्राप्त होओ ॥१०॥ (१६)

१३१ सूक्त

(ऋषि—परुच्छेप । देवता—इन्द्र । छन्द—अष्टि)

न्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही पृथिवी
रीमभिद्युम्नसाता वरीमभि ।
न्द्र विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः
न्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ।१।
विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः
पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ।२।
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता
गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद्गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ।३।
विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः
सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ।४।
आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो
यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ।५।

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो
हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ।६।
त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात
मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम् ।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तम ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ।७।२०

इन्द्र के लिये आकाश नत हुआ, पृथिवी झुक गई, [illegible]

१३२ सूक्त

(ऋषि - परुच्छेप। देवता—इन्द्रः। छन्द—अष्टि, शक्वरी)

त्वया वयं मघवन्पूर्व्ये धन इन्द्रत्वोता: सासह्याम
पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः ।
नेदिष्ठे अस्मिन्नहन्यधि वोचा नु सुन्वते
अस्मिन्यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं वाजयन्तो भरे कृतम् ।१।

स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मन्युषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि
क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि ।
अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्य:
अस्मत्रा ते सध्र्यक् सन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातय: ।२।

तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन्यज्ञे
वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारसि क्षयम् ।
वि तद्वोचेरध द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभि: ।
स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषण: ।३।

नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप
व्रजमिन्द्र शिक्षन्नप व्रजम् ।
ऐभ्यः समान्या दिशास्मभ्यं जेषि योत्सि च
सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ।४।

सं यज्जनान् क्रतुभि: शूर ईक्षयद्धने हिते तरुषन्त
श्रवस्यव: प्र यक्षन्त श्रवस्यव: ।
तस्मा आयु: प्रजावदिद्बाधे अर्चन्त्योजसा
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतय: ।५।

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप
तंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतम् ।

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य ध हविषो
हविमभिः स्वर्षाता हवोमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ।६।
त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात
मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम् ।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तम ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ।७।२०

इन्द्र के लिये आकाश नत हुआ, पृथिवी झुक गई, यजमान बहुत अन्न के लिये झुका है। सभी देवताओं ने एक मत होकर इन्द्र को अग्रगण्य बनाया। मनुष्यों द्वारा दी गई सोमयुक्त आहुतियां इन्द्र को प्राप्त हों ॥ १ ॥ हे इन्द्र! सभी सोमयागों में यजमान सभी के प्रतिनिधि रूप तुम्हें हव्य देते हैं। नाव के समान पार लगाने वाले इन्द्र को यज्ञ द्वारा चैतन्य करते हुए सेना के आगे स्थापित करते हैं। मनुष्य स्तोत्रों द्वारा उनका चिन्तन करते हैं ॥२॥ हे इन्द्र! रक्षा चाहने वाले गृहस्थ अपनी पत्नी सहित गौओ की प्राप्ति के लिए तुम्हारे चारो ओर इकट्ठे होते हैं। उनके यज्ञादि कर्मों से अभीष्ट फल दो। तुमने अपने साथ रहने वाले वज्र को प्रकट किया है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारे पराक्रम को मनुष्य जानते हैं। तुमने अयाज्ञिकों के गढों को नष्ट किया है। तुमने उन शत्रुओं को दण्डित किया है। तुमने विशाल पृथिवी और जलों को जीता है ॥४॥ हे इन्द्र! सोम से आनन्द प्राप्त कर अभीष्ट देने वाले होओ। अपने साधकों के रक्षक बनो। यजमान के लिये तुम युद्धों में प्रवृत्त होते हो। सभी तुमसे अन्न प्राप्ति की इच्छा करते हैं ॥५॥ हे इन्द्र! हमारे यज्ञ में हमारी हविया ग्रहण करें और हमारी स्तुतियों [illegible] वज्रिन्! तुम शत्रुओं के हननकर्त्ता हो। मुझ असाधारण स्तोत्र को सुनो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र! तुम हमारी रक्षा के [illegible] शत्रु का हनन करो जो हमको पीडित करता है। हे वीर [illegible] से वे दुष्ट बुद्धि वाले पीड़क दूर भाग जावें ॥७॥

ासा तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावप
तत्तु ते मनायति तकत्सु ते मनायति ।४।
शङ्गभृष्टिमम्भृण पिशाचिमिन्द्र सं मृण । सर्वं रक्षो नि बर्हय ।५।
वर्मंह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न
भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः ।
शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे
अपुरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ।६।
वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा
यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।
सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ।७।२२

मैं आकाश और पृथिवी को यज्ञ द्वारा पवित्र करता हूँ। इन्द्र के द्रोहियों और उनकी भूमि को जलाता हूँ। उस स्थान पर शत्रु मारे गये और गड्ढों में डाल दिये गये ॥ १ ॥ हे वज्रिन्! शत्रु-सेनाओं को अपने हाथी के पाँव से कुचल डालो ॥ २ ॥ हे इन्द्र! उनकी शक्ति का नाश करो और कुचल कर गहरे गड्ढों में डाल दो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुमने जिनकी त्रिगुणित पचास (डेढ़ सौ) सेनाओं को नष्ट कर डाला तुम्हारा यह कर्म महान् है। तुम्हारे लिये यह कार्य बहुत छोटा है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! क्रोध से लाल हुए उन दुष्ट पिशाचों का नाश करो। सब राक्षसों को समाप्त कर दो ॥ ५ ॥ हे वज्रिन्! तुम उन विकराल दैत्यों को विदीर्ण करो। हमारी प्रार्थना सुनो। प्रदीप्त अग्नि से डर कर जैसे कोई शोक करे वैसे तुम्हारे डर से शत्रु शोक करें। तुम शत्रुओं से युद्ध करने को जाते हो। तुम वीर किसी से न दबने वाले सदा यजमानों को पीड़ित नहीं होने देते हो ॥ ६ ॥ सोम निष्पन्नकर्त्ता यजमान, दुष्ट स्वभावी देवताओं के शत्रुओं को मारता है और अजेय होकर हजारों धनों को प्राप्त करता है। इन्द्र उसे ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ७ ॥ (२२)

यामा तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावप
तत्सु ते मनायति तकत्सु ते मनायति ।४।
पिशङ्गभृष्टिमम्भृण पिशाचिमिन्द्र सं मृण । सर्व रक्षो नि बर्हय. ।५।
अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न
भीषां अद्रिवो घृणान्न भीषां अद्रिवः ।
शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे
अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ।६।
वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा
यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।
सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ।७।२२

मैं आकाश और पृथिवी को यज्ञ द्वारा पवित्र करता हूं। इन्द्र के द्रोहियों और उनकी भूमि को जलाता हूं। उस स्थान पर शत्रु मारे गये और गड्ढों में डाल दिये गये ॥ १ ॥ हे वज्रिन्! शत्रु-सेनाओं को अपने हाथी के पाँव से कुचल डालो ॥ २ ॥ हे इन्द्र! उनकी शक्ति का नाश करो और कुचल कर गहरे खड्डों में डाल दो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुमने जिनकी त्रिगुणित पचास (डेढ़ सौ) सेनाओं को नष्ट कर डाला तुम्हारा यह कर्म महान् है। तुम्हारे लिये यह कार्य बहुत छोटा है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! क्रोध से लाल हुए उन दुष्ट पिशाचों का नाश करो। सब राक्षसों को समाप्त कर दो ॥ ५ ॥ हे वज्रिन्! तुम उन विकराल दैत्यों को विदीर्ण करो। हमारी प्रार्थना सुनो। प्रदीप्त अग्नि से डर कर जैसे कोई शोक करे वैसे तुम्हारे डर से शत्रु शोक करें। तुम शत्रुओं में युद्ध करने को जाते हो। तुम वीर किसी से न दबने वाले तथा यजमानों को पीड़ित नहीं होने देते हो ॥ ६ ॥ सोम निष्पन्नकर्त्ता यजमान, गृह स्वामी देवताओं के शत्रुओं को भगाता है और अजेय होकर सहस्रों धनों की इच्छा करता है। इन्द्र उसे पर्याप्त धन देते है ॥७॥ (२२)

१३४ सूक्त [बीसवां अनुवाक]

(ऋषि—परुच्छेपः । देवता—वायुः । छन्द अष्टिः ।)

आ त्वा जुवो रारहाणा अभि प्रयो वायो वहन्त्विह
पूर्वपीतये सोमस्य पूर्वपीतये ।
ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती
नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥१॥
मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवोऽस्मत्क्राणास सुकृता
अभिद्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः ।
यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः
सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उप ब्रुवत ईं धियः ॥२॥
वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा
धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ।
प्र बोधया पुरन्धिं जार आ ससतीमिव ।
प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥३॥
तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते
दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु ।
तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥४॥
तुभ्य शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त
भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि ।
त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये
त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणासुर्यात्पासि धर्मणा ॥५॥
त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः
पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।

तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः
परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो
तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते
वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्म
आ नो नियुद्‌भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप
याहि वीतये वायो हव्यानि वी
तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा
अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत
आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेऽभि प्रयांसि
सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वी
पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम्
वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम्
आ वां धियो ववृत्युरध्वरां उपेममिन्दुं मर्मृजन्त
वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम्
तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ।।२।२

हे वायो ! हवि सेवन के लिये निचोड़े हुए शुक्र को प्राप्त होओ। ऋत्विजों ने तुम्हारे सेवन के लिये पहिले से ही सोम तैयार रखा है। निचोड़ा सोम तुमको बल देगा और पुष्ट करेगा ॥ १ ॥ हे वायो ! यह निचोड़ा सोम बल धारण करता हुआ कलश की ओर जाता है। यह सोम हविरूप किया जाता है। हम कामना करने वालों को आप अपने घोड़ों से प्राप्त करो ॥२॥ हे वायो ! सैकड़ों-हजारों के द्वारा हमारे यज्ञ में आकर हवि ग्रहण करो। यह तुम्हारा भाग सूर्य के समान तेजस्वी है। अध्वर्युओं ने तुम्हारे लिये यह सोम अर्पण किये हैं ॥ ३ ॥ हे वायो ! सुन्दर [illegible] अन्नों की ओर तुम्हारा रथ रक्षार्थ [illegible]

तुम उज्ज्वल धनो से युक्त हुए इन्द्र के साथ यहाँ आओ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और वायु ! हमारी स्तुतियाँ तुम्हे यज्ञ की ओर आकर्षित करें। ऋत्विजो ने सोम दान कर रखा है, उसे यहाँ आकर पीओ और हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥ (२४)

इमे वा सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा
अयंसत वायो शुक्रा अयसत ।
एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्र माशव
युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ।६।
अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति
तत्र गच्छत गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
वि सूनृता ददृशे रीयते घृतमा पूर्णया नियुता याथो
अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ।७।
अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुति यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त
जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः ।
साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय उप दस्यन्ति
धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ।८।
इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो
महि व्राधन्त उक्षणः ।
धन्वञ्चिद्ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकस
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ।९।२५

हे वायो ! अध्वर्युओं द्वारा प्राप्त हुए निष्पन्न सोम प्रस्तुत हैं। यह तुम दोनो के लिये ऊनी वस्त्र में छाने गये हैं ॥ ६ ॥ हे वायो ! सब सोते हुओं को जगाते हुए आओ। सोम कूटने के पाषाण के शब्द से आकर्षित होओ ॥७॥ हे इन्द्र और वायो ! तुम इस मधुर सोम की आहुति ग्रहण करो। इस पीपल रूप सोम को अजेय व्यक्ति पीते हैं। हमारी गौएं क्षीण

उक्थैर्य एनो परिभूपति व्रत स्तोमैरभूपति व्रतम् ।५।
नमो दिवे वृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोच वरुणाय
मीलहुपे सुमृलीकाय मीलहुपे ।
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम्
ज्योग्जीवन्त प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ।६।
ऊती देवाना वयमिन्द्रवन्तो मसीमहि स्वयशसो मरुद्भि. ।
अग्निर्मित्रोवरुण. शर्म यसन् तदश्याम मघवानो वय च ।७।२६।

मनुष्यो ! नमस्कार पूर्वक मित्र और वरुण के लिए हवि-सम्पादन करो। वे घृतयुक्त हवि-योग्य यज्ञो मे स्तुति किये जाते है और इनका देवत्व कभी नही घटता ॥ १ ॥ सूर्य का विस्तृत मार्ग नियम रूप डोरी पर थमा हुआ है। मित्र अर्यमा और वरुण का स्थान अत्यन्त उज्ज्वल है। वे यहा से महान बल प्रदान बल प्रदान करते हैं ॥२॥ पृथिवी की धारक और आकाश से युक्त अदिति की, मित्र-वरुण नित्य सेवा करन है। यह दान क स्वामी आदित्य तेजस्वी हैं। मित्र, वरुण और अर्यमा तीनो ही मनुष्यो को प्रेरणा देते है ॥३॥ यह सोम मित्र और वरुण को सुख दे। देवता उससे आनन्दित कार्य सभी देवता समान इच्छा से इसका सेवन करे। वह हमारी इच्छानुसार हो। करे ॥ ४ ॥ मित्र वरुण की सेवा करने वाले को वे शत्रु और पापो से बचाते हैं। हविदाता की रक्षा करते हैं। जो इनके नियमो को मानता हुआ स्तुति करता है उसकी अर्यमा रक्षा करते हैं ॥५॥ महान आकाश, भूमि, मित्र और वरुण को नमस्कार करता हूँ। हम इन्द्र, अग्नि, अर्यमा भग की निकट से स्तुति करें और पुत्र आदि से युक्त हुए रक्षाओं को प्राप्त करें ॥ ६ ॥ देवताओं की रक्षा से हमारी ओर आकर्षित हुए और उनके साथी मरुतो की प्रशसा करें। अग्नि, मित्र, वरुण हमारे शरणदाता है। उनसे हम अभीष्ट धन प्राप्त करें ॥७॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्तम् ॥

१३७ सूक्त

(ऋषि—परुच्छेप । देवता—मित्रावरुणो । छन्द शक्वरी)

सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे ।
आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः ।
इमं वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिर

इम आ यातमिन्दव. सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः ।
उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥

तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः ।
अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये ।
अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥३॥

हे मित्रावरुण ! हमने सोम निष्पन्न कर लिया है । तुम दोनों [illegible] आकर इस दूध मिले हुए पुष्टिकारक सोम का पान करो और हमारे [illegible] होओ ॥ १ ॥ हे मित्र-वरुण ! यह सोम दधियुक्त है । तुम दोनों [illegible] सोम निष्पन्न किया [illegible] ही आओ ! तुम दोनों के लिये इस यज्ञ-कर्म में सोम निष्पन्न किया [illegible] ॥२॥ हे मित्र वरुण ! तुम दोनों के लिये मनुष्यों ने सोम का [illegible] दोहन किया है । तुम हमारे रक्षक सोम पीने के लिये हमारी ओर [illegible] हमने तुम्हारे पीने के लिये यह सोम निष्पन्न किया है ॥३॥

१३८ सूक्त

(ऋषि—[illegible] । देवता - पूषा । छन्द - [illegible])

[illegible] तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो
न [illegible]

[illegible]

विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ।१।
प्रहि त्वा पूषन्नजिर न यामनि स्तोमेभि. कृण्व
ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरी मृधः ।
हुवे यत्वा मयोभुव सख्याय मर्त्य
अस्माकमाङ्गू पान्द्यु म्निनस्कृधि वाजेषु द्यु म्निनस्कृधि ।२।
यस्य ते पूषन्त्सख्ये विपन्यव· क्रत्वा चित्सन्तोऽवसा
बुभुज्रिर इति क्रत्वा बुभुज्रिरे ।
तामनु त्वा नवायसी नियुत राय ईमहे
अहेलमान उरुशस सरी भव वाजेवाजे सरी भव ।३।
अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवोऽहेलमानो ररिवा
अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व ।
ओ षु त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभि·
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ।४।२

पूषा (सूर्य) का अत्यन्त महत्व है । उसका बल कम नही होता । उस का स्तोत्र सदा बढ़ाने वाला हैं । मैं कल्याण की इच्छा से उसे नमस्कार करता हूँ उसने सब के मनों को आकर्षित कर लिया है ।।१।। हे पूषा ! शीघ्रगामी मनुष्य को मार्ग मे उचित दिशा बताने के समान तुम्हे स्तोत्र प्रेरणा करता हू, जिससे तुम हमारे शत्रुओ को दूर करो । मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ । मुझे द्वन्द्वो मे बलवान बनाओ ।।२।। हे पूषन् ? तुम्हारी स्तुति मे लगे हुए व्यक्ति ही तुम्हारी रक्षाओं को प्राप्त कर सकें । हम ज्ञान से सम्पन्न हुये नये स्तोत्र द्वारा तुमसे असंख्य धन की याचना करते है । तुम हम पर क्रोध न करो । प्रत्येक युद्ध मे हमारे सहायक बनो ।। ३ ।। हे अजाश्व पूषन् ! तुम दान के लिये क्रोध रहित हुये यहाँ आओ । हम यश की कामना करते हैं । यह तुम्हारा अनादर नहीं करते । आपके मित्र-भाव की उपेक्षा नही करते । तुम अद्भुत कर्म वाले हमारे स्तोत्रों पर ध्यान दो ।।४।। (२)

ष्णप्रुती वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
ाचजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ।३।
मुक्षवो मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः ।
समना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उह युज्यन्त आशवः ।४।
आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः ।
यत्सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन्त्स्तनयन्नेति नानदत् ।५।५

हे मनुष्यो ! वेदी में प्रतिष्ठित, प्रकाशमान अग्नि के लिए हवियाँ सम्पादन करो । उस पवित्र ज्योति रूप रथ वाले, अन्धकार के नाशक अग्नि को अपने स्तोत्रों से वस्त्र के समान ढको ॥१॥ दो बार प्रकट होने वाले अग्नि तीन प्रकार से अन्नों को प्राप्त करते और भक्षण किये अन्न को वर्ष भर में ही बढ़ा देते हैं। वह मुख से हवि भक्षण करते और दूसरे से वन-वृक्षों को निर्दोष करते हैं ॥२॥ इसके प्रज्ज्वलन से काली हुई इसकी दोनों माताएं कम्पित होती हैं । यह आगे वाले, वेगवान्, भिन्न वर्ण वाले, द्रुतगामी हैं इनके घोड़े वायु की प्रेरणा से जुड़ते हैं ॥४॥ यह अग्नि पृथिवी को सब ओर से स्पर्श करते है । यह शब्दवान् जब श्वास लेते इनकी चिनगारियाँ फैलती हुई अन्धकार का नाश करती बढ़ती हैं ॥५॥　　　　　　　　　　(५)

भूषन्न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ।६।
स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आ शये ।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ।७।
तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः ।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानददसुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ।८।
अधीवासं परि मातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्रयः ।

रमणीय धनों के देने वाले होओ ॥११॥ हे अग्ने ! तुम हमारे घर के मनुष्यों को अथवा रथवान योद्धा के लिये ऐसी यज्ञ रूप नाव प्रदान करो जो हम सबको पार लगाती हुये आश्रय रूप बने ॥१२॥ हे अग्ने ! स्तोत्र को बढ़ाओ। आकाश पृथिवी और स्वर्ग की गमनशील नदियाँ हमको गवादि पशु, अन्न और दीर्घायु प्रदान करें तथा उषायें हमको वरणीय अन्न, बल प्राप्त कराने वाली हों ।१३। (७)

१४१ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमा । देवता—अग्नि । छन्द—जगती त्रिष्टुप् पंक्ति)

बळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि ।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ।१।
पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु ।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ।२।
निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः ।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ।३।
प्र यत्पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति ।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद्घृणा शुचिः ।४।
आदिन्मातॄराविशद्यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे ।
अनु यत्पूर्वा अरुहत्सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ।५।८

अग्नि जिस बल से उत्पन्न हुए हैं, उसी बल रूप दर्शनीय तेज को धारण करते हैं। उनकी कृपा से ही अभीष्ट सिद्धि होती है। सत्य वाणियाँ प्रवाहित होती हैं ॥ १ ॥ अन्नसाधक अग्नि अन्नों में व्याप्त रहते हैं। दूसरे सात कल्याण कारिणी मातृ रूपा धातुओं में व्याप्त होते हैं तीसरे अग्नि को दस उंगलियाँ घर्षण द्वारा प्रकट करती हैं ॥ २ ॥ ऋत्विजों ने बड़े दक्ष को सिद्ध करने वाले मूल से अग्नि को उत्पन्न किया। मातरिश्वा प्राचीन काल से अग्नि को जल से श्रम पूर्वक मन्थन करते थे ॥ ३ ॥ जब अग्नि को उत्कृष्टता के लिए चारों ओर ले जाते है, तब वह ओषधियों पर चढ़ते है। तब वे

करने वाले तेजस्वी के समान, वे आकाश की यात्रा करते हैं। हे अग्ने ! उन वाले दस्युओं को तुम भस्म करते हो। तुम्हारे उपासक वीरों के समान बल प्राप्त करते हैं ॥८॥ हे अग्ने ! धृतनियमा वरुण, दानशील अर्यमा और मित्र तुम्हारे द्वारा प्रेरणा पाते हैं। जैसे रथ का पहिया अरों (डण्डों) को व्याप्त करके रहता, वैसे यज्ञ कर्मों द्वारा अग्नि प्रकट होते हैं ॥ ९ ॥ हे अत्यन्त युवा अग्ने ! तुम सोम निष्पन्न करने वाले स्तोता को वैभव योग्य धन प्रेरित करते हो। हम अपने कार्य के लिए भग के समान तुम्हारी पूजा करते हैं ॥१०॥ हे अग्ने ! हमारे कार्य के लिये धन और घर के लिये सौभाग्य प्रदान करो। तुम दोनों लोकों को रासों के समान वश में रखते तथा यज्ञ में हमारी स्तुति को देवगण के पास पहुँचाते हो ॥ ११ ॥ अत्यन्त तेजस्वी घोड़ों से युक्त दमकते हुए रथ वाले अग्ने ! हमारे आह्वान को सुनो। तुम हमको काम्य सुख को प्रेरित करते हुये हमारा कल्याण करो ॥१२॥ हमने महान् ऐश्वर्य के लिए अत्यन्त बली अग्नि देव का स्तवन किया है। वे अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हों और हम भी उसी प्रकार बढ़ें जैसे सूर्य मेघ के ऊपर चढ़ता है ॥१३॥ (९)

१४२ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमा । देवता—अग्नि आदि । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्)

समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥१॥

घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् ।
यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥२॥

शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥३॥

ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।
इयं हि त्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते ॥४॥

स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे ।

स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ।१०।
स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये ।
इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वा हवन्ते अध्वरे ।१२।११

मत्रके स्तुति पात्र, सुन्दर कांति वाले, श्रेष्ठ-अग्नि रूप रात्रि दिवस हमारी कुशाओं पर आकाश विराजमान हो ।।७।। सुन्दर जिह्वा वाले, स्तोताओं की कामना वाले, मेधावी अग्नि-रूप दोनों होता इस सिद्धि दायक यज्ञ को बढ़ावें ।। ८ ।। देवों द्वारा स्थापित, यज्ञों को सिद्ध करने वाली पवित्र वाणी रूप भारती सरस्वती और इला य तीनों हमारी कुशायों पर विराजें ।। ९ ।। हमारे मित्र, स्वामी त्वष्टा स्वयं ही हमको पुष्ट करने वाले अन्न के लिए जल-वर्षा करें ।।१०।। हे वनस्पते ! तुम स्वयं देवताओं के समीप जाकर यज्ञ करो। मेधावी अग्नि देवताओं के लिए प्रेरणा करते हैं ।।११।। पूषा और मरुतों से युक्त विश्वदेव रूप वायु के लिए यज्ञ करो । इन्द्र को लक्ष्य कर हवियों दो ।।१२।। हे इन्द्र ! हमारे मन्त्रों की ओर आकर हवि सेवन करो । हमारा आह्वान सुनो । हम तुम्हें यज्ञ में बुलाते हैं ।।१३।। (११)

१४३ सूक्त

(ऋषि दीर्घतमा । देवता—अग्नि । छन्द जगती, त्रिष्टुप्)

प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे ।
अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीदहत्वियः ।१।
स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ।२
अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसंदृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते असमन्तो अजराः ।३।
यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ।४।
न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।

अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते ॥५॥
कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत् ।
चोदः कुवित्तुतुज्यात्सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥६॥
घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥७॥
अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥८॥१२॥

अग्नि बल के पुत्र हैं। उनके लिए नवीन स्तोत्र भेंट करता हूँ। वे जल से उत्पन्न हैं और होता रूप से धनों के साथ यज्ञ स्थान में विराजमान हैं ॥१॥ वह अग्नि मातरिश्वा के लिए उच्च आकाश में प्रकट हुए। उन उज्ज्वल कर्म से आकाश और पृथिवी दोनों प्रकाशित हुए ॥ २ ॥ उनके अ[जर] प्रकाश और चमकती हुई चिनगारी रूप किरणें बलशाली हैं। वे समुद्र समान रात्रि को पार करते हुए भी कभी काँपते नहीं ॥३॥ लोकों के स्वामी जिन अग्नि को भृगुओं ने अपने बल से प्रेरित किया, उनकी स्तुति करें। वे वरुण के समान सब धनों के एकमात्र स्वामी हैं ॥ ४ ॥ जो अग्नि मरुतों के शब्द, आक्रामक सेना और आकाश के वज्र के समान बाधा रहित हैं, वे वनों को भस्म करते हैं और वनों को योधाओं द्वारा शत्रुओं को भून डालने के समान ही जला देते हैं ॥ ५ ॥ अग्नि हमारे स्तोत्र की कामना करते हुये हमारी धन की इच्छा को पूर्ण करें। हमारे लाभ के लिए कर्मों को प्रेरित करें। मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ ॥६॥ अग्नि को प्रदीप्त करने वाले यजमान घृत चिन्ह को मित्र बनाने के इच्छुक हैं। वे प्रकाश के दुर्ग के समान यज्ञ में प्रज्वलित होकर हमारे मन को श्रेष्ठ स्तुति की ओर प्रेरित करते हैं ॥ ७ ॥ हे अग्ने! निरन्तर विश्राम-रहित कल्याण रूप तुम हमारी रक्षा करो, तुम क्लेश-रहित निद्रा-रहित सामर्थ्यों से युक्त हो। हमारी सन्तान की सब ओर से रक्षा करो ॥८॥

१४४ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमा । देवता—अग्नि । छन्द—जगती पंक्ति)

एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम् ।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ॥१॥
अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः ।
अपामुपस्थे विभृतो यदावसदध स्वधा अधयद्याभिरीयते ॥२॥
युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः ।
आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोळ्हुर्न रश्मीन्त्समयंस्त सारथिः ॥३॥
यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥४॥
तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे ।
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधितः ॥५॥
त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।
एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ॥६॥
अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः सन्दृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः ॥७॥१३

देवाह्वाता अग्नि यज्ञ की ओर स्तोत्रों को बल देते हुए जाते हैं । वे स्रुचों से आहुति प्राप्त करते हुए उठते हैं ॥१॥ अग्नि की ज्वालाएं देवस्थान में, वेदी से घिरे हुए यज्ञ में निकलती हैं । जलों की गोद में अन्तर्हित रहे अग्नि ने प्रकट होकर अपना गुण ग्रहण किया ॥ २ ॥ एक रूप वाली दोनो अरणियाँ परस्पर मिलकर उज्ज्वल रूप वाले की कामना करती हैं । वे अग्नि आह्वान के योग्य हैं । सारथी द्वारा रास पकड़ने के समान, अग्नि हमारी घृत धारा को ग्रहण करते हैं ॥ ३ ॥ समान अवस्था वाले दो मनुष्य, अग्नि की दिन-रात पूजा करते हैं । वे अग्नि कभी वृद्ध नहीं होते । युवा रहते हुए ही हवि भक्षण करते हैं ॥४॥ दश उङ्गलियाँ उस अग्नि की सेवा करती हैं । हम

उन्हें रक्षा के लिये आहूत करते है । वे वायु की गति के समान चलते हुये नई स्तुतियों को धारण करते हैं ॥ ५॥ हे अग्ने ! तुम आकाश और पृथिवी के प्राणियों के स्वामी हो । यह ऐश्वर्य युक्त दोनो ही तुम्हारे यज्ञ को प्राप्त होते है ॥६॥ हे प्रसन्न मन वाले स्वेच्छावान् बली दक्षोत्पन्न अग्ने ! प्रसन्न होकर इस स्तोत्र को स्वीकार करो । तुम अत्यन्त रमणीक और ऐश्वर्यों से पूर्ण हो ॥७॥ (१३)

१४५ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमा । देवता—अग्नि । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सा न्वीयते ।
तस्मिन्त्सन्ति प्रशिपस्तस्मिन्निष्टयः सवाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ।१।
तमित्पृच्छन्ति न सिम्रो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ।२।
तमिद् गच्छन्ति जुह्व स्तमर्वतीर्विश्वान्येक शृणवद्वचांसि मे ।
पुरुप्रैषस्तुरियंज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशु रादत्त स रभः ।३।
उपस्थायं चरति यत्समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।
अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदी गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ।४।
स ईं मृगो अप्यो वनर्गुरुप त्वच्युपमस्यां नि धायि ।
व्यब्रवीद्वयुना मर्त्येभ्योऽग्निर्विद्वां ऋतचिद्धि सत्य ।५। ४

वे अग्नि सर्वज्ञाता, सर्वत्र गमनशील, सब के स्तुति-पात्र, अभीष्टयुक्त एवं महाबली हैं ॥ १ ॥ उस अग्नि को सब जानते है । उनके सम्बन्ध में पूछना अनुचित है । स्थिर मन वाला किसी को प्रथम और बाद की बातें नही भूलता । इसलिये अहंकार से शून्य मनुष्य अग्नि का आश्रय लेता है ॥२॥ उसी अग्नि को आहुतियाँ और स्तुतिया प्राप्त होती है । वह आह्वानों को सुनने वाला है, यज्ञ को सिद्ध करने वाला तथा बालक के समान बल वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ अग्नि प्रकट होते ही विचरणशील हैं । यह

तुरन्त ही हविया ग्रहण करते हैं और थके मनुष्यों की थकान को मिटाकर प्रसन्नता प्रदान करते हैं।४। वन मे फिरने वाला अग्नि ईधन से प्राप्त होता है। मेधावी यज्ञ ज्ञाता अग्नि मनुष्यो मे रहकर यज्ञ कर्म मे प्रेरित करता हुआ ज्ञान देता है।५। (१४)

१४६—सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमा। देवता अग्नि। छन्द—त्रिष्टुप्।)

त्रिमूर्धान सप्तरश्मि गृणीषेऽनूनमग्नि पित्रोरुपस्थे।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवासम्।१।
उक्षा महां अभि ववक्ष एने अजरस्तस्थावितऊतिर्ऋष्व।
उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य।२।
समानं वत्समभि सञ्चरन्ती विष्वग्धेनू विचरत सुमेके।
अनपवृज्यां अध्वनो मिमाने विश्वान्केतां अधि महो दधाने।३।
धीरास: पद कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम्।
सिषासन्त पर्यपश्यन्त सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत्सूर्यो नृन्।४।
दिदृक्षेण्य: परि काष्ठासु जेन्य ईलेन्यो महो अर्भाय जीवसे।
पुरुत्रा यदभवत्सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शत।५।१५

हे मनुष्य! तीन मस्तक वाले, सात किरणो वाले, पूर्ण रूप वाले आकाश और पृथिवी के मध्य विराजमान और प्रकाशित नक्षत्रों में तेज रूप से व्याप्त इस अग्नि का स्तवन कर।१। इस वीर अग्नि ने आकाश और पृथिवी को सब ओर से व्याप्त किया है। वह जरा रहित और साधनों से युक्त है। पृथिवी के सिर पर अपने पैरों को रख कर खड़े हुए इसकी ज्वालाएँ मेघ रूप स्तन को चाटती है।२। यह आकाश पृथिवी रूप गौयें साझे के बछड़े रूप अग्नि को प्राप्त कर सभी कामनाओं को धारण करती हुई विचरती है।३। बुद्धिमान् ऋषिगण मनुष्यों की रक्षा करते हुए उनको मार्ग दिखाते है। उन्होंने अग्नि की चाहना से समुद्र को सब ओर से देखा तब मनुष्यों का

कल्याण करने वाला सूर्य उत्पन्न हुआ ।४। दिशाओं के विजेता अग्नि छोटे शरीर धारियों के लिये जीवनदाता हुए । वे धन और प्रजाओं को करने में समर्थ हैं ।५।

१४७ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता-अग्नि । छन्द —पंक्ति. त्रिष्टुप ।)

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्नणयन्त देवा ।।१।
बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ।२।
ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ।३।
यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन ।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ।४।
उत वा यः सहस्य प्रविद्वान्मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायी. ।५।।६

हे अग्ने ! तुम्हारी प्रकाशित किरणें बलयुक्त जीवन देती हैं । वे पौत्रादि को बढाती हुई पुष्ट करती हैं ।१। हे अत्यन्त युवा अग्ने ! मेरे इस आदर योग्य स्तोत्र को सुनो । एक मनुष्य आपको पीड़ा पहुँचाता है एक स्तुति करता है । मैं तो आपकी स्तुति करने वाला हूँ ।२। हे अग्ने ! तुम्हारी रक्षा से युक्त भक्तो ने ममता के अन्धे पुत्र को बचाया । उन उत्तम कर्म वालों की तुमने रक्षा की । तुम्हें शत्रु किसी प्रकार छल नहीं सकते ।३। हे अग्ने ! ईर्षा युक्त अदानशील पापी हमको छल से दुख देता है उसका वह दुर्विचार उसी को भार स्वरूप हो और वह उसी को नष्ट करे ।४। हे बलवान् ! जो मनुष्य दूसरे से किसी को पीड़ित करना चाहता है, उससे स्तोता की रक्षा रोक । हम दुखी न हों ।५।
(११)

१४८ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमा । देवता—अग्नि । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप)

मथीद्यदी विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्वर्ण चित्रं वपुषे विभावम् ॥१॥
ददानमिन्न ददभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥२॥
नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥३॥
पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैराद्रोचते वन आ विभावा ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ॥४॥
न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति ।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥५॥१७

उन सर्व रूप वाले देवस्वरूप होता का मातरिश्वा ने मन्थन किया और उस सूर्य के समान देदीप्यमान अग्नि को देवगण ने मनुष्यों में स्थापन किया ।१। स्तोत्र उच्चारण करते हुये मुझे पात्र पीड़ित न कर पाये मेरी स्तुति सुन अग्नि ने शरण दी और मेरे स्तोत्र को सब देवताओं ने स्वीकार किया ।२। यजमानों ने जिसे ग्रहण कर स्तुतियों से स्थापित किया और रथ में घोड़े जोड़ने के समान आगे बढ़ाया ।३। अद्भुत अग्नि वृक्षों का वर्णन करता है और प्रकाश से वन में चमकता है। इसकी दमकती हुई ज्वाला को वायु तीक्ष्ण रूप में बढ़ाता है ।४। जिसे अप्रकट रहने पर हिंसक पीड़ित न कर सके और अन्धे इसके महात्म को न मिटा सके । इससे प्रीति करने और नित्य धारण करने वाले ही इस अग्नि की रक्षा करते रहे हैं ।५। (१७)

१४९ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमा । देवता—अग्नि । छन्द—अनुष्टुप ।)

महः स राय एषते पतिर्दन्निन इनस्य वसनः पद आ ।

उप प्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ।१।
स यो वृषा नरां न रोदस्यो. श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्ग ।
प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ ।२।
आ यः पुर नार्मिणीमदीदेदत्य. कविर्नभन्यो नार्वा ।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ।३।
अभि द्विजन्मा त्री रोजनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ।४।
अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ।५।१८

वह अत्यन्त ऐश्वर्यवान् धन स्वामी देने के लिये यज्ञ में आतेहैं। सोम कूटने के पाषाण उनके लिये रस तैयार करने हैं ।१। जो आकाश और पृथिवी मे यशस्वी रहते है उसे त्याग कर जीव दुःख भोगते हैं। वह अग्निवेदी में वास करते हैं। । जिसने मनुष्य शरीर मे दोहन किया, वह अग्नि शीघ्रगामी अश्व के समान प्रशंसनीय हैं ।३।दो जन्म वाले अग्नि तीनो ज्योतियो और सब लोकों को प्रकाशित करते हैं। यह अत्यन्त पूज्य होता के रूप मे नियुक्त हुए हैं ।४। वह दो जन्म वाले देवताओं के बुलाने वाले हैं। जो मनुष्य इनको हवि देता है उसे वह वरणीय धन और यश का देने वाला है ।५। (१८

१५० सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री उष्णिक)

पुरुत्वा दाश्वान्वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्येव शरण आ महस्य ।१।
व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः ।
कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ।२।

स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि ।
प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ।३।१६

हे अग्ने ! आपके आश्रय का इच्छुक स्तोता हवि देता हुआ बार-बार आह्वान करता है ।१। वे अग्नि देवताओं से द्वेष करने वालों के आग्रह पूर्ण आह्वान पर भी नहीं आते ।२। हे मेधावी अग्ने ! वह मनुष्य अत्यन्त यशस्वी होता है, वह सबको प्रसन्न करता है । तुम्हारे साधक हम सदा वृद्धि को प्राप्त हों ।३। (१६)

१५१ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमा । देवता - मित्रावरुणौ । छन्द—त्रिष्टुप जगती)

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।
अरेजतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥१॥
यद्ध त्यद्वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ।
आ वां भूषन्क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥३॥
प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् ।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥४॥
मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन्धेनवः ।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ।५।६•

प्रकाश की इच्छा से ध्यानरत देवगण ने जीव मात्र की रक्षा के लिये मित्र के समान जिस पूजनीय अग्नि को जलों से उत्पन्न किया, प्रकट होने पर उसके बल और वाणी के प्रभाव से आकाश और पृथिवी कांप उठे ।१। हे मित्रावरुण ! ऋत्विजों ने तुम्हारे लिए अभीष्टदायी सोमरस को अर्पण किया । इसलिए साधक के घर आकर उसका आह्वान सुनो ।२। हे मित्रावरुण ! तुम्हारी वर्णन योग्य उत्पत्ति आकाश, पृथिवी से बताई गई है । तुम इन नियमों का पालन करके और अपने उपासकों के निमित्त प्रकट होते हो । तुम

उत्तम यज्ञों में स्तुतियो द्वारा प्राप्त होते हो ।३। हे मित्र, वरुण ! तुमको मनुष्य अत्यन्त प्रिय है । तुम नियमो की उच्च स्वर से घोषणा करने वाले ०० तुम बैल को धुरे में जोतने के समान विशाल आकाश में सामर्थ्य को जोड़ते हो ।४। हे मित्र और वरुण ! तुम वरणीय धनों को प्राप्त कराने वाले हो । गोष्ठ में रहने वाली गौऐं प्रातकाल और सायकाल आकाश मे उडते हुए पक्षियों के समान सूर्य को देखती हुई रमाती है ।५। (२०)

आ वामृताय केशिनीरनूपत मित्र यव वरुण गातुमर्चथ. ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ।६।
यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता जजति मन्मसाधनः ।
उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिर सुमतिं गन्तमस्मयू ।७।
युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेतदाशाथे ।८।
रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।
न वां द्या वोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्व पणयो नानशुर्मघम् ।९२ ।

हे मित्र और वरुण ! जब तुम धर्म मार्ग की उन्नति करते हो तब यज्ञाग्नि ज्वालाऐं तुम्हारा स्तवन करती है । तुम ऋषियो के स्तोत्र के स्वामी हो । हमारी स्तुतियो की वृद्धि करो ।६। हे मित्रावरुण ! जो स्तोता यज्ञ मे तुम्हारे लिये हवि देता है और जो स्तोत्र रचयिता कवि तुम्हारा स्तवन करता है । तुम दोनो उसे प्राप्त होते हुए उसके यज्ञ को काम्य बनाते हो । अत. हमारी स्तुतियों को सुनकर यहाँ आओ ।७। हे पूर्वनियमा मित्रावरुण ! जो मनुष्य अपने यज्ञों मे हार्दिक भावना से तुम्हारा पूजन करते हैं, वे स्थिर ध्यान से तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम उन्हें प्राप्त होते हो ।८। हे मित्रावरुण ! तुम धनयुक्त बल के धारक हो और मानसिक बल से रक्षा साधन युक्त हुए महान् बनते हो। दिन, रात्रि, नदियाँ और पणि तुम्हारे देवत्व नहीं पा सके, प्राणियों को तुम्हारा हाल भी नहीं मिला ।९। (२१)

१५२ सूक्त

(ऋषि-दीर्घतमा । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द—त्रिष्टुप ।)

[य]ुव वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गा ।
[अ]वातिरतमनृतानि विश्वा ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ।१।
[ए]तच्चन त्वो वि चिकेतदेषा सत्यो मन्त्र कविशस्त ऋघावान् ।
[त्रि]रश्रि हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ।२।
[अ]पादेति प्रथमा पद्वतीना कस्तद्वा मित्रावरुणा चिकेत ।
[ग]र्भो भार भरत्या चिदस्य ऋत पिपर्त्यनृत नि तारीत् ।३।
प्रयन्तमित्परि जार कनीना पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसान प्रिय मित्रस्य वरुणस्य धाम ।।४।।
अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत्पतयदूर्ध्वसानु ।
अचित्त ब्रह्म जुजुषुर्युवान. प्र मित्रे धाम वरुणो गृणन्तः ।५।
आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रिय पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ।६।
आ वा मित्रावरुणा हव्यजुष्टि नमसा देवाववसा ववृत्याम् ।
अस्माक ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माक वृष्टिर्दिव्या सुपारा ।७।२२

हे मित्र वरुण ! तुम दोनो तेजरूप वस्त्रो को धारण करते हो, तुम्हारी सृष्टिया सुन्दर और छिद्र रहित है । तुम हर प्रकार से असत्य से दूर रहते हुए सत्य के साथी हो ।१। ऋषियो के वाक्य सत्य है कि मित्र वरुण चतुर्गुण अस्त्रो से सुसज्जित है और वे त्रिगुणात्मक अस्त्र वालो को नष्ट करते हैं । इनके महत्व को कोई नही जानता । देव निन्दको को यह सबसे पहले मारते हैं ।२।। पद-रहित उषा पद युक्त मनुष्यो के आगे जाती है, इससे कर्म को कौन जानता है ? रात्रि का गर्भस्थ पुत्र सूर्य इस ससार का भार वहन करता हुआ सत्य को दृण करता और असत्य को मिटाता है ।३। हम प्रचण्ड तेज रूप वस्त्रधारी मित्रा वरुण के स्थान की ओर उषाओ की कान्ति

क्षीण करने वाले सूर्य को आगे बढता देखते हैं । मित्रावरुण का स्थान
कभी नहीं रहता ।४। बिना घोड़े और बिना रास वाला आदित्य प्रकट होते
ऊँचा चढता और शब्द करता है । मित्रावरुण के स्थानरूप सूर्य की मनुष्य
स्तुति करते हैं ।५। हे मित्र वरुण ! स्नेह दायनी गौऐं मुझ ममता के
अपने थन से उत्पन्न दूध पिलावें । धर्म मार्ग वाले अन्न मांगें और
सेवा करते हुए यज्ञ को बढावें ।६। हे मित्रवरुण ! मैं अपनी रक्षा के लिए
नमस्कार पूर्वक हविदान करूँ । हमारी स्तुतियों के प्रभाव से युद्ध में
शत्रु वशीभूत हों तथा दिव्य वर्षा कर हमको दुखों से पार लगावें ।७। (२२)

१५३ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमा । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।
घृतैर्घृतस्नू अध यद्वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ।१।
प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः ।
अनक्ति यद्वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ।२।
पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ।३।
उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पात पयस उस्रियायाः ।४।२३

हे जल रूप घृत वर्षक मित्रा वरुण ! हम घृत युक्त हवियों से नमस्कार
पूर्वक तुम्हारी पूजा करते हैं । हमारे अध्वर्यु तुमको हवि भेंट करते हैं ।१। हे
मित्रा वरुण ! तुम्हारी स्तुति तेज की प्रेरक है । इसलिये मैं सुन्दर स्तुतियों से
तेज प्राप्त करता हूँ । जो होता तुम्हें पूजने की इच्छा करता और तुम्हें प्रसन्न
करना चाहता है , वह यज्ञ में तुमको पुष्ट युक्त हवि देता है ।२। हे मित्रावरुण
"रातहव्य" के यज्ञ कर्म से प्रसन्न हुए तुमने उसकी गाय को दूध वाली किया
था, वैसे ही यजमान तुम्हें हवि देता हुआ अपनी गायों को अत्यन्त दूध वाली
होने की याचना करता है ।३। हे तेजस्वी पुरुषो ! आपके यज्ञ आदि कार्यों की
वृद्धि हो । आपको पर्याप्त गो दुग्ध उपलब्ध हों ताकि शरीर हर प्रकार से पुष्ट
रहे ।   (४)

१५४ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमा । देवता - विष्णु । छन्द त्रिष्टुप्)

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१॥
प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥२॥
प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥३॥
यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥४॥
तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥५॥
ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥६॥

हम तुम दोनो के उस स्थान को कामना करते है जहां अत्यन्त शक्ति वाली सिद्ध रूप गौएं हैं। स्तुति के योग्य विष्णु का उच्च पद तेज मे परिपूर्ण हैं।६। (२४)

१५५ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमा । देवता- विष्णु । छन्द–त्रिष्टुप जगती)

प्र व: पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चाचत ।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ।१।
त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णु सुतपा वामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथ: ।२।
ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्य नि मातरा नयति रेतसे भुजे ।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिव: ।३।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीलहुष: ।
य: पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरु क्रमिष्टोरुगाय जीवसे ।।४।।
द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्त: पतत्रिण: ।५।
चतुर्भि: साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतींरवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमार: प्रत्येत्याहवम् ।६।२५

मनुष्यो ! अपने रक्षक सोम रूप अन्न को इन्द्र और विष्णु के लिये सिद्ध करो। वे दोनो उन्नत कर्म वाले किसी के बहकावे मे नही आते ।१। हे इन्द्र और विष्णु ! तुम कर्मों के फल देने वाले स्वामी हो। तुम्हारे लिये साधक सोम निचोड कर तैयार करता है। तुम शत्रु द्वारा लक्ष्य कर फेंके गये बाणो से उसकी रक्षा करने मे समर्थ हो।२। सभी आहुतियां इन्द्र के बल वीर्य को पुष्ट करती हैं। इन्द्र वृष्टि से अन्न देते हैं। अन्न रूप वीर्य रज से पुत्र प्राप्ति होती है उसी से तृतीय नाम पौत्र हुआ। प्राणियो की उत्पत्ति इन्द्र और विष्णु के

दया प्राप्त करे ।३। मरुतों को प्रेरणा देने वाले इन विष्णु की इच्छा मे वरुण और अश्विनीकुमार सदा तत्पर रहते हैं । विष्णु ही मित्रयुक्त दिन को प्राप्त कराने वाले श्रेष्ठ बल को धारण करते हुऐ अन्धकार को मिटाकर प्रकाश करते हैं ।४। जो उत्तम कर्म वाले विष्णु और इन्द्र की सेवा मे तत्पर रहते है, वे त्रैलोक्य स्वामी परमात्मा से यजमान को यज्ञ फल का भागी बनाते हैं ।५। .२६)

१५७ सूक्त [बाइसवां अनुवाक]

(ऋषि—दीर्घतमा. । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप जगती)

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्योव्यु षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथ प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥१॥
यद्यु ञ्जाथे वृषणमश्विना रथ घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माक ब्रह्म पृतनासु जिन्वत वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥२॥
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः श न आ वक्षद्द्विपदे चतुष्पदे ।३।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युव मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधत द्वेषो भवत सचाभुवा ।४।
युव ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पती रश्विनावैरयेथाम् ।५।
युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या राथ्येभिः ।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वा हविष्मान्मनसा ददाश ।६।२७

अग्निदेव चैतन्य हुए सूर्य उदित हुए आनन्द दायनी उषा प्रकाश के साथ आई । अश्विदेवों ने रथ को जोड़ा और सवितादेव ने संसार को उत्तम प्रेरणा दी ।१। हे रथ जोतने वाले अश्विदेवो ! हमारी मातृभूमि को मधु और घृत से सिंचित करो । हमारी स्तुतियों को युद्ध मे बलिष्ठ करो । हम युद्ध मे विशाल धन को जीतें ।२। तुम्हारा तीन पहिये वाला धनों से युक्त द्रुतगामी रथ हमारी

स्तुतियों द्वारा प्रत्यक्ष हो और हमारे दुपायें और चौपायों को सुखी बनाओ ।३। हे अश्विद्वय ! तुम हमको धनी बनाओ । मधुर रस से हमें सींचो । हमारी आयु की वृद्धि करो । पाप को दूर करो, वैरियों को हटाओ और हर प्रकार हमारी सहायता करो ।४। हे अश्विद्वय ! तुम गौओं में गर्भ धारण करते हो । तुम अग्नि, जल और वनस्पतियों को प्रेरित करते हो ।५। हे उग्र अश्विद्वय ! तुम औषधि वाले वैद्य हो रथ वाले रथी हो । तुम्हारे निमित्त जो चित्त से हवि देता है, उसे तुम ऐश्वर्य वान बनाते हो ।६। (१०)

द्वितीय अध्याय समाप्तम्

१५८ सूक्त

(ऋषि - दीर्घतमा । देवता - अश्विनौ । छन्द - त्रिष्टुप् पंक्ति ।)

वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ ।
दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वां प्र यत्सस्राथे अकवाभिरूती ।१।
को वां दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गोः ।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरंधीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ।२।
युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः ।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ।३।
उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद्वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ।४।
न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ।५।
दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ।६।

हे अश्विद्वय ! उचथ्य पुत्र दीर्घतमा द्वारा [illegible] (पुत्र [illegible]) को हमें प्रदान करो ।१। हे अश्विद्वय ! [illegible]

नमस्कारों से जिस दया बुद्धि को धारण करते हो, उस धन युक्त बुद्धि को हमारे अभीष्ट पूर्ण होने में लगावें ।२। हे अश्विद्वय ! तुग्र" का जो पुत्र समुद्र में डाला गया था, उसे पार लगाने को तुम्हारा रथ जोड़ा गया था। जैसे तुम द्रुतगामी घोड़ों से युद्ध में पहुँचते हो, वैसे ही मैं तुम्हारी शरण प्राप्त करूँ ।३। हे अश्विद्वय ! यह स्तुतियाँ उचथ्य पुत्र की रक्षा करें। यह गतिमान दिन रात मुझे क्षीण न करें। दश गुने ढेर वाला ईंधन मुझे न जला पावे ! तुम्हारी शरण को प्राप्त मैं पृथिवी पर झुका हुआ हूँ ।४। हे अश्विद्वय ! मातृ रूप नदी का जल भी मुझे न डुबो सका। दस्युओं ने इस वृद्ध को बाँधकर फेंक दिया। "त्रैतन" दास ने जब मेरा सिर काटने की चेष्टा की तब वह स्वयं ही कन्धों से आहत हुआ ।५। ममता की पुत्र दीर्घतमा दश काल पश्चात् वृद्ध हुआ। कर्म फल की इच्छा से स्तुति करने वाले स्तोता रथ युक्त हुए ।६।　　(1)

१५६ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—द्यावापृथिवी । छन्द —जगती)

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥१॥
उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः ।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥२॥
ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये ।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ।३।
ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा ।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ।४।
तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ।५।२

यज्ञों को पुष्ट करने वाली, ज्ञान वर्द्धिनी आकाश पृथवी की मैं पूजा करता हूँ। यजमान उनके पुत्र हैं। वे देवगण के साथ वरणीय धनों से धन देती हो।१।

मैं आकाश रूप पिता और पृथिवी माता के महत्व का चिन्तन करता हूँ। उन उन अत्यन्त पुरुषार्थीयों ने जीवों को प्रकट किया और उनमें अन्नों को बनाया।३। हे आकाश पृथिवी! उत्तम कर्म वाले कुशल पुत्र रूप प्रजागण तुम्हें माता मानते हैं। तुम स्थावर जङ्गम में सत्व स्थापित करने के लिये सूर्य के स्थान की रक्षा करते हो।३। आकाश और पृथिवी एक स्थान से उत्पन्न हुए महोदय हैं। वे प्रजा से युक्त हैं। किरणें उनका विभाजन करती और नवीन सूत्रों को प्रकट करता है।४। हे द्यावा पृथिवी! सविता की प्रेरणा से स्थिर तुमसे हम उस अत्यन्त उत्तम धन की याचना करते हैं। तुम हमको उत्तम वास तथा गवादियुक्त ऐश्वर्य को प्रदान करो।५।

१६०

(ऋषि—दीर्घतमा। देवता—द्यावापृथिव्यौ। छन्द—जगती।)

ते हि द्यावा पृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्य शुचिः ॥१॥
उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भवनानि रक्षत।
सुधृष्टमे वपुष्ये व रोदसी पिता यत्सीमभि रूपरवासयत् ॥२॥
स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्पुनाति धीरो भुवनानि मायया।
धेनुं . . . पयो अस्य दुक्षत।३।
ते . . . . :ौ विश्वशम्भुवा।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे।४।
नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्र द्यावापृथिवी धासयो बृहत्।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम्।५।३

अन्तरिक्ष को नरने से धारण करने वाली आकाश पृथिवी सबको सुख देने वाली है। उनके बीच सूर्य नित्य नियम पूर्वक गमन करता है।१। अत्यन्त विस्तृत और विशाल आकाश और पृथिवी, पिता और माता रूप से सब लोकों का पालन करते हैं। जैसे पिता अपने शिशु को उत्तम

वस्त्रों से आच्छादित करता है ।२। वह माता पिता का भार वहन करने व
गुर्य अपने बल संसार को पवित्र करता है । वह बहुत रङ्गोंवाली पृथिवी
धेनु और पौरुष युक्त आकाश रूप बैल को पवित्र करता हुआ पृथिवी से
रूप दूध को दोहन करता है ।३। देवताओं में श्रेष्ठ वह परमात्मा महान् का
है । उसने आकाश पृथिवी को उत्पन्न किया । उसी ने अपनी प्रजा से दोन
लोकों को नापा और जीर्ण न होने वाले स्तम्भों पर टिका दिया ।४। हे आकाश
पृथिवी ! तुम हमारे लिए महान् ऐश्वर्य और बल को धारण करो, जिससे हम
प्रजाओं का विस्तार करें । तुम हमको बल वाली स्तुति की प्रेरणा करो ।५।(१

१६१ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—ऋभव । छन्द—जगती त्रिष्टुप पंक्ति)

किमु श्रेष्ठ किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्य.ङ् कद्यदूचिम ।
न निन्दिम चमस यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥१॥
एक चमसं चतुरः कृणोतन रज्ञी देवा अब्रुवन्तद्व आगमम् ।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साक देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ।२।
अग्निं दूत प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वं ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ।३।
चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आजगन् ।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टाग्नास्वन्तर्न्यानिजे ।४।
हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान्कन्या नामभिः स्परत् ।५।

वे श्रेष्ठ और युवा हमारे पास आए हैं वे क्या दौत्य कर्म के लिये
आए हैं ? हे अग्ने हमने चमस की निन्दा नहीं की है हमारे उस काष्ठ
के कर्मों को ही कहा है ।१। हे सुधन्वा के पुत्रो ! मैं देवताओं के समान

पास आया हूँ। तुम एक चमस के चार कर दो। ऐसा करने पर देवताओं के साथ तुम भी यज्ञ भाग प्राप्त करोगे ।२। हे देवबन्धुओ! तुमने अग्नि को दूत बनाया है। हमको घोड़ा और गौ बनाकर दो। माता-पिता को युवावस्था दो। इन कार्यों के बाद हम तुम्हारे समक्ष उपस्थित होंगे ।३। हे ऋभुगण! कार्य करने के पश्चात् ही तुमने पूछा कि जो दूत यहाँ आया था वह कहाँ है? जब त्वष्टा ने चमस के चार टुकडे किये तब स्त्रियों को देखकर वह लज्जा से छिप गया ।४। त्वष्टा ने कहा कि जिन्होंने देवगणों के पीने के पात्र चमस की निन्दा की, उन्हें हम मार डालें। तब ऋभुओं ने सोम तैयार होने पर दूसरा नाम दिया और त्वष्टा की कन्या ने भी इसी नाम से पुकार कर प्रसन्न किया ।५।

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवा अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥६
निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन ।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुपदेवा अयातन ॥७
उदमुदक पिवतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिवता मुञ्जनेजनम् ।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये धी सवने मादयाध्वै ॥८
आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसा अपिंशत ॥९
श्रोणमेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् ।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ।१०।५

इन्द्र ने घोड़ों को जोड़ा, अश्विद्वय ने रथ को जोड़ा, बृहस्पति ने गौ, को पुकारा। ऋभु, विभ्वा और वाज यह देवताओं के पास गये यथा यज्ञ भाग प्राप्त किया ।६। हे सुधन्वा-पुत्रो! तुमने अपने कर्मों से चर्म द्वारा गौ को पुनर्जीवन दिया। तुमने वृद्ध माता-पिता को जवानी दी। तुमने अश्व से अश्व उत्पन्न किया और रथ जोड़ कर देवताओं के समक्ष उपस्थित हुए ।७।

हे देवगण ! तुमने कहा था कि 'सुधन्वा-पुत्रो !' मूँज से निचोड़े रस को पीओ या जल पीओ। यदि इन दोनो मे से किसी को नही पीना चाहते हो तो तीसरे सायकाल सोम रस का पान करना।८। एक ने जल को, दूसरे ने अग्नि को और तीसरे ने पृथिवी को सर्वश्रेष्ठ कहा। ऐसी सत्य बात कहते हुए उन ऋभुओं ने चमसों की रचना की।९। एक ने लँगडी को जल की जल की ओर हाँका, दूसरे ने माँस को पृथक किया, तीसरे ने सूर्यास्त से पूर्व ही पुरीष को लिया। माता-पिता पुत्रो का क्या उपकार कर सकते हैं ?।१०।

उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥११
सम्मील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितरा व आसतुः।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥१२
सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत्।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥१३
दिवा यांति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्मां इच्छन्तः शवसो नपातः ॥१४।६

हे ऋभुओ ! तुमने उत्तम कर्म की इच्छा से इन प्राणियों के लिए ऊँचे स्थान में तृणादि को और नीचे स्थान में जलों को प्रकट किया। तुम अब तक सूर्य मण्डल में सोते रहे। अब तुम वैसा कार्य क्यों नहीं करते ? ।११। हे ऋभुगण ! जब तुम भुवनों को छिपाकर चारों ओर फिरते हो, तब तुम्हारे माता-पिता कहाँ रहते हैं ? जो तुम्हारा हाथ पकड़ कर याचना करते हैं, तुम उन्हें वचन देते हो। जो तुम्हारी प्रशंसा करता है, उसे तुम अग्रणी बनाते हो।१२। हे ऋभुओ ! सूर्य मण्डल में सोने के पश्चात् चैतन्य होकर तुमने पूछा कि 'किसने हमें जगाया ?' सूर्य ने कहा कि 'वायु ने तुम्हें जगाया।' वर्ष भर बीत गया, अब फिर अपने कर्मों को प्रकाशित करो।१३। हे ऋभुओ !

हे देवगण ! तुमने कहा था कि 'गुधन्या-पुत्रो !' मूँज से निचोडे रस को पं या जल पीओ। यदि इन दोनों में से किसी को नहीं पीना चाहते हो तो ती सायकाल सोम रस का पान करना।८। एक ने जल को, दूसरे ने अग्नि और तीसरे ने पृथिवी को सर्वश्रेष्ठ कहा। ऐसी सत्य बात कहते हुए उन ऋभु ने चमसों की रचना की।९। एक ने लँगड़ी को जल की जल की ओर हाँ दूसरे ने मांस को पृथक किया, तीसरे ने सूर्यास्त से पूर्व ही पुरीष को उ लिया। माता-पिता पुत्रों का क्या उपकार कर सकते हैं ?।१०। (

उद्वत्स्वरमा अकृणोतना तृण निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्य दभृभा नानु गच्छथः ॥११
सम्मील्यः यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितरा व आसतुः।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥१२
सुपुप्वास ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इद नो अबूबुधत्।
श्वान वस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥१३
दिवा याति मरुतो भूम्याग्निरय वातो अन्तरिक्षेण याति।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्त. शवसो नपातः ॥१४।६

हे ऋभुओ ! तुमने उत्तम कर्म की इच्छा से इन प्राणियों के लिए ऊँचे स्थान में तृणादि को और नीचे स्थान में जलों को प्रकट किया। तुम अब तक सूर्य मण्डल में सोते रहे। अब तुम वैसा कार्य क्यों नहीं करते ?।११। हे ऋभुगण ! जब तुम भुवनो को छिपाकर चारो ओर फिरते हो, तब तुम्हारे माता-पिता कहाँ रहते हैं ? जो तुम्हारा हाथ पकड कर याचना करते है, तुम उन्हे वचन देते हो। जो तुम्हारी प्रशसा करता है, उसे तुम अग्रणी बनाते हो ।१२। हे ऋभुओ ! सूर्य मण्डल में सोने के पश्चात् चैतन्य होकर तुमने पूछा कि 'किसने हमें जगाया ?' सूर्य ने कहा कि 'वायु ने तुम्हें जगाया।' वर्ष भर बीत गया, अब फिर अपने कर्मों को प्रकाशित करो।१३। हे ऋभुओ !

तुममे मिलने को मरुद्गण आकाश से आ रहे हैं। अग्नि पृथिवी से और वायु अन्तरिक्ष से तथा वरुण जल रूप समुद्र मार्ग से चले आते हैं।१३। (६)

१६२ सूक्त

(ऋषि दीर्घतमा । देवता मित्रादयो लिङ्गोक्ता । छन्द–त्रिष्टुप् पंक्ति, जगती)

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुत. परि ख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्ते प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥१
यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य राति गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णो प्रियमप्येति पाथः ॥२
एषच्छाग. पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्य. ।
अभिप्रय यत्पुरोलाशमर्वता त्वष्टेदेन सौश्रवसाय जिन्वति ॥३
यद्धविष्यमृतुशो देवयान त्रिर्मानुषाः पर्यश्व नयन्ति ।
अत्रा पूष्ण. प्रथमो भाग एति यज्ञ देवेभ्य प्रति वेदयन्नज. ॥४
होताध्वर्यु रावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शस्ता सुविप्र' ।
तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥५।७

मित्र, वरुण अर्यमा, वायु, इन्द्र और मरुद्गण हमसे वियुक्त न हो। हम देवताओ के अत्यन्त वेगवान् अश्व के वीरतापूर्ण कर्मों का यज्ञ मे वर्णन करते हैं।१। हम चमकते हुए वस्त्रो सुवर्णयुक्त आभूषणो से सुसज्जित अश्व के आगे विभिन्न वर्ण वाली सामग्री ले जाते हैं, वह इन्द्र और पूषा के लिये प्रिय हो।२। सब देवगण से योग्य पूषा का भाग आगे ले जाया जाता है, जिसे त्वष्टा अत्यन्त पुष्टिप्रद बनने के लिये प्रेरित करते हैं।३। जहाँ मनुष्य नियत काल मे देवगण के प्राप्त कराने योग्य अश्व को घुमाते हैं, वहाँ पूषा का भाग देवताओ के यज्ञ को प्रख्यात करता हुआ चलता है।४। होता, अध्वर्यु, प्रति प्रस्थाता, अग्नीत् ग्राव-स्तुत, प्रशस्ता ये सब अत्यन्त शोभित हुए हमारे हवियो वाले यज्ञ नदियो को पूर्ण करे।५। (५)

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥६
उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥७
यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥८
यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥९
यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥१०॥८

यूप काटने वाले, यूप ढोने वाले, यूप के लिये चषाल को गढ़ने वाले और यज्ञ के लिये आवश्यक बर्तन तैयार करने वाले, इन सबका प्रयत्न हमको उत्साहजनक हो।६। उज्ज्वल पीठ वाला अश्व देवगण की ओर मुख करके गया है। मेरा स्तोत्र रुचिकर है। मेधावी ऋषि इसका समर्थन करते है। देवगण को पुष्ट करने के लिये हमने यह उत्तम मन्त्र तैयार किया है।७। वेगवान् अश्व की रास और मुख मे डाली हुई घास आदि अथवा अश्व की जो भी वस्तुयें हो, वे सब देवताओ की हो।८। जो कच्चा भाग मक्खी खाती है और जो भाग तापदायक कर्मों मे लग जाता है तथा जो भाग कार्यरत पुरुषो के हाथ मे लग जाता है, वह सब देवगण के अधीन हो।९। थोड़े पके अन्न और गन्धयुक्त खाद्य सामग्री को सिद्ध करने वाले उत्तम प्रकार से शुद्ध क[रें]
प्रस्तुत करें।१०।

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥११
ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हे

ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२
यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परिभूषन्त्यश्वम् ॥१३
निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥१४
मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं देवास प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥१५॥६

हे अश्व ! क्रोधाग्नि द्वारा, जलते हुए तेरे शरीर से जो अत्यन्त स्वेद रूप रस टपके, वह भूमिसात् न हो जाय, बल्कि उससे देवगण का उत्साहवर्द्धन हो ।११। जो अश्व को अत्यन्त क्रोधित देखते हैं वे उसके सामने से हट जाने को कहते हैं । तब उसके उत्तम दिखाई देने के कारण सभी वीर उसे प्राप्त करने की याचना करते हैं, इससे भी अश्व स्वामी और वीर का उत्साह वर्द्धन होता है ।१२। मन को अच्छे लगने वाले, परिपाक करने वाले, सिंचन योग्य जो पात्र हैं, उनसे अश्व को सुभूषित करते हैं ।१३। अश्व का भागना, बैठना, लेटना, जल पीना खाना जो कुछ कर्म है वे सब देवताओं के अधीन हों ।१४। हे अश्व ! तुझे अग्नि का आँखो में घुस जाने वाला धुँआ कभी पीड़ित न करे । तुझ सुन्दर अश्व को देवगण स्वीकार करें ।१५।   (६)

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
सन्दानमर्वन्तं पड्बीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥१६
यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥१७
चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥१८
एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥१९

मा त्वा तपत्प्रिय आत्माभियन्त मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत्ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥२०
न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवां इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥२१
सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्रा उत विश्वापुष रयिम् ।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ।२२

जो अश्व को वस्त्राभूषणो से सजाते हैं, वे देवगण को प्रसन्न क[illegible] हैं ।१६। हे अश्व ! तेरे हाँफने अथवा थम जाने पर तुझे जो कष्ट हुआ है, उ[illegible] मैं मन्त्र द्वारा निवृत्त करता हूँ ।१७। हे वीरो ! वेगवान् अश्व की पीठ [illegible] पसलियों पर शस्त्र पहुंच सकता है इसलिये उसके शरीर को निरावरण [illegible] करो । उसे अभ्यास द्वारा पूर्ण शिक्षित बनाओ ।१८। हे अश्व ! चतुर पुरु[illegible] तुझ पर नियन्त्रण रखे । तेरे अङ्गों को मैं कुशल नियन्ता के अधिकार मे[illegible] करूँ ।१९। हे अश्व ! चलते समय तुझे कोई पीडित न करे । तेरे शरीर में शस्त्र प्रविष्ट न हो । कोई मूर्ख मनुष्य लोभवश तेरे शरीर पर आघात न करे ।२०। हे अश्व ! तू मृत्यु को प्राप्त न हो, पीडित भी न हो, उत्तम मार्गों से गमन करे । युद्ध में इन्द्र और मरुद्गण के अश्व तेरे साथी रहेंगे । अश्विदेवों के रथ मे रासभ के स्थान पर भी कोई अश्व जोता जायगा ।२१। यह अश्व सुन्दर गवादियुक्त धनो से, एवं पुत्रादि से युक्त कराने वाला हो । अदिति हमारे पापों को दूर करें । यह अन्नयुक्त धन हमको बल प्रदान करे ।२२। (१०)

१६३ सूक्त

(ऋषि दीर्घतमाः । देवता अश्वाग्नि. प्रभृति । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ।१
यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र [illegible] प्रथमो अध्यति[illegible]

गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥२
असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥३
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥४
इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥५॥११

हे अश्व ! तुम्हारा जन्म अभिकथन योग्य है। तुम अन्तरिक्ष या जल से निकलकर अत्यन्त शब्द करते हो। तुम्हारे बाज के समान पङ्ख और हरिण के समान पैर हैं।१। यम द्वारा दिये गये इस अश्व को त्रित ने जोड़ा। इन्द्र इस पर प्रथम बार सवारी की। गन्धर्व ने इसकी रास पकड़ी। हे देवताओ ! तुमने इसे सूर्य से प्राप्त किया।२। हे अश्व ! तू यम रूप है, सूर्य रूप है और गोपनीय नियम वाला त्रित है। तू सोम से युक्त है। आकाश में तेरे बन्धन के तीन स्थान बताये जाते हैं।३। हे अश्व ! आकाश, जल और अन्तरिक्ष में तेरे तीन-तीन बन्धन स्थान बतलाये जाते हैं। तू ही वरुण है और जहाँ तेरा जन्म स्थान है, उसे बतलाते हैं।४। हे अश्व ! यह तुमको पवित्र करने वाले स्थान हैं। यह तुम्हारे पदचिह्नों वाले स्थान हैं। यहाँ तुम्हारी कल्याणकारिणी रासें रखी हैं यज्ञ-पालक इनकी रक्षा करते देखे जाते हैं।५।   (११)

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥६
अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानळादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥७
अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥८
हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।

देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्त प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥६
ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमास स शूरणासो दिव्यासो अत्याः ।
हंसाइव श्र णिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वा. ॥१०॥१२

हे अश्व ! मैंने तुम्हारे शरीर को अपने मन से ही पहचान लिया तुमको आकाश में उड़ते हुए देखा है । तुम धूल रहित मार्गों से जाने का करते हो । तुम द्रुत गति से चलते हुए सिर को ऊँचा उठाते हो ।६। हे अ तुम्हारा श्रेष्ठ शरीर पृथिवी पर अन्नों के जीतने के लिए घूमता है । जब म तुम्हारे भक्षणार्थ तृणादि लाता है तब तुम उसे प्रसन्नता से खाते हो ।७ अश्व ! तुम्हारे पीछे रथ चलते हैं । मनुष्य, गौ आदि भी तुम्हारे पीछे चलते हैं । नारियों का सौभाग्य तुम्हारे पीछे चलता है । अन्य अश्व तुम्हे साथ चलते हुए मित्र-भाव रखते हैं । देवगण तुम्हारे पीछे वीर्य, कर्म के प्रश है ।८। इस अश्व का सिर सोने से सुसज्जित है । इसके पावों मे लोहे आवरण चढा है । देवता भी इससे आकंपित होते हैं । इन्द्र इस अश्व पर प्रथम सवार हुए ।९। जब यह घोडा मध्य मार्ग मे चलता है तब उसके सा अश्वों के साथ चलती हुई कतार हंसो की पंक्ति जैसी लगती है ।१०। (१२

तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वातइव ध्रजीमान् ।
तव श्रृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥११
उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दोध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥१२
उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वां अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वर्याणि ॥१३॥१३

हे अश्व ! तू उड़ने मे समर्थ है । तू वायु-वेग से चलता है । तू विविध स्थानों मे भ्रमणशील है ।११। कुशल अश्व रण क्षेत्र की ओर जाता हुआ स्तुति के योग्य होता है । अन्य घोड़ा जो उसके साथ न जाने हुए भी इसका बं

बन्धु रूप है, साथ चलता है। मेधावी वीर उसके साथ आगे बढ़ते हैं।१२। ऐसा अश्व उत्तम स्थान को प्राप्त हुआ वीर देवताओं के पास पहुंचता है। उसे प्रदान करने वाला अश्व स्वामी यजमान वरणीय धन प्राप्त करता है।१३। (१२)

१६४ सूक्त

(ऋषि - दीर्घतमा । देवता विश्वेदेवा प्रभृति । छन्द-त्रिष्टुप् जगती प्रभृति)

अस्य वामनस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्न ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्य विश्पति सप्तपुत्रम् ॥१
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थु ॥२
इम रथमधि ये सप्त तस्थु सप्त वहन्त्यश्वा ।
सप्त स्वसारो अभि स नवन्ते यत्र गवा निहिता सप्त नाम ॥३
को ददर्श प्रथम जायमानमस्थन्वन्त यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत् ॥४
पाक पृच्छामि मनसाविजानन्देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥५॥१४

आह्वान योग्य, सुन्दर, सर्व के मध्यम भ्राता वायु और कनिष्ठ भ्राता अग्नि हैं। मैं यहाँ प्रजापालक सात किरणों से युक्त सूर्य को देखता हूँ।१। एक पहिये वाले रथ में सात घोड़े जुतते हैं। इस अक्षर और तीन नाभि वाले पहिये को एक घोड़ा ले जाता है। सभी लोक इस पहिये के आश्रित हैं।२। सात पहिये वाले सप्तोदक्ष रथ को सात घोड़े चलाते हैं। किरण रूप सात बहनें इस रथ के आगे चलती हैं।३। प्रथम अन्न वाले को किसने देखा ? इस अस्थि रहित ने अस्थियुक्त को धारण किया। पृथिवी पर प्राण और रक्त उत्पन्न हुआ परन्तु आत्मा कहाँ से उत्पन्न हुई ? इस विषय को जानने के लिए विद्वान् के पास कौन जाता ? ।४। मैं अज्ञानी हूँ। मनन न करने के कारण ही यह सब पूछता हूँ। वत्सरूप यज्ञ के लिये विद्वानों ने कालरूप को

रस्सी प्रकट की, वे क्या है ? ('नवयुवक बछड़े' से तात्पर्य ग्रह नक्षत्रादि का है और सात सूत्र की रस्सी का अर्थ सूर्य की आकर्षण शक्ति से है) ।५। (१४)

अचिकित्वाश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि विद्मने न विद्वान्।
वि यस्तस्तम्भ षलिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥६
इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहित पद वेः।
शीर्ष्णः क्षीर दुह्रते गावो अस्य वव्रि वसाना उदक पदापुः ॥७
माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा स हि जग्मे।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥८
युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः।
अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥९
तिस्रो मातृस्त्रीन्पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥१०॥१५

मैं अज्ञानी होने के कारण पूछता हूँ जिसने इन छः लोकों को स्थिर किया है वे अजन्मा क्या एक ही है ? ।६। कौन इस आदित्य रूप पक्षी के स्थान का ज्ञाता है ? इसकी किरण रूप गौएं तेज का दोहन करती हैं, वे जल पीने जाती है ।७। पृथिवी माता आकाशस्थ सूर्य को वृष्टि के लिये पूजती है। वह गर्भेच्छा से वर्षा रूप गर्भ से सींची गई, तब मनुष्यों से अन्न प्राप्त कर स्तुति की ।८। प्रदक्षिणा करती हुई पृथिवी गर्भभूत जल राशि के लिये ठहरी, तब वृष्टि रूप वत्स ने शब्द किया और विश्व रूप वाली गौ शस्य-श्यामला हुई ।९। ये आदित्य तीन माता और तीन पिताओं को धारण करता हुआ उच्च स्थान पर स्थित है। वे थकते नहीं देवगण आकाश की पीठ पर बैठे हुये सूर्य के सम्बन्ध में चर्चा करते है ।१०।

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य। (१५)
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥११

अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद्देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥१८
ये अर्वाञ्चस्तां उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्तां उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥१९
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥२०॥१७

किरणे स्त्री रूप होकर भी पुरुष के समान हैं । उन्हे नेत्रवान् मेधावी ही जानते है । जो जान लेते हैं, वे पितामह अनुभवी हैं ।१६। आकाश से नीचे पृथिवी के ऊपर वत्स को धारण करती हुई किरण ऊपर उठती हैं । वे कहा जाती और कहाँ सोती है ? ।१७। जो आकाशस्थ सूर्य और पृथिवी पर स्थित अग्नि की उपासना करते हैं, वे अवश्य ही विद्वान् हैं । इन बातों को किसने बताया ? कहाँ से यह दिव्याचरण वाला मन उत्पन्न हुआ ।१८। जो इधर आते है, वे उधर जाने वाले भी कहे जाते हैं । जो उधर जाते हैं उन्हें इधर आने वाला कहा जाता है । सोम और इन्द्र ने जो लोक बनाये वे प्राणी मात्र का भार वहन करते है ।१९। दो पक्षी वृक्ष पर रहते हैं । उनमे से एक स्वादिष्ट फल खाता है और दूसरा कुछ नही खाता, केवल देखता है । (जीवात्मा और परमात्मा दो पक्षी है । एक सांसारिक भोगो मे लिप्त है और दूसरा केवल देखता है ।) ।२०। (१७)

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥२१
यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥२२
यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥२३
गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।

वाकेन वाक द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मितते सप्त वाणी ॥२४
जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्त्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ।२५।१८

जिसमे प्राणी अमर भाव के चिन्तनार्थ निरन्तर स्तुति करते हैं, वह लोक पालक, सबका स्वामी मुझ मूर्ख मे भी विद्यमान है ।२१। जिस वृक्ष मे सभी मधुर रस के इच्छुक निवास करते और प्रजोत्पत्ति मे लगे रहते हैं, उसके अग्रभाग मे स्वादिष्ट फल लगे बताते है । जो व्यक्ति पिता को नहीं जानता, वह इसके फल को नही पा सकता ।२२। पृथिवी पर गायत्री छन्द, अन्तरिक्ष में त्रिष्टुप छन्द और आकाश मे जगती छन्द जिसने स्थापित किया, उसे जो जानता है, वह देवत्व प्राप्त कर चुका है ।२३। गायत्री छन्द से जिन्होंने ऋचायें बनाईं, ऋचाओं से साम की रचा, त्रिष्टुप् छन्द से यजुर्वाक्य बनाया, दो पद और चार पद वाली वाणी से वाक् रचना की । अक्षर से सात छन्द बनाये ।२४। जगती से आकाश मे जलो को स्थापित किया, रथन्तर साम मे सूर्य को देखा । गायत्री के तीन चरण हैं, अत वह बल और महत्व मे सबसे बढ़ी हुई है ।२५। (१८)

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥२६
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥२७
गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥२८
अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥२९
अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥३०

मैं इस सरलता से दुही जाने वाली गौ को बुलाता हूँ । कुशल दोहन-

कर्त्ता इसे दुहे। सविता हमको उत्साहित करें। मैं उनके तेज के लिए आह्वान करता हूँ।२६। बछड़े की इच्छा से रंभाती हुई दुग्धवती धेनु हमको प्राप्त हुई। वह अहिंसा के अयोग्य, अश्विनी कुमारों के लिए दूध दे, सौभाग्य लाभ के लिए बढ़े।२७। आँखें मींचते हुए बछड़े के पीछे शब्द करती हुई धेनु बछड़े के मुख को चाटती है। उसके होठों को थन से लगाने की इच्छा से बढ़ती हुई रंभाती है। उसके थनों में दूध पूर्ण हो जाता है।२८। बछड़ा निःशब्द गौ के चारों ओर घूमता। गौ रंभाती हुई अपनी पशु चेष्टाओं से मनुष्य को लेजाती परन्तु उज्ज्वल दूध देकर उसे प्रसन्न करती है।२९। चञ्चल मन वाला, श्वास युक्त जीव अपने घर में अविचल रूप में रहता है। मरण धर्म वालों के अन्न से युक्त होता हुआ वह अमर जीव स्वधा भक्षण करता हुआ रहता है।३०। (१६)

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥३१
य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहु प्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥३२
द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।
उत्तानयोश्चम्वो योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥३३
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥३४
इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥३५॥२०

मैंने इन रक्षक आदित्य को अन्तरिक्ष में गमन करते देखा है। वे किरणयुक्त वस्त्रों से आच्छादित हुए सब लोकों में विचरते हैं।३१। जिसने इसे रचा, वह भी इसे नहीं जानता। जिसने इसे देखा उससे वह छिपा है। वह माता गर्भ में टिका हुआ बहुत प्रजा वाला नाश को प्रा

मेरा पालनकर्ता पिता है, विस्तीर्ण पृथिवी मेरी माता है। आकाश पृथिवी के मध्य अन्तरिक्ष योनि रूप है, वहाँ पिता गर्भस्थापन करता है।३३। मैं तुम से पृथिवी की छोर पूछता हूँ। ससार की नाभि कहाँ है? यह जानना चाहता हूँ। अश्व का वीर्य कहाँ है और वाणी का परम स्थान कौनसा है?।३४। वेदि पृथिवी का अन्त है। यज्ञ ससार की नाभि है। सोम अश्व का वीर्य है। ब्रह्मा वाणी का परम स्थान है।३५। (२०)

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चित परिभुव परि भवन्ति विश्वत ॥३६
न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्य सन्नद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्या ॥३७
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनि.।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्य न्य चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥३८
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदु.।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥३९
सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वय भगवन्त स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानी पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥४०।२१

लोक के वीर्य रूप सात आधे गर्भ विष्णु की आज्ञा से नियमों मे रहते हैं। वुद्धि और मन के द्वारा लोक को सब ओर से घेर लेते हैं।३६। मैं नहीं जानता कि मैं क्या हूँ? मैं मूर्ख और अर्द्ध विक्षिप्त के समान हूँ। जब मुझे ज्ञान का प्रथमांश प्राप्त होता है, तभी मैं किसी वाक्य को समझ पाता हूँ।३७। अमर, मरणधर्मा के साथ रहता है। अन्नमय शरीर पाकर वह कभी ऊपर, कभी नीचे जाता हैं। वह दोनों विरुद्ध गति वाले हैं। ससार उनमे एक को पहचानता है, परन्तु दूसरे को नहीं जानता। (जीव अमर है और शरीर मर जाता है। ससार शरीर को तो भली प्रकार जानता है पर जीव के विषय मे भ्रम मे पड़ा है।३८। ऋचायें उच्च स्थान को प्राप्त हैं। सब देवता उन पर आश्रय लिये हुवे हैं जो इस बात को नहीं जानता

यह ऋचा से क्या लाभ उठायेगा ? जो इसे जानता है, वही प्रसन्न रहता है ।. ६। हे सिंहा के अयोग्य, सुन्दर भाग्य वाली धेनु ! तू तृण सेवन करने वाली है । इनको भी भाग्यशाली बना । तू घास खाती हुई निर्मल जल पीने वाली हो ।४०। (१९)

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ।।४१
तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।
ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति ।।४२
शकमयं धूममारादपश्यं विषुवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।।४३
त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमेको अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ।।४४
चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ।।४५
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।।४६।।२२

जलों को प्रेरणा करने वाली बिजली शब्दवान् हुई । वह उन्नत आकाश में एक, दो, चार, आठ और नौ पदों से युक्त सहस्र अक्षर वाली हुई है ।४१। उसी बिजली से समुद्र प्रवाहित है, उससे चारों दिशायें स्थित है । उससे मेघ जल-वर्षा करते है और उसी से संसार प्राणवान् है ।४२। मैंने गोबर से उत्पन्न धूम को दूर से देखा । चारों दिशाओं में व्याप्त धूम के मध्य अग्नि को देखा । ऋत्विजों ने यहाँ सोम पान किया । यह उनका प्रथम कर्म है ।४३। केशयुक्त तीन देवता । नियम क्रम से दर्शन देते हैं । एक वर्ष में बोता है एक बलों से संसार को देखता है और एक का रूप दिखाई नहीं पड़ता, केवल गति ही दिखाई पड़ती है (यहाँ सूर्य अग्नि और वायु से अभिप्राय है ।) ।४४। वाणी चार प्रकार की है ।

विद्वान् उसके ज्ञाता है। उसके तीन पद अज्ञात है और चौथे पद को मनुष्य बोलते हैं ॥४५॥ उसे इन्द्र, मित्र या वरुण कहते हैं। वही आकाश में सूर्य है। वही अग्नि, यम और मातरिश्वा है। मेधावी जन एक ब्रह्म का अनेक रूप मे वर्णन करते है ॥४६॥ (२२)

कृष्ण नियान हरय सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ।४७।
द्वादश प्रधयश्चक्रमेक त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिता षष्टिर्न चलाचलास ।४८।
यस्ते स्तन. शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद्य सुदत्र' सरस्वति तमिह धातवे क. ।४९।
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाक महिमान' सचन्त यत्र पूर्व साध्य. सन्ति देवा: ।५०।
समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभि ।
भूमि पर्जन्या जिन्वन्ति दिव जिन्वन्त्यग्नय ।५१।
दिव्य सुपर्ण वायस बृहन्तमपा गर्भ दर्शतमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्त सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ।५२।२३

काले मेघ रूप घोसले में किरण रूप सुनहरे पक्षी जल को प्रेरित करते हुए आकाश में उड़ते है। जब वे आकाश से लौटते है तब पृथिवी जल से भीग जाती है ॥ ४७ ॥ जिस रथ के बाहर घेरे एक चक्र और तीन नाभियाँ है, उस रथ का ज्ञाता कौन है ? उसमें तीन सौ साठ मजबूत खूँटी है वे कभी ढीली नहीं होती (इसका आशय वर्ष और उसके दिनों की संख्या से है) ॥ ४८ ॥ हे सरस्वती ! तुम्हारा शरीरस्थ स्तन सुखदायक और वरणीय वस्तुओं का पोषक है। रत्नधारक और दानदाता है। उसे हमारी ओर प्रेरित करो ॥४९॥ यजमानों ने अग्नि से यज्ञ किया। वही प्रथम धर्म था, वे धर्मवान् अपने महत्व से स्वर्ग पा सके। वहीं साध्य देवता निवास करते है ॥५०॥ जल का एक ही रूप है। यह कभी ऊपर जाता, कभी नीचे आता

है। मेघ वर्षा द्वारा पृथिवी को तृप्त करते हैं और अनिष्ट आकाश को प्राप्त करती है ॥ ५१ ॥ जलों और औषधियों के कारणभूत, सम्मुख प्राप्त हुए स्तोताओं के लिये मैं वर्षा से तृप्त करता हूँ ॥५२॥ (११)

१६५ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्य । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति।)

कया शुभा सवयसः सनीलाः समान्यः मरुतः स मिमिक्षुः ।
कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृष्णो वसूया ।१।
कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त ।
श्येना इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ।२।
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।
स पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ।३।
ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः ।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ।४।
अतो वयमन्तमेभिर्युजानः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः ।
महोभिरेतां उप युज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ।५।२४

(इन्द्र) समवयस्क और सम स्थान वाले मरुद्गण समान शोभा से युक्त हैं। ये किस मत से, किस देश से आये हैं? क्या यह वीर धन लाभ की इच्छा से बल की पूजा करते हैं ॥१॥ तरुण मरुद्गण किस की हवियाँ ग्रहण करते हैं? उनको यज्ञ से कौन हटा सकता है? अन्तरिक्ष में विचरने वाले बाज पक्षी के समान इन मरुतों का किस श्रेष्ठ स्तोत्र द्वारा स्तवन करें ॥ २ ॥ (मरुद्गण) हे श्रेष्ठ कर्म वालों का पालन करने वाले इन्द्र! तुम अकेले कहाँ जाते हो? तुम्हारा अभीष्ट क्या है? हे शोभनीय! तुम सब की बात पूछते हो, हमसे जो कहना चाहो, हमसे जो कहना चाहो, कहो ॥ ३ ॥ (इन्द्र) यह स्तुतियाँ और निष्पन्न सोम मुझे सुख देते हैं। मेरा दृढ़ वज्र शत्रुओं ... ... आता।

अनुकूल होते हैं। स्तव और उनके स्तोत्र मुझे प्राप्त होते हैं, यह दोनों अश्व मुझे ले जाते हैं ॥४॥ (मरुद्) हे इन्द्र! निकट रहने वालों के साथ रहते हुए हम अपनी शक्ति से शरीरों को सजाते हैं। अपने बल से इन अश्वों को रथ में जोतते हैं। तुम हमारे स्वभाव को जानते ही हो ॥५॥ (२४)

क्व स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये ।
अहं ह्यु ग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥६॥
भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥७॥
वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥८॥
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥९॥
एकस्य चिन्मे विभ्व स्त्वोजो या नु दधृष्वान्कृणवै मनीषा ।
अहं ह्यु ग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥१०॥२५

(इन्द्र) हे मरुद्गण ! वृत्र वध के कार्य में तुमने मुझे अकेला ही लगाया तब तुम्हारा पूर्ववत् स्वभाव कहाँ था ? मैं विकराल बली और दुर्जय हूँ। मैंने अपने शत्रुओं पर वज्र से विजय प्राप्त कर ली है ॥६॥ (मरुद्) हे वीर ! तुमने हमारे साथ मिलकर बहुत वीर कर्म किया है। हे महाबली इन्द्र ! हम मरुद्गण भी अपने मनो बल से जो चाहें वह कर सकते हैं ॥७॥ (इन्द्र) हे मरुतो ! मैंने अपने क्रोध के बल से वृत्र का वध किया। मैंने ही वज्र धारण कर मनुष्यों के लिये जल-वृष्टि की ॥८॥ (मरुद्) हे ऐश्वर्य-शालिन् ! हे इन्द्र ! तुम से बढ़कर कोई धनी नहीं है। तुम्हारे समान कोई प्रसिद्ध देवता नहीं है। तुम्हारे कर्मों की समानता न कोई पहिले कर सका और न अब कर सकता है ॥९॥ (इन्द्र) हे मरुद्गण ! एक मेरा बल ही सर्वत्र रहता है। मैं अत्यन्त मेधावी और प्रसिद्ध उग्रकर्मा हूँ। मैं जो चाहूँ वही करने में समर्थ हूँ जो धन संसार में है, उनका मैं स्वामी हूँ ॥१०॥ (२५)

अमन्दन्मा मरुत स्तोमो अत्र यन्मे नर श्रुत्यं ब्रह्म चक्र।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥११॥
एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥१२॥
कोन्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखींरच्छा सखायः।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥१३॥
आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा।
ओ षु वर्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत ॥१४॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५॥२६

(इन्द्र) हे मरुतो ! तुम्हारे स्तोत्र से मैं आनन्दित हुआ हूँ। इस स्तोत्र तुमने मुझे पूज्य मान कर रचा है। मैं तुम्हारा मित्र और अभीष्ट फल देने वाला हूँ ॥ ११ ॥ (इन्द्र) हे मरुतो ! तुमने अनिंद्य यश और श्रेष्ठ बलों को धारण कर मेरे निमित्त प्रकट होकर मुझे आनन्दित किया मैं अब भी तुम्हारे कर्मों से हर्षित हूँ ॥ १२ ॥ (अगस्त्य) हे मरुतो ! यहाँ कौन तुम्हारी स्तुति करता है ? तुम सबके मित्र हो। अपने मित्र उपासक के पास जाओ। तुम उत्तम धनों की प्राप्ति में कारणभूत बनते हुए कर्मों की प्रेरणा करो ॥ १३ ॥ सेवा करने वाले से प्रसन्न होकर पारितोषिक देने के समान इन्द्र ने मुझे कवित्व प्रदान किया। हे मरुद्गण ! तुम स्तुतिकर्ता के सामने आओ ॥ १४ ॥ हे मरुद्गण ! मान-पुत्र मान्दार्य कवि का यह स्तोत्र तुम्हारे निमित्त हो। तुम मेरे शरीर को बल देने के लिये अन्न के सहित पधारो। हम अन्न, बल और दान वृद्धि को प्राप्त करें ॥१५॥ (१६)

॥ तृतीय अध्याय समाप्तम् ॥

१६६ सूक्त [तेईसवाँ अनुवादक]

(ऋषि-मैत्रावरुणाऽगस्त्य । देवता-मरुत । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्, पंक्ति)

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ।१
नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीलन्ति क्रीला विदथेषु धृष्वयः ।
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ।२।
यस्मा ऊमासो अमृता रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ।३।
आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ।४।
यत्त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।
विश्वो वो अज्मन्भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ।५।१

हे महान् गर्जनशील मरुतो ! तुम इन्द्र के ध्वज रूप एवं वेगवान् गण हो। हम तुम्हारे पुरातन महत्व को कहते हैं। हे समर्थ ! तुम तेजस्वी हुए योद्धाओं के समान वीर-कर्म करते हो।। १ ।। युद्ध में शत्रुओं का घर्षण करने वाले, शिशु के समान मधुर क्रीडायुक्त इन्द्र पुत्र मरुद्गण नमस्कार करने वाले की रक्षा करते हैं। वे हविदाता को दुःखी नहीं होने देते ॥ २ ॥ मृत्यु से रक्षा करने वाले मरुद्गण हविदाता को अत्यन्त धन देते हैं। उसके प्रदेश के मित्रो के सम, वर्षा से सींचते हैं ।।३।। हे मरुद्गण ! तुमने अपने बल से देशों का भ्रमण किया है। तुम्हारे वाहन आगे उड़ते हैं तब सब लोक कम्पित होते हैं। हथियार उठाकर चलने वाले वीर को देखकर सब कांपते हैं, वैसे ही यह घर तुम्हारी गति से कांपते हैं ।।४।। हे मरुतो ! तुम तेज वान्, गतिमान् मनुष्यों के हितकारी और पर्वतों को गुंजाने वाले हो। तुम आकाश की पीठ को कंपाते हो तुम्हारे डर से वृक्ष रथ पर चढ़ी हुई स्त्री के समान इधर से उधर हिलते हैं ।।५।। (१)

तद्वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इन्द्रश्चन त्यजसा विह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ।।१२।
तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत ।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ।।१३।
येन दीर्घं मरुतः शूशवाम युष्माकेन परीणसा तुरासः ।
आ यत्ततनन्वृजने जनास एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम् ।।१४।
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।।१५।३

महान् महिमा वाले बलवान् ऐश्वर्यवान्, आकाश के नक्षत्रों के समान देदीप्यमान, गम्भीर, ध्वनियुक्त, सुन्दर जिह्वा और मधुर गान वाले मरुद्गण गर्जनशील हुए इन्द्र के सहयोगी है ।।११।। उत्तम प्रकार से प्रकट हुए मरुतो ! तुम्हारा नाम अदिति के नियम के समान स्थिर है । इसलिए तुम महान् हो ! जिस उत्तम कर्म वाले को तुम धन देते हो, उसके धन को इन्द्र भी नहीं छीनते ।।१२।। हे अविनाशी मरुतो ! तुमने अपने बन्धु भाव के कारण प्राचीन स्तोत्रों की भली भाँति रक्षा की है। तुमने मनुष्यों की स्तुति स्वीकार कर उन्हें कर्मों का ज्ञान दिया ।। १३ ।। हे वेगवन्त मरुद्गण ! हम तुम्हारी कृपा से चिरकाल तक वृद्धि को प्राप्त हों। जिन कर्मों से मनुष्य विजयी होता तथा ऐश्वर्य प्राप्त करता है, अपनी उस अभिलाषा को मैं इन यज्ञों से प्राप्त करूँ ।। १४ ।। हे मरुद्गण ! मान-पुत्र मान्दार्य ऋषि का यह स्तोत्र और वाणी तुम्हारे निमित्त हो, तुम हमारे शरीर को बल देने के लिए अन्न के साथ आओ। हम अन्न बल और दानशील स्वभाव को प्राप्त करें ।।१५।।   (३)

१६७ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्य । देवता—इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप्, पंक्ति)

सहस्रं त इन्द्रोतयो न सहस्रमिषो हरिवो गूर्ततमाः ।
सहस्रं रायो मादयध्यै सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः ।।१।

यूय न उग्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ।६।
प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणसो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ।७।
शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात्पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत ।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिन पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ।८।
विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।
अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयोऽक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते ।९।
भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।
असेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि वयो न पक्षान्व्यनु श्रियो धिरे ।१०।२

हे विकराल मरुतो ! हमारे कल्याण की इच्छा से अपनी बुद्धि को दया की ओर प्रेरित करो जब तुम्हारी विद्युत रूपी तलवार चमकती है, तब वह बर्छी के समान पशुओ को नष्ट करती है ॥६॥ जिनका दिया हुआ धन स्थिर रहता है, वह कभी क्षीण नही होता। जिनकी यज्ञों मे स्तुति की जाती है, वे मरुद्गण सोम के लिये इन्द्र की प्रशंसा करते हुए उनकी शक्ति और कर्मों के जानने वाले हैं ॥७॥ हे विकराल कर्म, बल वाले मरुद्गण ! तुमने जिस पर कृपा की है, उसे तुम असत्य घातो से बचाते हो और उसकी पुत्रादि साधन द्वारा रक्षा करते हो ॥८॥ हे मरुद्गण ! सभी कल्याण, समस्त बल तुम्हारे रथ पर स्थापित है। तुम्हारे कन्धे पर स्पर्धायुक्त आयुध रहने है। तुम्हारा धुरा दोनों पहियों को ठीक प्रकार घुमाता है ॥९॥ हे मरुद्गण तुम्हारी भुजाऐं मनुष्य के हित साधन मे तत्पर रहती हैं। तुम्हारा हृदय देश कल्याणकारी स्वर्णहारो से सुसज्जित और कन्धे भयङ्कर आयुधों से युक्त हैं। पक्षी जैसे पंख धारण करते है वैसे ही तुमने शक्ति धारण कर रखी है ॥१०॥ (२)

महान्तो मह्ना विभ्वो विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः ।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभि[illegible] । इन्द्रे मरुतः परिष्टुभ ।११

भद्रः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम्।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥१२॥
तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥१३॥
येन दीर्घं मरुतः शूशवाम युष्माकेन परीणसा तुरासः।
आ यत्ततनन्वृजने जनास एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम् ॥१४॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५॥३

महान् महिमा वाले बलवान् ऐश्वर्यवान्, आकाश के नक्षत्रों के समान देदीप्यमान, गम्भीर, ध्वनियुक्त, सुन्दर जिह्वा और मधुर गान वाले मरुद्गण गर्जनशील हुए, इन्द्र के सहयोगी है ॥११॥ उत्तम प्रकार से प्रकट हुए मरुतो! तुम्हारा नाम अदिति के नियम के समान स्थिर है। इसलिए तुम महान् हो! जिस उत्तम कर्म वाले को तुम धन देते हो, उसके धन को इन्द्र भी नही छीनते ॥१२॥ हे अविनाशी मरुतो! तुमने अपने बन्धु भाव के कारण प्राचीन स्तोत्रों की भली भांति रक्षा की है। तुमने मनुष्यों की स्तुति स्वीकार कर उन्हे कर्मो का ज्ञान दिया ॥ १३ ॥ हे वेगवन्त मरुद्गण! हम तुम्हारी कृपा से चिरकाल तक वृद्धि को प्राप्त हो। जिन कर्मों से मनुष्य विजयी होता तथा ऐश्वर्य प्राप्त करता है, अपनी उस अभिलाषा को मैं इन यज्ञो से प्राप्त करूँ ॥ १४ ॥ हे मरुद्गण! मान-पुत्र मान्दार्य कवि का यह स्तोत्र और वाणी तुम्हारे निमित्त हो, तुम हमारे शरीर को बल देने के लिए अन्न के साथ आओ। हम अन्न बल और दानशील स्वभाव को प्राप्त करें ॥१५॥ (३)

१६७ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्य। देवता—इन्द्र। छन्द – त्रिष्टुप्, पंक्ति)

सहस्रं त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गूर्ततमाः।
सहस्रं रायो मादयध्यै सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः ॥१॥

आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः।
अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ।१।
मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक् ।२।
परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ।३।
जोषद्यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः।
आ सूर्येव विधतो रथं गात्त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ।४।४

हे अश्व सम्पन्न इन्द्र ! तुम्हारे असंख्य रक्षा-साधन हमको प्राप्त हों बहुत-सा अन्न और प्रचुर धन राशि हमको अमीमित बल के साथ मिलें ॥१॥ अत्यन्त मेधावी मरुद्गण अपने रक्षा-साधनों और महान् धन के साथ हमारी ओर पधारें। उनके घोड़े समुद्र के पार हिन-हिनाते हुये प्रतीत होते हैं ॥ २॥ मनुष्यों की गुप्त रूप से रहने वाली पत्नी के समान उन मरुद्गण की चमकती हुई स्वर्णिम कटार, म्यान मे रहती और निकलती है। वह विद्युत रूपा विदुषी के समान ओजस्विनी वाणी से युक्त है (बिजली कभी चमकती कभी छिपती और कभी कड़कती है।) ॥३॥ द्रुत गतिमान् मरुद्गण को यह विद्युत एकान्त निवासिनी पत्नी के समान अथवा यज्ञ में उच्चारण की जाने वाली वेदवाणी के समान प्राप्त होती है ॥४॥ साधारण नारी के समान इस दमकती हुई विद्युत ने मरुद्गण को वरण किया। तब वह सूर्य के समान गति वाली मरुद्गण को प्राप्त हुई ॥५॥ (४)

आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम्।
अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान्गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ।६
प्र तं विविक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा [illegible] गर्भं वहते सुभागाः
[illegible] मित्रावरुणाववद्यच्चयत ई[illegible] ।
[illegible] ध्रुवाणि वा[illegible]

नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापु ।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परिष्ठु ।६।
वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून् तन्न ऋभुक्षा नरा मनुष्यात् ।१०।
एष व स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारो: ।
एषा यासीष्ट तन्वे वया विद्यामेष वृजनं जीरदानुम् ।११।५

हे मरुद्गण ! तुमने अत्यन्त तेज वाली युवावस्था प्राप्त दामिनी को अपने रथ पर चढ़ाया उस समय सोम अभिषवकर्त्ता हवि देते हुए स्तुति गान करने लगे ॥ ६ ॥ इन मरुद्गण के कथन योग्य पराक्रम का मैं यथावत् वर्णन करता हूँ । उसकी मायिनी वर्षणाभिलाषिणी, दृढ़ विचार वाली है । वह मानिनी सौभाग्य वाली हुई प्रजाओ को धारण करती हैं । ७ ॥ मित्र और वरुण यज्ञ निंदको से रक्षा करते है । अर्यमा उनको नष्ट करते हैं । हे मरुद्-गण ! जब तुम्हारा जल छोडने का समय आता है तब निश्चल मेघ भी डिग जाते हैं ।।८।। हे मरुद्गण ! तुम्हारा बल असीमित है । उसका पता न पास से लगता है, न दूर से । तुम अत्यन्त सामर्थ्यवान हो । तुम जल के समान बढ कर शक्तिशाली हुए शत्रुओं को परास्त करते हो ॥ ६ ॥ आज हम इन्द्र के अत्यन्त प्रिय बनेंगे । कल हम उन्ही को बुलावेंगे । पहिले भी उनको बुलाते रहे हैं । वे महान् इन्द्र हमारे अनुकूल हो ॥ १० ॥ हे मरुद्गण ! मान-पुत्र मान्दार्य का स्तोत्र तुम्हारे निमित्त है । तुम शरीर को बल देने के निमित्त ऐश्वर्यों सहित यहाँ आओ और अन्न, बल तथा दानशील स्वभाव को प्राप्त कराओ ॥११॥   (५)

१६८ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्य. । देवता—मरुत. । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्, पंक्ति ।)
यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे ।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ।१।
वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः ।

त्व तू न इन्द्र रयि दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तन न मध्वः पोपयन्त वाजैः ।४।
त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्य चिदृतायोः ।
ते पु णो मरुतो मृलयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ।५।८

हे रचना करने वाले इन्द्र ! तुम उद्वेग और क्रोध से बचाते हो। तुम मरुतो के स्वामी हो। हम पर कृपा करो और सुखी बनाओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे दान को जानने वाली प्रजाऐ तुम्हे प्राप्त होती है। मरुतो की सेना यु मे तुम्हे अत्यन्त युद्ध साधन प्राप्त कराती है ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा प्रसिद्ध आयुध वज्र मेघ की ओर जाता है, मरुद्गण हमारे लिये जलो को गिराते है। जैसे अग्नि काष्ठ मे शीघ्र चलती है और जल टापुओ के चारो ओर रहते हैं, वैसे ही मरुद्गण इसको अभ्रो से पूर्ण कराते है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! दक्षिणा के समान बडा हुआ जो धन अपने मित्र को दिया है, वही धन हमको दो। मधुर दुग्ध से जैसे स्त्री के स्तन पुष्ट होते हैं वैसे ही हमारी स्तुतियो से तुम ह अन्नादि से पुष्ट करो ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा धन अत्यन्त सत्यताप्रद, तुष्टिप्रद तथा आगे बढाने वाला। जो मरुद्गण प्राचीन समय से ही नियमों पर दृढ रहते आए हैं वे हम पर अत्यन्त अनुग्रह करें ॥५॥

(८)

प्रति प्र याहीन्द्र मीलहुषो नृन्महः पार्थिवे सदने यतस्व ।
अध यदेषा पृथुबुध्नास एतास्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ।६।
प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।
ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमैर्ऋणावानं पतयन्त सर्गैः ।७।
त्वं मानेभ्यः इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।
स्तवानेभि स्तवसे देव देवैर्विद्यामेष वृजन जीरदानुम् ।८।८

हे इन्द्र ! तुम पुरुषार्थी मेघो के पास जाकर अपना पुरुषार्थ प्रकट करो। मरुतो के वाहन मेघो पर आक्रमण करने को प्रस्तुत है ॥ ६ ॥ विचित्र द्रुतगामी मरुतों का गर्जन सुनाई देता है। अपम योद्धा को मारने

के समान मरुद्गण शत्रुओं को नष्ट कर देते हैं ॥७॥ हे इन्द्र ! मरुतों के सहित आकर मान-पुत्रों के निमित्त सब के उत्पत्तिकर्ता जलों को गवादि सहित प्रकट करो। तुम स्तुत्य देवगण के साथ स्तुति किये जाते हो। हम अन्न बल और दानमय स्वभाव को प्राप्त करें ॥८॥

१७० सूक्त

(ऋषि—अगस्त्य । देवता – इन्द्र । छन्द—अनुष्टुप्, पंक्ति ।)

न नूनमस्ति वो श्व कस्तद्वेद यदद्भुतम् ।
अन्यस्य चित्तमभि सञ्चरेण्यमुताधीत वि नश्यति ।१।
किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।
तेभि. कल्पस्व साधुया मा न समरणे वधी ।२।
किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।
विद्मा हि ते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ।३।
अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुर. ।
तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ।४।
त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठ. ।
इन्द्र त्वं मरुद्भि' सं वदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ।५।१०

(इन्द्र) आज और कल कुछ नहीं है। जो नहीं हुआ उसे कौन जानता है? जिन मनुष्यों का चित्त चचल है, वह चिंतन किये हुए को भी भूल जाते हैं ॥ १ ॥ (अगस्त्य हे इन्द्र ! तुम क्या मुझे मारना चाहते हो? मरुद्गण तुम्हारे भाई हैं उनके साथ भले प्रकार यज्ञ-भाव प्राप्त करो। हमको युद्ध-काल में नष्ट मत करना ॥ २ ॥ (इन्द्र) अगस्त्य ! मित्र होकर हमारा अनादर क्यों करते हो ? हम तुम्हारे मन को जानते हैं। तुम हमें देना नहीं चाहते ॥३॥ ऋत्विजो ! वेदी को सजाओ। अग्नि को प्रदीप्त करो ॥४॥ फिर हम अमृत के समान गुणदाता यज्ञ का विस्तार करें ॥ ५ ॥ (अगस्त्य) हे धनपते ! तुम धनों के स्वामी हो। हे मित्रपते ! तुम मित्रों के

आश्रय रूप हो । हे इन्द्र ! तुम मरुतों के साथ समानता वाले हो, हमारी हवियों को ग्रहण करो ॥५॥

१७१ सूक्त
(११)

(ऋषि – अगस्त्यः । देवता—मरुत छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति ।)

प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।
रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेलो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥१॥
एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान् हृदा तष्टो मनसा धायि दे
उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद्वृधासः ॥२॥
स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शम्भविष्ठः ।
ऊर्ध्वा नः सन्तु काम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥३॥
अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः ।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥४॥
येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम् ।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥५॥
त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन्भवा मरुद्भिरवयातहेलाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥११

मरुतो ! मैं नमस्कार करता हुआ तुम्हारे पास आता हूं । तुम वेग-वानों से दया-याचना करता हूँ । तुम स्तुतियों से प्रसन्न होकर क्रोध को शान्त करो । अपने रथ से घोडों को खोल दो ॥१॥ हे मरुद्गण ! नमस्कारों से युक्त तुम्हारा यह स्तोत्र हृदय से रचा गया और मन के धारण किया गया है इस-लिये इसे स्वीकार करते हुये स्नेहवश यहां आओ । तुम निश्चय ही हव्यान्न को बढ़ाते हो ॥२॥ स्तुति किये जाने पर मरुद्गण हम पर कृपा करें । स्तुति करने पर इन्द्र भी शांतिदाता हों । हे मरुतो ! हमारी आयु के दिन रमणीय सुख से युक्त, श्रेष्ठ और विजय-पूर्ण रहें ॥३॥ हे मरुद्गण ! हम इन बलवान् इन्द्र के डर से भागते हुये कांपते हैं । तुम्हारे लिए जो हव्य [illegible]

सद्यश्चा न इन्द्रो यन्दसेऽग्म्नुरो न कर्म नयमान उक्था॥६
ब्रसर्धसो नरा न शर्म रस्माकागदिन्द्रो वज्रहस्त ।
मत्रावुरोव पूर्वथि गुशि..ो मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञै ॥१०॥१४

जो इन्द्र अपनी महिमा से अपगण्य है उनकी पूर्ति के लिये आकाश और पृथ्वी भी पर्याप्त नहीं है । उन इन्द्र ने पृथिवी को वालो के समान और आकाश को मुकुट के समान धारण किया है ।६। हे वीर इन्द्र ! पृथिव्यादि लोक तुम ऐक चित्त वाले मरुद्गणो को वरण करने योग्य वीर को सुसज्जित करते हैं और तुम्हारे उपास्य को अन्नादि से युक्त करते है ।७। हे इन्द्र ! सोम की आहुतियां अन्तरिक्ष मे व्याप्त होकर प्रजा को सुखी करे । यह स्तुतियाँ तुम्हे प्रसन्न करती है तब वाणी तुम्हारी सेवा करती है । तुम स्तोताओ की स्तुतियो की कामना करते हो ।८। हे स्वामिन ! तुम वही करो, जिससे हम तुम्हारे मित्र हो सके और हमारी स्तुतियाँ तुम से अभीष्ट प्राप्त करा सके । तुम हमारी स्तुतियो को सुनते हुए कर्म सम्पादन कराने वाले बनो ।९। जैसे प्रसन्ता करने पर स्पर्द्धी मनुष्य सदस्य हो जाता है, वैसे ही वज्रधारी इन्द्र हमारे प्रति हो । जैसे नगर के योग्य अधिपति के सुशासन से सभी उनकी स्तुति करते है वैसे हम इन्द्र को पूजा करेंगे ।१०।   (१४)

यज्ञो हि ष्मेन्द्र कश्चिदृन्धज्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन् ।
तीर्थे नाच्छा यातृषाणमाको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥११
मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।
महश्चिद्यस्य मीलहुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥१२
एषः स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो न
आ नो ववृत्याः सुविताय देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम ।१३ १५

यदि कोई व्यक्ति मन से कुटिल हुआ यज्ञ मे इन्द्र की पूजा करता है । तो लम्बे मार्ग में प्यासे को शीघ्र फल प्राप्त न होने के समान उस कुटिल मन वाले का यज्ञ फल की ओर नही जाता ।११। हे बली इन्द्र ! तुम युद्ध मे हमसे वियुक्त न होओ । देवगण के साथ तुम्हारा हव्य भाग भी प्रस्तुत है ।

तुम्हारे साथी मरुद्गण को भी हम हवि देते हुऐ पूजते है ।।१२। हे अश्व-युक्त इन्द्र ! यह स्तोत्र तुम्हारा ही । इसके द्वारा हमारे मार्ग पर कल्याण के निमित्त हमारी ओर घूमो । हम अन्न बल को प्राप्ति करें। उद्धार स्वभाव वाले हों ।१३।

१७४ सूक्त

(ऋषि – अगस्त्य. । देवता – इन्द्र. । छन्द – पंक्ति.)

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन्पाह्यसुर त्वमस्मान् ।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥१
दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥२
अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥३
शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।
सृजदर्णांस्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥४
वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।
प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीकेऽभि स्पृधो यासिषद्वज्रबाहुः ।५।१६

हे इन्द्र ! तुम सब संसार के स्वामी हो। तुम हमारा पालन करो। वीरो की रक्षा करो। तुम सत्कर्म वालो के उद्धारकर्ता हो। तुम धन और बल के दाता हो।।१। हे इन्द्र ! तुमने निरादर करने वाले मनुष्यों को निर्बल और निर्बल बना दिया। तुमने उनके पुरों का पोषण और जल को प्रवाहित किया। युवा "पुरुकुत्स" के शत्रु को उनके आधीन कराया।२। हे वह्नियों द्वारा स्तुत इन्द्र ! तुम वीरों द्वारा रक्षित सेनाओं को प्रेरित करो। तुम जिस अग्नि के प्रकाश को प्राप्त होते हो उस सिंह के समान अग्नि का हमारे पर [illegible] सित करो।३। हे इन्द्र ! तुम्हारी प्रशंसा के लिए [illegible] [illegible] और वीरों [illegible]

अन देने के समान मुझे भी मुख दो। मैं तुम्हारा बारम्बार आह्वान करता हूँ। तुम मुझे अन्न बल और दान शीलता प्राप्त कराओ।६। (१८)

५७६ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्य। देवता इन्द्र। छन्द – अनुष्टुप् त्रिष्टुप् उष्णिक)

मत्सि नो वस्य इष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश।
ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि।१।
तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम्।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद्वृषा।२।
यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि।३।
असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते।४।
आवो यस्य द्विवर्हसोऽर्केषु सानुषगसत्।
आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम्।५।
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्।६।१३।

हे इन्द्र ! हमको कल्याण प्राप्त कराने के लिए आल्हादयुक्त होओ यह सोम तुम्हारे शरीर में प्रवेश करे। तुम क्रोध में भर रहे हो परन्तु शत्रु तुम्हारे सामने नहीं आता।१। उस इन्द्र को स्तुतियाँ भेंट करो, उस मनुष्यों के अद्वितीय अधीश्वर को हवियाँ दो। वे हमारे कार्य सिद्ध करते हैं।२। हे इन्द्र ! तुम्हारे हाथों में मनुष्य की पाँच जातियों के सम्पूर्ण धन है वह इन्द्र हमारे द्रोहियों को वज्र से नष्ट करे। ३। हे इन्द्र ! सोम का अभिषव करने वाले तथा कठिनाई से वश में आने वालों को वध करो। क्योंकि वे तुम्हें सुखी नहीं कर सकते। उनका धन हमको दो तुम्हारा स्तोता धन प्राप्त करने के योग्य है।४। हे सोम ! इन्द्र के स्तोत्र में जो

निरन्तर प्रवृत्त रहता है, तुम उसकी सहायता करते हो । तुम उस ... इन्द्र की युद्ध में रक्षा करो ।५। हे इन्द्र ! तुम प्यासे को पानी के समान ... स्तोता को सुख देने वाले हुए । मैं भी उसी स्तुति से तुम्हारा आह्वान ... हूँ । हम अन्न, बल और दानशील स्वभाव प्राप्त करें ।६।

१७७ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—इन्द्र । छन्द त्रिष्टुप् पंक्तिः ।)

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ् ॥१
ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
तां आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥२
आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥३
अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ॥४
ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङ् उप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥५।२०

मनुष्यों के पालक, श्रेष्ठ, स्वामी, स्तुत्य अन्न की कामना करने वाले इन्द्र अपने पुष्ट घोड़ों को रथ में जोड़कर रक्षा के लिये यहाँ आवो ।१। हे इन्द्र ! तुम्हारे पुष्ट, उन्नत बलवान मन्त्र द्वारा रथ में जुतने वाले अश्व हैं, उन पर चढ़ कर आओ । हम सोम निचोड़ कर तुम्हारा आह्वान करते हैं ।२। हे इन्द्र ! तुम्हारे लिए मधुर सोम अभिषुत किया गया है तुम अभीष्ट वर्षक रथ पर चढ़ो। बलवान अश्वों से युक्त रथ को यहाँ लाओ ।३। हे इन्द्र ! देवताओं का ... वाला यह यज्ञ, यह स्थान यह सोम और यह कुश का आसन है । तुम शीघ्र ही यहाँ आकर अपने अश्वों को खोलो और आसन ग्रहण कर सोम पान करो ।४। हे इन्द्र ! तुम मान के पुत्र स्तोताओं का पुकार ... ।

१७६ सूक्त

(ऋषि–लोपमुद्राऽगस्त्यौ । देवता—दम्पती । छन्द–त्रिष्टुप् बृहती)

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥१॥
ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥२॥
न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदत्र शतनीथमाजिं यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥३॥
नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥४॥
इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।
यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥५॥
अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः ।
उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥६॥२२

(लोप मुद्रा) मैं वर्षों से दिन रात जरा की स देश वाहिनी उषाओं तुम्हारी सेवा करती रही हूँ । बुढापा शरीर के सौन्दर्य को नष्ट करता है इसलिये यौवन काल मे ही पति पत्नी, गृहस्थ धर्म का पालन करके उद्देश्य को पूर्ण करें । १ । धर्म पालक पुरातन ऋषि देवताओं से बात करते थे, वे क्षीण हो गये और जीवन के परम प्राप्य फल को नही हुए, इसलिये पति पत्नी को संयमशील और विद्याध्ययन मे रत को भी उपयुक्त अवस्था मे काम भाव प्राप्त होता है और वह अनुकूल को प्राप्त कर सन्तानोत्पादन का कार्य करता है । २ । (अगस्त्य) हमने व्यर्थ परिश्रम नही किया । देवगण हमारे रक्षक हैं । हम स्पर्द्धा करने को वश मे करते और सैकड़ो साधनो का उपभोग करते हैं । हम स्त्री पुरुष सम्मिलित रूप से गृहस्थ धर्म निभावें ।३। रुके हुए नद की तरह का विरोध करने वाला ब्रह्मचारी गृहस्थ संयम के लिये मुझे प्राप्त हो । धैर्यवान पुरुष मैं धारण करूँ । ४ । (शिष्य) मैं हृदय में किये हुए इस सोम की स्तुति करता हूँ ... हुई हो तो ...

ओर जाता है ॥४॥ हे अश्विद्वय ! मैं पुरातन काल में हुए "तुग्र" राजा के पुत्र के समान स्तुति करता हुआ, गौओं के लिए अपनी ओर बुलाता हूँ। तुम्हारी महिमा से पृथिवी जलों से पूर्ण होती और तुम्हारी कृपा से पाप का फन्दा भी छूट जाता है ॥५॥ (३)

नि यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरन्धिम् ।
प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥६॥
वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।
अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥७॥
युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून्विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत्सहस्रैः ॥८॥
प्र यद्वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता ।
धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥९॥

तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥२४

हे कल्याण अश्विद्वय ! जब तुम घोड़ों को जोतते हो, तब प्राणी वाली बुद्धि देते हो। उस समय सुखी हुआ स्तोता अपने महत्व के लिये अन्न बल प्राप्त करता है ॥६॥ हे अश्विद्वय ! हम सत्यभाषी स्तोता [illegible] तुम्हारी स्तुति करते हैं तुम अभीष्टदाता और अनिन्द्य हो, देवता के समीप बैठकर सोम पान करो ॥७॥ हे अश्विद्वय ! श्रेष्ठ कर्मवान अगस्त्य दुःख निवारक स्तोत्र की प्राप्ति के लिए [illegible] के समान [illegible] हुए सहस्रों स्तुतियों से तुम्हें चैतन्य करते हैं ॥८॥ हे अश्विद्वय ! तुम महिमा वाले रथ से गमन करते हो और होता के समान जाते हो। स्तोताओं को सुन्दर [illegible] दो। तुम असत्य रहित हो, हमको धन प्राप्त कराओ ॥९॥ हे अश्विद्वय ! आकाश में घूमने वाले तुम्हारे रथ का हम आह्वान करते [illegible] अन्न, बल और आयु प्राप्त करें ॥१०॥ (२४)

असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्वाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती।
उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ।।७।।
उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन्।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ।।८।।
युवा पूषेवाश्विना पुरन्धिरग्निमुषां न जरते हविष्मान्।
हुवे यद्वां वरिवस्य गृणानो विद्यामेष वृजन जीरदानुम् ।।९।।२६

हे अश्विद्वय ! तुम दोनों में से एक का रथ अन्नों में विचरण करता है तथा दूसरे के गमन से फूलती हुई जल धाराऐं हमको सींचती हैं ।।६।। हे अश्विद्वय ! तुम्हारी स्थिरता के लिए स्तुतियां बनाई जाती हैं। वे तीन स्थान से तुम्हें प्राप्त होती हैं। तुम याचना करने वाले यजमान के रक्षक होते और चलते हुए अथवा रुक कर मेरी पुकार सुनो ।।७।। हे अश्विद्वय ! तुम दोनों के प्रदीप्त रूप का गान करने वाली वाणी यज्ञ-गृह के मनुष्यों को बढ़ाने वाली है। तुम्हारा जल वर्षा द्वारा गौ के समान मधुरवर्धक हो ।।८।। हे अश्विनीकुमारो ! पूजा की तरह अत्यन्त मेधावी हविदाता अग्नि और उषा के समान तुम्हारी स्तुति करता है। मैं तुम्हारी सेवा करता हुआ आह्वान करता हूँ। मैं अन्न, बल और दानशीलता प्राप्त करूँ ।।९।।   (११)

१८२ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्य । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्ति ।)

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः।
धियञ्जिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ।।१।।
इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ।।२।।
किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ।।३।।
जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना।

असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्वाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती।
उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥७॥
उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन्।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥८॥
युवां पूषेवाश्विना पुरन्धिरग्निमुषां न जरते हविष्मान्।
हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥९॥२६

हे अश्विद्वय ! तुम दोनों में से एक का रथ अन्नों से विचरण करता है तथा दूसरे के गमन से फूलती हुई जल धाराएँ हमको सींचती हैं ॥६॥ अश्विद्वय ! तुम्हारी स्थिरता के लिए स्तुतियाँ बनाई जाती हैं। वे तीन प्रकार से तुम्हें प्राप्त होती हैं। तुम याचना करने वाले यजमान के रक्षक हो, और चलते हुए अथवा रुक कर मेरी पुकार सुनो ॥७॥ हे अश्विद्वय ! तुम दोनों के प्रदीप्त रूप का गान करने वाली वाणी यज्ञ-गृह के मनुष्यों को बढ़ाने वाली है। तुम्हारा जल वर्षा द्वारा गौ के समान मधुरवर्द्धक हो ॥८॥ हे अश्विनीकुमारो ! पूषा की तरह अत्यन्त मेधावी हविदाता अग्नि और उषा के समान तुम्हारी स्तुति करता है। मैं तुम्हारी सेवा करता हुआ आह्वान करता हूँ। मैं अन्न, बल और दानशीलता प्राप्त करूँ ॥९॥ (२६)

१८२ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्य। देवता—अश्विनौ। छन्द

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान्मद
धियञ्जिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपा
इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांस
किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः क
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय
जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो वि

लक्ष्य पर पहुंच जाता है, वैसे ही तुम मेरे आह्वान की ओर शीघ्र आओ।५। हे अश्विदेवो। हम इस अंधेरे से पार लग गये हैं। हमने तुम्हारे स्तोत्र को धारण किया है। तुम यहाँ देव मार्ग से आओ। हम अन्न बल और दानमय स्वभाव को प्राप्त करें -६। (-६)

॥ चतुर्थ अध्याय समाप्तः ॥

१८४ सूक्त

(ऋषि अगस्त्य। देवता—अश्विनौ। छन्द—पंक्ति त्रिष्टुप्।)

ता वामद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः।
नासत्या कुह चित्सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ।१।
अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथामुत्पणीर्हतमूर्म्या मदन्ता।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ।२।
श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ।३।
अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः।
अनु यद्वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ।४।
एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ।५।
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।६।१

हे असत्य रहित अश्विदेवो। तुम प्रसिद्ध धन दाता हो। उषा के प्रकट होने पर हम तुम्हारा स्तुति गीतों द्वारा आह्वान करते हैं।१। हे अश्विदेवो। तुम सोम धारा से अत्यन्त आल्हादमय होकर लोभियों को नष्ट करो। मेरी स्तुतियों की कामना वाले तुम यहाँ आकर स्वयं मेरे स्तुति वचनों को सुनो।।२।। हे संसार पालक अश्विदेवो। जलोत्पन्न महान अश्व तुम्हें सूर्या के विवाहोत्सव की ओर ले आते हैं। वरुण की सन्तुष्टि के लिए यज्ञ में

१८३ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्य। देवता—अश्विनौ। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः।)

तं युञ्जाथां मनसो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोण त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ।१।
सुवृन्धो वर्तते यन्नभि क्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गोर्दिवो दुहित्रोपसा सचेथे ।२।
आ तिष्ठत सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान्।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तियथिस्तनयाय त्मने च ।३।
मा वा वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम्।
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ।४।
युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान्।
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ।५।
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वा स्तोमो अश्विनावधायि।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।६।२६

हे अश्विदेवो! उस मन से भी अधिक वेग वाले रथ के द्वारा उत्तम कर्म वाले यजमान के घर को पक्षी के समान गति से प्राप्त होओ ॥१॥ हे अश्विदेवो। सरलता से मुडने वाला तुम्हारा रथ तुम दोनो मेधावियों को चढ़ाकर पृथिवी पर हव्य के निमित्त जाता है। तुम दोनो आकाश की पुत्री उषा से युक्त होओ और मेरी स्तुति शोभायुक्त हो ।२। हे असत्य रहित अश्विदेवो। सरलता से घूमने वाले अपने रथ पर चढ़ो। वह हविदाताओं के कर्मानुष्ठानो के अनुसार चलता है। उस पर सवार होकर तुम यजमान और उसके पुत्रों के हित के लिये यज्ञ मे जाते हो ।३। हे अश्विदेवो। मुझ पर वृक-वृकी का आक्रमण न हो तुम हमको उलांघ कर न जाओ। हमारे स्थान को त्यागो। यह यज्ञ भाग, मधुर-रस युक्त पात्र और स्तुतियाँ तुम्हारे निमित्त ही हैं ॥४॥ हे अश्विद्वय? "गोतम", "पुरुमीढ़" और "अत्रि" हवि के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं। जैसे सीधे मार्ग पर चलने वाला

लक्ष्य पर पहुँच जाता है, वैसे ही तुम मेरे आह्वान की ओर शीघ्र आओ ।५। हे अश्विदेवो। हम इस अंधेरे से पार लग गये हैं। हमने तुम्हारे स्तोत्र को धारण किया है। तुम यहाँ देव मार्ग से आओ। हम अन्न बल और दानमय स्वभाव को प्राप्त करें ।६। (१९)

॥ चतुर्थं अध्याय समाप्तम् ॥

१८४ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्य। देवता—अश्विनौ। छन्द—पंक्ति त्रिष्टुप्।)

ता वामद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः।
नासत्या कुह चित्सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ।१।
अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथामुत्पणीँहंतमूर्म्या मदन्ता।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ।२।
श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ।३।
अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः।
अनु यद्वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥४
एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ।५
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।६।

हे असत्य रहित अश्विदेवो ! तुम प्रसिद्ध धन दाता हो। उषा के प्रकट होने पर हम तुम्हारा स्तुति मंत्रों द्वारा आह्वान करते हैं ।१। हे अश्विदेवो ! तुम सोम धारा से आनन्द आह्लादमय होकर लोभियों को नष्ट करो। मेरी स्तुतियों की कामना वाले तुम यहाँ आकर स्वयं मेरे स्तुति वचनों को सुनो ।२। हे हमारे पालक अश्विदेवो ! अन्नोत्पन्न महान अश्व तुम्हें सूर्या के विवाहोत्सव की ओर ले जाते हैं। वरुण की सन्तुष्टि के लिए यज्ञ में

की जाने वाली स्तुति तुम्हें प्राप्त होती है ॥३॥ हे माधुर्यमय कल्याण करने वाले अश्विद्वयो। तुम्हारा दिया हुआ धन हम पर रहे। तुम मान के पुत्र के स्तोत्र को प्रेरित करो साधकगण यज्ञ की इच्छा से पराक्रम के लिये तुम्हारे स्तोत्र को बढ़ाते है ।४। हे अश्विदेवो! तुम्हारे लिए मान के पुत्रों ने इस बलयुक्त स्तोत्र की रचना की। तुम मुझ अगस्त्य पर प्रसन्न होकर मेरे और मेरे पुत्र के लिए घर पर पधारो ॥५॥ हे अश्विद्वय! हम अंधेरे से पार लग गए है। तुम्हारे लिये स्तोत्र प्रारम्भ किया है, इसके प्रति देवताओं के योग्य मार्ग से यहाँ आओ। हम अन्न बल और दानमय स्वभाव को प्राप्त करें ॥६॥ (1)

१८५ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्यः। देवता—द्यावापृथिव्यौ। छन्द—त्रिष्टुप।)

कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को विवेद।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥१॥
भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ।२।
अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत्।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ।३।
अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ।४।
संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ।५।

हे ऋषियो! आकाश और पृथिवी में कौन पहले और कौन पीछे उत्पन्न हुई? इस बात का जानने वाला कौन है? यह दोनों स्वयं सब पदार्थों को धारण करती और दिन-रात्रि के समान घूमती है ।१। यह न चलने वाली, बिना पैरों की आकाश पृथिवी पाँव वाले शरीर धारियों को माता-पिता के समान गोद में धारण करती हैं। हे आकाश पृथिवी! हमारी

भय से रक्षा करो ॥ २ । हे आकाश पृथिवी ! पवि अक्षय, प्रकाशित, अमर, स्तुत्य धन की याचना करता हूँ । स्तोता के लिए उसे उत्पन्न करो और भयों से रक्षा करो ॥ ३ ॥ दिन रात्रि सहित, देवताओं में पीड़ा रहित, अन्न से युवा रक्षा वाली, दिव्य गुण युक्त आकाश पृथिवी मेरे अनुकूल हो । हे आकाश पृथिवी, महान् भयों से हमारी रक्षा करो ॥४॥ साथ चलने वाली, सदा तरुण, समान सीमायुक्त भगिनी भूत आकाश-पृथिवी माता-पिता की गोद रूप हैं । हे आकाश पृथिवी ! महान् भय से हमारी रक्षा करो ।.५॥ (२)

उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।
दधाते ये अमृत सुप्रतीके द्यावा रक्षत पृथिवी नो अभ्वात् ।६।
उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
दधाते ये सुभग सुप्रतूनी द्यावा रक्षत पृथिवी नो अभ्वात् ।७।
देवान्वा यच्चकृमा कच्चिदाग सखाय वा सदमिज्जास्पतिं वा ।
इयं धीर्भूया अवयानमेषा द्यावा रक्षत पृथिवी नो अभ्वात् ।८।
उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम् ।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवा ।९।
ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः ।
पातामवद्याद्दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ।।१०।
इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।११।३

विस्तीर्ण वास स्थान, महान्, रक्षाओं से युक्त आकाश पृथिवी का देवताओं की प्रसन्नता के लिए आह्वान करता हूँ । यह आश्चर्यरूप वाली जल धारण में समर्थ है । यह हमारी महान पाप से रक्षा करें ॥ ६ ॥ मैं इस यज्ञ में विस्तीर्ण, बहुत रूप वाली, असीमित आकाश पृथिवी की पूजा करता हूँ । यह सौभाग्यवती समस्त पदार्थ और प्राणियों को धारण करती है । हे आकाश-पृथिवी ! हमें महापाप से बचाओ ॥ ७ ॥ हे आकाश पृथिवी !

देवगण, बन्धुगण, जामाता आदि के प्रति हमने जो पाप किया है, वह
स्तोता यज्ञ से दूर हो। तुम हमको महापाप से बचाओ ॥ ८ ॥ मनुष्यों
हित करने वाली आकाश-पृथिवी मुझे आश्रय प्रदान करें और पालन करें
हुई मेरे साथ रहें। हे देवगण ! हम तुम्हारे स्तोता हविरूप अन्न देकर
प्रसन्न करते हैं और दान के लिए धन की याचना करते हैं ॥ ९ ॥ मैंने
होकर आकाश-पृथिवी से सम्बन्धित मुख्य सत्य को सबके लिए सुनाया है।
आकाश-पृथिवी निन्दा और अनिष्ट से हमारी रक्षा करें और पिता के
हमारा पालन करे ॥१०॥ हे पिता माता रूप आकाश-पृथिवी मैंने जो
तुम्हारे समीप कहा है, वह सत्य हो। तुम देवताओं के साथ रक्षा वाली होओ।
हम अन्न, बल और दानमय स्वभाव को प्राप्त करें ॥११॥

१८६ सूक्त

(ऋषि – अगस्त्य। देवता-विश्वेदेवा छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

आ न इलाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ।१।
आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः।
भुवन्यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः ।२।
प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषेऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः।
असद्यथा नो वरुणः सुकीर्तिरिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः ।३।
उप व एषे नमसा जिगीषोषासानक्ता सुदुघेव धेनुः।
समाने अहन्विमिमानो अर्कं विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन् ।४।
उत नोऽहिर्बुध्न्यो मयस्कः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः।
येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ।५।१४

सर्व प्रेरक सवितादेव हमारी स्तुतियों के प्रति यज्ञ में आवें। युवा
देवताओ ! तुम यहाँ आकर प्रसन्न होते हुए हमें भी सुखी करो ॥ १ ॥
... और वरुण यह एक से मन वाले देवगण एक साथ इस यज्ञ में

के समान हमारी स्तुतियां इन्द्र को प्राप्त होती हैं ॥७॥ उन्नत मन वाले, ... मशक, मित्रों के पक्षपाती मरुद्गण आकाश और पृथिवी से मिल कर ... के समान यज्ञ में बैठे। उनके बिन्दुरूप अश्व जल प्रवाह के समान हैं ॥८॥ ... से इन मरुतों की महि मा का ठीक प्रकार ज्ञान हुआ, तभी से कुशा ... वाले यजमान यज्ञ कर्मों में प्रयुक्त हुये। इनकी सेनायें बाण के समान ... मरु भूमि को सींचने में समर्थ हैं ॥९॥ हे मनुष्यो! रक्षा के निमित्त ... को आगे बढ़ाओ। पूषा को भी आगे करो। द्वेष रहित, विष्णु वायु ... ऋभुओं के स्वामी इन्द्र सब वचनों को अपने अधीन रखते हैं। सुख के ... मैं सब देवताओं को सामने बुलाता हूँ ॥ १० ॥ हे पूजनीय देवताओ! तुम्हारी ... भक्ति हमको जीवन देने वाली हो। हम उत्तम स्थान प्राप्त करें। ... कल्याणदात्री शक्ति देवताओं को प्रेरित करे जिससे हम अन्न, बल और ... वृत्ति वाले हों ॥११॥

१८७ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्यः। देवता—ओषधय.। छन्द-उष्णिक्, गायत्री)

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम्।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥१॥

स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे। अस्माकमविता भव ॥२॥

उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः।
मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥३॥

तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्ठिताः। दिवि वाता इव श्रिताः ॥४॥

तव त्ये पितो ददतस्तव स्वादिष्ठ ते पितो।
प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवा इवेरते ॥५॥

अब मैं अत्यन्त बलदाता अन्न का स्तवन करता हूँ, जिसके बल से त्रित ने वृत्र के जोड़-जोड़ को तोड़ कर मार डाला ॥१॥ हे सुस्वादु अन्न! तू मधुर है, हमने तेरा वरण किया है तू हमारा रक्षक हो ॥ २ ॥ हे अन्न! तू कल्याण स्वरूप है। अपनी रक्षाओं सहित हमारी ओर आ। तू स्वास्थ्यदाता ...

हानिप्रद न हो और अद्वितीय मित्र के समान सुखकर हो ।।३।। हे अन्न ! वायु के अन्तरिक्ष मे आश्रय लेने के समान तेरा रस ससार मे व्यापक है ।। ४ ।। हे पालक और सुस्वादु अन्न ! तेरा दान करने वाले तुम्हारी कृपा चाहते हैं। तुम्हारे सेवनकर्त्ता तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। तुम्हारा रस, आस्वाद करने वालो की ग्रीवा उन्नत और दृढ करता है ।।५।। (६)

त्वे पितो महानां देवाना मनो हितम् ।
अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ।६।
यददो पितो अजगन्विवस्व पर्वतानाम् ।
अत्रा चिन्नो मधो पितऽरं भक्षाय गम्या. ।७।
यदपामोषधीना परिंशमारिशामहे । वातापे पीव इद्भव ।८।
यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद्भव ।९।
करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथि. । वातापे पीव इद्भव ।१०।
त त्वा वय पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्य त्वा सधमादम् ।११।७

हे अन्न ! महान् देवो का मन तुझ मे ही रमा है। तुम्हारे आश्रय मे सुन्दर कर्म किए जाते है। तुम्हारी रक्षा से ही इन्द्र ने वृत्र का वध किया था ।। ६ ।। हे अन्न ! मेघो मे जो प्रसिद्ध जल रूप धन है, उसके द्वारा मधुर हुवे हमारे सेवन के निमित्त प्राप्त हो ।।७।। हे अन्न ! हम जलो और औषधियों का थोडा अंश सेवन करते है। तू वृद्धि को प्राप्त हो ।।८।। हे सोम ! हम तुम्हारे दुग्धादि से मिश्रित खिचडी रूप अन्न का सेवन करते है। अत तू वृद्धि को प्राप्त हो ।।९।। हे औषध रूप अन्न ! तू शरीर-रचना के अनुकूल, पुष्टिकारक, रोग नाशक और उद्दीपन करने वाला । तू वृद्धि को प्राप्त हो ।। १० ।। हे अन्न ! गायें जैसे सेवनार्थ दूध को बहाती है, वैसे ही तुमसे स्तुति द्वारा हम रस ग्रहण करते हैं। तू देवताओ को प्रसन्न करने वाला हमको भी पुष्ट करता है ।।११।। (७)

१८८ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—आप्रियः । छन्द—गायत्री)

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् । दूतो हव्या कविर्वह ॥१
तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत्सहस्रिणीरिषः ।२।
आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान् । अग्ने सहस्रसा ।३।
प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ ।४।
विराट् सम्राड्विभ्वी प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः ।
दुरो घृतान्यक्षरन् ।५

हे सहस्रों के विजेता अग्ने ! तुम ऋत्विकों द्वारा सुशोभित किये ग हो । तुम हवि वाहक दौत्य कर्म में निपुण हो ॥ १ ॥ नियम पालक मनुष्य लिये यज्ञ माधुर्ययुक्त होता है । शरीरों के रक्षक अग्नि सहस्रों प्रकार के को धारण करते हैं ॥२॥ हे अग्ने ! तुम आहूत होकर यज्ञ में भाग ग्रहण क वाले देवों को बुलाओ । तुम असीम अन्नों के दाता हो ॥ ३ ॥ हे आदित्यो जिस सहस्र वीरों के योग्य अग्नि रूप कुश को ऋत्विक् मन्त्रों द्वारा बिछाते उस पर तुम विराजमान हो ॥४॥ सब के शासक, बली, सशक्त अग्नि रूप द्वारों पर घृत वर्षा करते हैं ॥५॥ (८

सुरुक्मे हि सुपेशसाधि श्रिया विराजतः उपासावेह सीदताम् ।६।
प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ।७।
भारतीले सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश्चोदयत श्रिये ।८।
त्वष्टारूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्त्समानजे ।
तेषां नः स्फातिमा यज ।९।
उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ।१०।
पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते । स्वाहाकृतीषु रोचते ।११।६

सुन्दर रूप और शोभा से युक्त उषा-रात्रि सुशोभित होती है, वे यहाँ राजें ॥६॥ प्रियभाषी, मेधावी, प्रमुख, दिव्य होता अग्नि हमारे यज्ञ में पधारें ॥७॥ हे भारती इला और सरस्वती देवियो ! तुम्हारे समीप उपस्थित होकर स्तुति करता हूँ । जिससे मुझे यश प्राप्त हो सके, वह करो । ८॥ अग्नि स्वरूप त्वष्टा, रूप देने वाले है । उन्होने पशुओ को प्रकट किया । हे त्वष्टा यज्ञ द्वारा हमारे पशुओ की वृद्धि करो ॥ ९ ॥ हे अग्नि स्वरूप वनस्पते ! अपनी शक्ति से हव्य अन्न उत्पन्न करो । हे अग्ने ! हमारे हव्य को सुस्वादु बनाओ ॥ १० ॥ देवो मे अग्रणि अग्नि गायत्री छन्द द्वारा संयोजित किये जाते हैं । वह स्वाहा करने पर प्रदीप्त होते हैं ॥११॥ (९)

१८९ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्य । देवता–अग्नि । छन्द–त्रिष्टुप् पंक्ति,)

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्य स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ।१।
अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ।२।
अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।
पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ।३।
पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान ।
मा ते भयं जरितार यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ।४।
मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन्परा दाः ।५।१०

हे अग्निदेव ! तुम नियमों के ज्ञाता हो । हमको सुमार्गगामी बनाओ । पाप को दूर करो । हम तुम्हें नमस्कार करते है ॥ १ ॥ हे अग्निदेव ! स्तुति किए जाने पर तुम हमको दुर्गों से पार लगाओ । तुम हमारे लिये प्रशस्त

नगरी वाले बनो। तुम हमारी सन्तानों के रोगों को शान्त करो [illegible] को मिटाने वाले हो ॥२॥ हे अग्ने! रोगों को हमसे दूर करो। [illegible] से रहित हैं उन्हें रोग होने चाहिये। तुम देवगण के साथ हमको [illegible] सुख से पूर्ण कर दो ॥ ३ ॥ हे अग्ने! हमारे प्रिय पद पर [illegible] रक्षा-साधनों से सदा हमारा पालन करो। तुम्हारे स्तोता को [illegible] न हो ॥४॥ हे महाबली अग्ने! हमको पापी शत्रुओं के [illegible] न हमको दंश वाले (सर्पादि) अथवा बिना दाँत वाले, मौन आदि [illegible] के ही सुपुर्द करो ॥५॥

वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद्गृणानो अग्ने तन्वे वरूथं।
विश्वाद्रिरिक्षोरुत वा निनित्सोरभिह्रुतामसि हि देव विष्पट् ॥६॥
त्वं ताँ अग्न उभयान्वि विद्वान्वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र।
अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ॥७॥
अवोचाम निवचनान्यस्मिन्मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ।
वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥

तमृत्विया उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।
बृहस्पतिः स ह्यञ्जो वरांसि विभ्वाभवत्समृते मातरिश्वा ।२।
उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च श्लोकं यंसत्सवितेव प्र बाहू ।
अस्य क्रत्वाहन्यो यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान् ।३।
अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्यामत्यो न यंसद्यक्षभृद्विचेताः ।
मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायाँ अभि द्यून् ।४।
ये त्वा देवोस्त्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।
न दूढ्ये अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् ।५।१२

हे मनुष्यो ! द्वेष-रहित स्तुत्य बृहस्पति की स्तोत्रों से पूजा करो । वे स्तोता से वियुक्त नहीं होते । देवों में पूज्य उनके वचनों को देवता और मनुष्य सभी आदर से सुनते हैं ।।१।। वर्षा के समान स्तुतियाँ बृहस्पति को प्राप्त होती हैं । वे संसार को व्यक्त करने वाले हैं तथा मातरिश्वा के समान फलदाता हैं ।।२।। सविता द्वारा प्रकाश और ताप देने के समान बृहस्पति साधकों की स्तुति और नमस्कार को ग्रहण करने के लिये सचेष्ट रहते हैं । इन हिंसा-रहित बृहस्पति के बल से ही सूर्य भयङ्कर वन-पशु के समान घूमते हैं ।३। आकाश और पृथिवी पर बृहस्पति का सुयश सर्वत्र फैला है । वे सूर्य के समान हवि धारण करते हैं । उनका शस्त्र माया-मृगों के पीछे प्रतिदिन दौड़ता है ।।४।। हे बृहस्पते ! जो धन के मद में युक्त हुये पापी, तुम्हें बूढ़ा बैल मान कर अपने अहङ्कार में जीवित हैं, तुम उन मूर्खों को वरणीय धन नहीं देते । तुम उन दुष्टों से दूर रहते ।५। (१२)

सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।
अनर्वाणो अभि ये चक्षते नोऽपीवृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः ।६।
सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।
स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ।७।
एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान्बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।

स नः स्तुत्तो वीरवद्धातु गोमद्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम ।८।१३

हे वृहस्पते ! तुम सुमार्ग पर चलने वाले मनुष्यों के लिए मार्ग स और दुष्टो पर शासन करने वाले के मित्र के समान हो। जो हमसे द्वेष करते हैं, वे क्लेशो से घिरे रहे ।६।। भँवरयुक्त गम्भीर छल वाली प्रवाहित नदियाँ जैसे समुद्र को प्राप्त होती है, वैसे हमारी स्तुतियाँ वृहस्पति को प्राप्त होती है। वे तट और जल दोनो के समान हमारे कार्यक्रमो को गिद्ध-दृष्टि से देखते हैं ।।७।। बलवान्, श्रेष्ठ, पूज्य, वृहस्पति बहुतो के उपकार के लिये प्रवट होते हैं। व हमारी स्तुतियो से प्रसन्न होकर हमको वीर सन्तान तथा यज्ञादि धन प्रदान करें और हम अन्न, बल तथा उदार स्वभाव वाले हो ।।८।। (१३)

१९१ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता-अबोपधिसूर्याः । छन्द-उष्णिक्, अनुष्टुप्,

कङ्कत ऽन कङ्कतोऽथो सतीनकङ्कतः ।
द्वाविति प्लुषी इति न्य दृष्टा अलिप्सत ।१।
अदृष्टान्हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती ।
अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती ।२।
शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।
मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ।३।
नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनानां न्य दृष्टा अलिप्सत ।४।
एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन्प्रदोषं तस्करा इव ।
अदृष्टा विश्वदृष्टा प्रतिबुद्धा अभूतन ।५।

अत्यन्त विषैले और विष रहित, जल मे रहने वाले अल्प विषयुक्त दोनो प्रकार के जलचर और थलचर, जमन करने वाले प्रत्यक्ष और अदृश्य जीव मुझे विष द्वारा घेरे हुये है ।। १ ।। औषधि उन अदृश्य जीवो और

उनके विष को मारती है। वह बूटी, ऐसी जाकर भी विषैले जीवों को नष्ट कर देती है ॥२॥ शर कुशर, दर्भ, सैंय, मोञ्ज और वैरिण नामक घासों को छिपे हुये जीव विषयुक्त करते हैं ॥३॥ जब गायें गोष्ठ में बैठती हैं, हरिण अपने स्थानों पर विश्राम करते हैं मनुष्य सुप्तावस्था में होता है तब यह विषैले जीव विषयुक्त करते है ॥४॥ वे अदृश्य और प्रकट विषैले जीव चोरों के समान रात्रि की प्रतीक्षा करते हैं। इसलिये उनसे सावधान रहना चाहिये ॥५॥   (१४

द्यौवः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा।
अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ।६।
ये अस्या अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः।
अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ।७।
उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ।८।
उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन्।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।९।
सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु
त्वा मधुला चकार ।१०।८

हे विषैले प्राणियो! आकाश तुम्हारा पिता, पृथिवी माता और सोम भ्राता तथा अदिति बहिन हैं तुम प्रकट और अप्रकट दोनो प्रकार के जीव अपने स्थान पर ही रहो, सुखपूर्वक वहीं सोओ ॥६॥ हे विषैले प्राणियो! तुम कन्धे से चलने वाले, शरीर से गमनशील, सुई के समान डङ्क वाले, अत्यन्त विषयुक्त, अदृश्य एवं प्रत्यक्ष, तुम जितने प्रकार के भी हो, वे सब हमारे पास से दूर चले आओ ॥ ७ ॥ सबके समान प्रत्यक्ष, अदृष्ट जीवों को भी दिखाने वाले, अदृश्य विषधरों और राक्षसी वृत्ति वाले हिंसक पशुओं का विनाश करने वाले सूर्य पूर्व में उदय होते हैं ॥ ८ ॥ सबके द्वारा देखे

जाने वाले, अदृष्ट प्राणियों के नाशक अदिति पुत्र सूर्य बहुत प्रकारों के इन विषों का नाश करने के लिये पर्वतों से भी ऊँचे उठे हुये हैं ॥६॥ शौण्डिक के गृह में मद्यभार के समान मैं सूर्य मण्डल में विष को प्रेरित करता हूँ। सूर्य का उससे नाश नहीं होगा। हम भी नहीं मरेंगे। वे अश्वारूढ़ सूर्य विष को अमृत में बदल देते हैं ॥१०॥ (१४)

इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१॥
त्रि सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्पमक्षन् ।
ताश्चिन्नु न मरन्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥२॥
नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।
सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥३॥
त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ।
तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥४॥
इयत्तकः कुषुम्भकस्तकं भिनद्म्यश्मना ।
ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥५॥
कुषुम्भकस्तदब्रवीद्गिरेः प्रवर्तमानकः ।
वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥६॥१६

जैसे क्षुद्र शकुनि (पक्षी) ने तेरा विष खाकर उगल दिया, वह उससे मरी नहीं, वैसे ही हम भी नहीं मरेंगे। अश्वारूढ सूर्य दूर रह कर भी हम से विष को दूर करते हैं तथा विष को माधुर्य कर देते हैं ॥१॥ अग्नि ने इक्कीस प्रकार के विषों के बल का भक्षण कर लिया। उनकी ज्वालायें अमर हैं। हम भी नहीं मर सकते। अश्वारूढ़ सूर्य ने दूरस्थ विष को भी नष्ट कर दिया और विष को मधुरता प्रदान की ॥ १२ ॥ मैंने विष नाशक निन्यानवे क्रियाओं को जान लिया है। रथारूढ़ सूर्य दूर से भी विष को अमृत में बदल

देते हैं ॥१३॥ हे विषयुक्त प्राणी ! जैसे घड़े में स्त्रियाँ जल ले जाती हैं, वैसे ही इक्कीस मोरनियाँ और भगिनी रूप सात नदियाँ तुम्हारे विष को दूर करती हैं ॥१४॥ वह छोटा सा नकुल तुम्हारे शरीर का विष खींच ले, अन्यथा उस नीच को मैं ढेले पत्थर से मार डालूँगा। शरीर का विष हटकर दूर देशों को चला जाय ॥१५॥ नकुल ने पर्वत से निकल कर कहा-बिच्छू का विष प्रभाव से शून्य है। हे वृश्चिक ! तेरे विष में प्रभाव नहीं है (जल औषधि और सूर्य में विष-शामक शक्ति है। इसलिए यहाँ इनकी स्तुति की गई हैं।) ॥१६॥ (१६)

अथ द्वितीय मण्डलम्

१ सूक्त

(ऋषि-गृत्समदः। देवता-अग्नि, । छन्द-पंक्ति, जगती, त्रिष्टुप्)

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥१॥
तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥२॥
त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः ।
त्वं ब्रह्मा रयिविद्ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या ॥३॥
त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः ।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ॥४॥
त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम् ।
त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः ॥५॥१७

जाने वाले, अदृष्ट प्राणियों के नाशक अदिति पुत्र सूर्य बहुत प्रकारों से हन
विषों का नाश करने के लिये पर्वतों से भी ऊँचे उठे हुये हैं ॥६॥ शौण्डिक के
गृह में मद्यपात्र के समान मैं सूर्य मण्डल में विष को प्रेरित करता हूँ। सू
का उससे नाश नहीं होगा। हम भी नहीं मरेंगे। वे अश्वारूढ़ सूर्य विष को (११)
अमृत में बदल देते हैं ॥१०॥

इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम्।
सो चिन्नु न मराति नो वय मरामारे अस्य योजन हरिष्ठा
मधु त्वा मधुला चकार ॥११॥

त्रि सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्पमक्षन्।
तादिचन्नु न मरन्ति नो वय मरामारे अस्य योजन हरिष्ठा मधु
त्वा मधुला चकार ॥१२॥

नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम।
सर्वासामग्रभ नामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१३
त्रिः सप्त मयूर्य. सप्त स्वसारो अग्रुवः।
तास्ते विषं वि जभ्रिर उदक कुम्भिनीरिव ॥१
इयत्तकः कुषुम्भकस्तक भिनद्मयश्मना।
ततो विष प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥१
कुषुम्भकस्तदब्रवीद्गिरेः प्रवर्तमानक.।
वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विष।

जैसे क्षुद्र शकुनि (पक्षी) ने तेरा विष खाकर
मरी नहीं, वैसे ही हम भी नहीं मरेंगे। अश्वारूढ़ सूर्य
विष को दूर करते हैं तथा विष को माधुर्य कर देते हैं
प्रकार के विषों के बल का भक्षण कर लिया। उ
हम भी नहीं मर सकते। अश्वारूढ़ सूर्य ने दूर
दिया और विष को मधुरता प्रदान की॥ १२ ॥ मैं
क्रियाओं को जान लिया है। रथारूढ़ सूर्य दूर से

हे अग्ने तुम यज्ञ काल मे प्रकट होकर दीप्तियुक्त और पवित्र होओ। तुम जल से उत्पन्न हुए हो। पाषण, वन और औषधि से उत्पन्न होते हो ॥१॥ हे अग्ने ! पोता आदि कर्म तुम्हारा ही है। यज्ञ की अभिलाषा करने पर प्रशास्ता, अध्वर्यु और ब्रह्मा भी तुम्ही हो। हमारे घरो के तुम्ही पालक हो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम सज्जनों का मनोरथ पूर्ण करने वाले एवं बहुतो द्वारा स्तुत्य हो। तुम विष्णु रूप, स्तुतियो के स्वामी तथा के अधीश्वर एवं बुद्धि प्रेरणा में समर्थ हो ॥३॥ हे अग्ने ! तुम नियमो में अटल वरुण स्वरूप हो। तुम शत्रुओं के हनन-कर्त्ता, साधुओ के पालक हो तुम्ही अर्यमा रूप से व्यापक दान के स्वामी हो। तुम ही सूर्य हो। हमारे यज्ञ मे अभीष्ट फल दो ॥४॥ हे अग्ने ! तुम साधक के पुरुषार्थ रूप, स्तुतियों के स्वामी और त्वष्टा हो। तुम मित्र भाव से युक्त, प्रेरणाप्रद एवं तेजवान हो। तुम अत्यन्त धनी और बल के स्वरूप हो। उत्तम अश्वयुक्त धनो के देने वाले हो ॥५॥ (१७)

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे।
त्वं वातैररुणैर्यासि शङ्गयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना ।६।
त्वमग्ने द्रविणोदा अरङ्कृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि।
त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुर्दमे यस्तेऽविधत् ।७।
त्वमग्ने दम आ विश्पतिं विशस्त्वां राजानं सुविदत्रमृञ्जते।
त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ।८।
त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस्त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम्।
त्वंपुत्रो भवसि यस्तेऽविधत् त्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः ।९।
त्वमग्ने ऋभुराके नमस्यस्त्वं वाजस्य क्षुमतो राय ईशिषे।
त्वं वि भास्यनु दक्षि दावने त्वं विशिक्षुरसि यज्ञमातनिः ।१०। ८

हे अग्नि देव ! तुम उग्रकर्मा रुद्र एवं मरुद्गण की शक्ति स्वरूप हो। तुम अन्नो के स्वामी, सुख के आधार हो। रक्त वर्ण के [illegible] गमन करने वाले हो। तुम ही पूषा रूप से मनुष्यों [illegible] ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! तुम यजमान को दिव्यलोक दिखाते हो। तुम सूर्य रूप से प्रकाशित रत्न रूपी धनों के आधार एवं ऐश्वर्य के देने वाले हो। तुम अपने साधक यजमान के पालन कर्ता हो ॥७॥ हे अग्ने ! साधक तुम्हें घरों में प्रज्ज्वलित करते हैं। तुम रक्षक, प्रकाशमान और अनुग्रह बुद्धि वाले हो। तुम हवि-स्वामी असंख्य फलों के देने वाले हो ॥८॥ हे अग्निदेव ! यज्ञों में तुम पिता के समान तृप्त किये जाते हो। कर्मों द्वारा सन्तुष्ट करके मित्र बनाये जाते हो। तुम अपने सेवक के पुत्र रूप होते हुए उसे यशस्वी बनाते हो। तुम हमारी मित्र रूप से रक्षा करो ॥९॥ हे पावक ! तुम ऋभुरूप से स्तुतियों के योग्य हो। तुम अन्न, धन के स्वामी एवं प्रकाशमय हो। तुम यज्ञ निर्वाहक और उसके फल को बढ़ाने वाले हो ॥१०॥ (१८)

त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुषे त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा।
त्वमिला शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ॥११॥
त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्तव स्पार्हे वर्णे आ सन्दृशि श्रियः।
त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतस्पृथुः ॥१२॥
त्वामग्न आदित्यास आस्यं त्वां जिह्वां शुचयश्चक्रिरे कवे।
त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ॥१३॥
त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम्।
त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुतिं त्वं गर्भो वीरुधां जज्ञिषे शुचिः ॥१४॥
त्वं तान्त्सं च प्रति चासि मज्मनाग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे।
पृक्षो यदत्र महिना वि ते भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ॥१५॥
ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥१९

हे अग्ने ! तुम अदिति रूप हो, होता और वाणी भी हो। स्तुतियों द्वारा ... हो। तुम्हीं धनों के रक्षक एवं वृत्र हनन कर्त्ता हो ॥ ११ ॥ हे ... न रूप एवं ऐश्वर्यवान् हो। तुम दुखों से उबारने वाले और

सर्व व्यापी हो ॥१२॥ हे अग्ने ! तुम आदित्यों के मुख एवं देवताओं के जीव रूप हो। यज्ञों में अभीष्ट देने के लिए एकत्रित हुए देवता तुम्हारी चाहना करते हुए तुममें दी गई हवियाँ ग्रहण करते हैं ॥१३। हे पावक ! सभी अमर-धर्मा देवता तुम्हारे मुख में दी गई हवियां खाते हैं। मरणधर्म वाले जीव तुम्हारे अन्न को प्राप्त करते हैं। तुम ओषधादि के गर्भ रूप हो ॥१४॥ अग्ने तुम देवताओं से मिलकर भी अलग रहते हो। तुम उत्तम प्रकार से उत्पन्न होकर बल ग्रहण करते हो। तुम्हारी महिमा से आकाश पृथिवी के मध्य यज्ञ स्थित अन्न व्याप्त होता है ॥१५॥ हे अग्निदेव ! विद्वान् साधकों को गवादि धन दान करने वालों को श्रेष्ठ निवास दो। हम वीर सन्तान से युक्त हुए यज्ञ में श्रेष्ठ स्तुतियाँ करते हैं ॥१६॥ (१६)

२ सूक्त

(ऋषि–गृत्समद. । देवता–अग्नि । छन्द–जगती, त्रिष्टुप्)

यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।
समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम् ।१।
अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
दिवइवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः ।२।
तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योररतिं न्येरिरे ।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ।३।
तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः ।
पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ।४।
स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा ।
हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद्द्यौर्न स्तृभिश्चितयद्रोदसी अनु ।५।२०

प्रदीप्त, सुन्दर अन्न युक्त, यज्ञ सम्पादक, दीप्तिदाता अग्नि को यज्ञ में बढ़ाओ। यज्ञ के निमित्त उनका पूजन करो ॥१॥ हे अग्ने ! गौएँ द्वार ... करते ... की चाहना करने के समान, यजमान दिन-रात्रि में तुम्हारी ...

है तुम अनेकों के पूज्य, आकाशव्यापी और यज्ञों में निवास करने वाले हो ।२। अग्निदेव ! तुम प्रदीप्त हुए धनयुक्त रथ वाले, आकाश-पृथिवी के स्वामी, कार्यों को सिद्ध करने वाले हो और स्तुत्य हो। देवगण तुमको ही जगत के मातृभूत रूप में स्थापित करते हैं ।३। हे अग्ने ! तुम अपनी गगनचुम्बी ज्वालाओं से चन्द्रमा के समान लगने वाले चैतन्यताप्रद हो। तुम जलों के समान रक्षक आकाश-पृथिवी में व्यापक होते हो। तुमको यज्ञ मंडप में यजमान स्थापित करते हैं ।४। हवि-सपादक अग्नि यज्ञों को प्राप्त करे। वह औषधियों में प्रज्ज्वलित होकर नक्षत्रों के समान आकाश-पृथिवी को प्रकाशित करते हैं। यज्ञों में साधकगण उन्हें सजाते हैं ।५।   (२०)

स नो रेवत्समिधान. स्वस्तये सन्ददस्वान्रयिमस्मासु दीदिहि ।
आ न कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषी देव वीतये ॥६

दा नो अग्ने बृहता दा सहस्रिणो दुरो न वाज श्रुत्या अपा वृधि ।
प्राची द्यावा पृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतः ॥७

स इधान उषसो राम्या अनु स्वर्ण दीदेदरुषेण भानुना ।
होत्राभिरग्निर्मनुष स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चारुरायवे ॥८

एवा नो अग्ने अमृतेषु पूर्व्य धीष्पीपाय बृहद्दिवेषु मानुषा ।
दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना शतिन पुरुरूपमिषणि ॥९

वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा व चितयेमा जनाँ अति ।
अस्माक द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्वर्ण शुशुचीत दुष्टरम् ॥१०
स नो बोधि सहस्य प्रशस्यो यस्मिन्त्सुजाता इषयन्त सूरयः ।
यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांस स्वे दमे ॥११
उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि ।
वस्वो राय पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥१२
येस्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरय. ।

ईलितो अग्ने मनसा नो अर्हन्देवान्यक्षि मानुषात्पूर्वो अद्य ।
स आ वह मरुतां शर्धो अच्युतमिंद्रं नरो बर्हिषद यजध्वम् ॥३
देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम् ।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥४
वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।
व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥५॥२२

वेदी मे प्रतिष्ठित अग्नि सम्पूर्ण यज्ञ स्थान मे व्याप्त है। वे यज्ञ सम्पादक, पावक, प्रकाशित होकर देवताओ का पूजन करने वाले हो ॥१॥ नराशंस नाम वाले अग्निदेव अपनी महत्ता से प्रदीप्त हुए तीनो लोको को व्याप्त करते है। यह हविर्युक्त घृत-सिंचन की कामना वाले देवताओं को यज्ञ मे बुलावे ।२। प्रसन्न, मन वाले यज्ञ मे समर्थ होते हुये देवताओं का यजन करे। ऋत्विजो, मरुद्गण और अविनाशी इन्द्र के प्रति वाणी रूप स्तुति करो। कुश पर स्थित इन्द्र का पूजन करो ।३। हे कुश स्थित अग्ने ! हमको विस्तृत धन दिलाने के लिए बढ़ो। तुम बुद्धिमय और वीरतायुक्त हो। हे वसु देवताओ, विश्वेदेवो, आदित्यो तुम घृत सिंचित कुश पर विराजो ।४। हे प्रकाशित अग्निदेव ! तुम यज्ञ-द्वार का उद्घाटन करो। मनुष्यों मे तुम महान के प्रति हवि देते हुए सामीप्य प्राप्त करते हो। तुम वीरतायुक्त, यशस्वी व्यापक और वरण करने योग्य अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त हो ।५। (२२)

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते ।
तन्तुं तत संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥६
दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा ।
देवान्यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥७
सरस्वती साधयन्ती धियं न इला देवी भारती विश्वतूर्तिः ।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥८
पि[illegible] [illegible] वीरो जायते देवकामः ।

प्रजा त्वष्टा वि ष्युत नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥९
वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थादग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः ।
त्रिधा समक्त नयतु प्रजानन्देवेभ्यो दैव्य. शमितोप हव्यम् ॥१०
घृत मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृ ते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृत वृषभ वक्षि हव्यन् ॥११॥२३

उत्तम कर्म मे प्रेरित करने वाली उषा और रात्रि दो स्त्रियों की तरह परस्पर अनुकूल हुई यज्ञ का स्वरूप बनाती हुई पट बुनने वाली के समान चलती है। वह जल सींचने वाली तथा अभीष्ट फल देने वाली है।।। विद्वानों मे देवता के समान पूज्य अग्नि होता रूप है। वे स्तुतियों द्वारा पूजन करते हुए देव-यज्ञ सम्पन्न करते हैं। वे पृथिवी की नाभि रूप उत्त वेदी मे तीनों वरणीय धर्मों के निमित्त सुसंगत होते हैं।७। हमारी बुद्धि को कर्मों मे प्रेरित करती हुई सरस्वती, इला और भारतीय यज्ञ मण्डप अन्नाश्रय प्राप्त करती हुई हमारे यज्ञ की रक्षा करें।८। अग्नि रूप त्वष्टा के अनुग्रह से हमे शीघ्र कार्यकारी, अन्नोत्पादक यज्ञ और देवताओं को आनन्द वाला वीर पुत्र हो हमारी सन्तान अपने कुल का पालन करने वाली हो और हमे अन्न की प्राप्ति हो।९। हमारे कर्मों के ज्ञाता अग्नि हम प्राप्त हो। अपने उत्तम कर्मो से हव्यान्न का परिपाक कर देवों को पहुँचावें ।१०। घृत अग्नि का आश्रय स्थान एवं प्रकाश है। मैं अग्नि में घृत डालता हूँ। हे मनोरथ वर्षक अग्ने! हविदान के समय देवों को बुलाकर उनको प्रसन्न करते हुए हव्य उनको पहुँचाओ।११। (२३)

४ सूक्त

(ऋषि—सोमाहुतिर्भार्गवः। देवता—अग्नि। छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।
मित्रइव यो दिधिषाय्यो भूद्देव आदेवे जने जातवेदाः ॥१
इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वायोः ।

एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥२
अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम् ।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥३
अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः ।
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ॥४
आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तोशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम् ।
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वां यो मुहुरा युवा भूत् ॥५॥२४

यजमानो ! अतिथि स्वरूप अग्नि को तुम्हारे निमित्त आहूत करता हूँ। वे सब प्राणियों के ज्ञाता और मनुष्य एवं देवगण के धारक हैं।१। भृगुवंशियों ने जिन अग्नि का जल-स्थान, अन्तरिक्ष और मनुष्यों में स्थापित किया, वे द्रुतगामी अश्व वाले हमारे शत्रुओं को हरावें।२। देवगण ने अग्नि को मनुष्यों में मित्र के समान स्थापित किया। वे अग्नि हविदाता के गृह में निवास कर रात्रियों में प्रकाश करते हैं।३। जैसे अपने शरीर की पुष्टि करते हैं, वैसे अग्नि का पुष्ट करो। जब वे अग्नि अधिक बढ़ते हुए काष्ठादि का भक्षण करते हैं, उस समय वे अत्यन्त तेजस्वी हो जाते हैं। जैसे रथ में जुता हुआ घोड़ा अपनी पूँछ हिलाता है, वैसे उनकी ज्वालाएँ वायु पर हिलती हैं।४। अग्नि की महानता का गुणगान करने पर रूप प्रदर्शित करते हैं। वे हव्य ग्रहण करने को लपटों से युक्त होते हैं तथा वे कभी वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं करते।५।   (२४)

आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत् ।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥६
स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वी पशुर्नैति स्वयुरगोपाः ।
अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन्कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम ॥७
नू ते पूर्वस्यावसो अधीतौ तृतीये विदथे मन्म शंसि ।
अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ॥८

त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपरां अभि ष्युः ।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत्सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः ॥६॥

प्यासे के समान अग्नि वनो को जलाते और जलो के समान शब्द करते और अपने कार्य करते हैं। वे रथ मे जुते अश्व के समान शोभायमान होते हैं। को प्रकट करते हुये भी सूर्य मण्डल के समान विश्व व्यापक अग्नि पृथिवी पर बढ़ते और स्वामी-हीन पशु के समान है। यही प्रदीप्त अग्नि वनो को भस्म कर पीडा देने वाले काँटो को भी देते है ।७। हे अग्ने ! तुम्हारे प्रथम सवन की रक्षा को याद करके तृतीय सवन मे रमणीय स्तुतियाँ करते है। तुम हमको वीरत्व, यश और सुन्दर धन प्रदान करो ।८। हे अग्नि ! गुफा मे बैठे हुए ऋषिगण तुम्हारे द्वारा रक्षित हुए स्तोत्र उच्चारण करते हुए दिव्य धन प्राप्त करते हैं। वे सन्तानादि पाकर शत्रुओ को हराने मे समर्थ होगे। तुम विद्वान् स्तोताओं को वरणीय धनो को दो ।९। (२१)

५ सूक्त

(ऋषि—सोमाहुतिर्भार्गव । देवता—अग्नि । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्)

होताजनिष्ट चेतन. पिता पितृभ्य ऊतये ।
प्रयक्षञ्जेन्य वसु शकेम वाजिनो यमम् ॥१॥
आ यस्मिन्त्सप्त रश्मयस्तता यज्ञस्य नेतरि ।
मनुष्वद्दैव्यमष्टम पोता विश्व तदिन्वति ॥२॥
दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्माणि वेरु तत् ।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥३॥
साकं हि शुचिना शुचि: प्रशास्ता क्रतुनाजनि ।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वया इ वानु रोहते ॥४॥
ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः ।
कुवित्तिसृभ्य आ वर स्वसारो या इदं ययुः ॥५॥

अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे । एना सूक्तेन सुजात ॥२
तं त्वा गीर्भिगिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः सपर्येम सपर्यवः ॥३
स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद् द्वेषांसि ॥४
स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम् ।
स नः सहस्रिणीरिषः ॥५
ईळानायावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरा गहि ॥६
अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वाञ्जन्मोभया कवे । दूतो जन्येव मित्र्यः ॥७
स विद्वाँ आ च पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक् ।
आ चास्मिन्त्सत्सि बर्हिषि ॥८॥

हे अग्ने ! मेरी समिधा और आहुतियों को ग्रहण करो । मेरे स्तो को सुनो ।१। हे अग्निदेव ! हम तुम्हें आहुतियों से प्रसन्न करें । तु उत्तम जन्म वाले, बल के पुत्र हो । यज्ञ का विस्तार करते हो । हमारी स्तु से प्रसन्न होओ ।२। हे धनदाता अग्ने ! तुम यज्ञ की कामना वाले, स्तु के योग्य हो । हम तुम्हारे साधक स्तुतियों से प्रार्थना करते हैं ।३। हे अग्ने तुम मेधावी धन देने वाले हो । उठकर हमारे शत्रुओं को भगा दो ।४ अग्नि, हमारे लिए, अन्तरिक्ष से जल वर्षा करते हैं । वह हमें महाबली बना और असख्य अन्न प्रदान करें ।५। हे अतियुवा अग्ने ! मेरी स्तुतियों के प्रति आओ । मैं तुम्हारे आश्रय की इच्छा से पूजन करता हूँ ।६। हे अग्नि ! तुम मनुष्यों के मनों की बात जानते हो । तुम उनके दोनों जन्मों की बात जानते हो । तुम ज्ञानी, मित्रों का हित करने वाले तथा दूत रूप हो ।७। हे अग्ने ! तुम ज्ञानी हो, हमारी अभिलाषाएं पूरी करो । तुम चैतन्यताप्रद हो । देवताओं का यज्ञ करने के लिए कुश पर विराजो ।८। (२३)

७ सूक्त

(ऋषि—सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री ।)

...ग्निष्ठ भारस्ताग्ने घ मन्तामा भरं । वसो ... ॥१

मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । पर्षि तस्या उत द्विषः ॥२
विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव अति गाहेमहि द्विषः ॥३
शुचिः पावक वन्द्योऽग्ने बृहद्वि रोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ॥४
त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः । अष्टापदीभिराहुतः ॥५
द्र्वन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥६।२८

हे अविनाशी अग्ने ! तुम पावक पावक प्रशंसनीय और प्रकाशमान हो । बहुतों द्वारा इच्छित धनों के दाता होओ ।१। हे अग्ने ! शत्रुओं का पराभव हम पर न हो पावे । हमारी इस प्रकार रक्षा करो ।२। हे अग्ने ! तुम्हारी कृपा से हम शत्रुओं के पार होने में सब समय समर्थ हों सकें ।३। हे पावक ! तुम पूजनीय हो । घृत की आहुतियों द्वारा तुम अत्यन्त प्रकाशमान हो ।४। हे अग्ने ! तुम पालनकर्त्ता हो । हमारी सुन्दर गौओं, बैलों और बछड़ों द्वारा पूजित हो ।५। सर्पाशी बल के पुत्र, धन सम्पादक, प्राचीन, समिधा रूप अन्न वाले, घृत सिंचन के इच्छुक अग्नि अत्यन्त श्रेष्ठ हैं ।६। (२८)

८ सूक्त

(ऋषि—गृत्समद । देवता—अग्नि । छन्द—अनुष्टुप्)

वाजयन्निव नू रथान्योगाँ अग्नेरुप स्तुहि । यशस्तमस्य मीळ्हुषः ॥१
यः सुनीथो ददाशुषेऽजुर्यो जरयन्नरिं । चारुप्रतीक आहुतः ॥२
य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते । यस्य व्रतं न मीयते ॥३
आ यः स्वर्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा ।
अञ्जानो अजरैरभि ॥४
अग्निमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः विश्वा अधि श्रियो दधे ॥५
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् ।
अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ष्याम पृतन्यतः ।६।२९

जो अग्नि अश्व के समान आचरण वाले, रमणीय अन्न वाले तथा

इच्छित वर्षा करने वाले है, उनका गुणगान करो ।१। जो अग्नि नादरूप से उत्तम गति वाले है, उनको हविदाता शत्रु-नाश के निमित्त बुलाता है ।२। जो अग्नि उत्तम ज्वालाओं से युक्त हुए घरो मे प्रतिष्ठित हुए नित्य पूजे जाते हैं, उनका कर्म अक्षुण्य रहता है ।३। रश्मिवन्त सूर्य के समान ही जरा रहित अग्नि भी लपटों सहित प्रकाशित होते हुए रश्मियो से शोभायमान होते हैं ।४। शत्रु नाशक और सुशोभित अग्नि अत्यन्त तेजमय है। इनकी शोभा अद्भुत है । हम अग्नि, इन्द्र सोम तथा अन्य देवों का आश्रय प्राप्त कर चुके है ।५। अब कोई हमारा अनिष्ट नही कर सकता। हम शत्रुओ को पराजित करने मे समर्थ हो ।६।   (२६)

* इति पचमोध्याय समाप्तम् *

६ सूक्त

(ऋषि—गृत्समद. । देवता – अग्नि. । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति. ।)

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः ।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठ सहस्रम्भर शुचिजिह्वो अग्निः ॥१
त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता ।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गणपाः ॥२
विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥३
अग्ने यजस्व हविषा यजीयाञ्छ्रुष्टी देष्णमभि गृणीहि राधः ।
त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥४
उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म ।
कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥५
सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति ।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद्दिदीहि ॥६॥१

वह अग्नि मेधावी, प्रदीप्त, बलवान, दिव्य [illegible] , पोषक,

सत्यवक्ता और ज्वालायुक्त है । यज्ञशाला मे उत्तम आसन पर विराजमान हो ।१। हे इच्छित वर्षा करने वाले अग्ने ! हमारा दौत्य, कर्म करो । हमारी और हमारे पुत्रो की रक्षा करो ।२। हे अग्ने ! तुम्हारे जन्म स्थान मे तुम्हें पूजेगे । जहाँ प्रकट हुए हो उस स्थान की पूजा करेंगे । वहाँ प्रदीप्त होने पर तुम्हे हवियाँ दी जाती है ।३। हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ यज्ञकर्त्ता हो । हमको दिये जाने योग्य अन्नो को देवताओ से दिलाओ । तुम धन स्वामी हो हमारी स्तुति के ज्ञाता बनो ।४। हे अग्ने ! तुम दर्शनीय एव दुःख-नाशक हो । तुम्हारा दिव्य या पार्थिव कोई भी ऐश्वर्य नष्ट नही होता । स्तोता को अन्न दो और उसे धनो का अधिपति बनाओ ।५। हे अग्ने ! तुम अपने साथियो सहित हम पर दया करो । तुम देवताओ के पोषक हमारे रक्षक और अहिंसित हो ऐश्वर्य से युक्त तुम सर्वत्र प्रकाशमान हो ।६। (१)

१० सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः । देवता अग्नि । छन्द - पंक्ति, त्रिष्टुप् ।)

जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेलस्पदे मनुषा यत्समिद्धः ।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ॥१
श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुषाह चक्रे विभृत्रः ॥२
उत्तानायामजनयन्त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।
शिरिणायां चिदक्तुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥३
जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥४
आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥५
ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वादूतासो मनुवद्वदेम ।
अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥६।२

अग्नि होता और पिता रूप है। वे मनुष्यों द्वारा यज्ञ स्थान में प्रदीप्त किये जाते हैं। वे प्रकाशमान, अमर मेधावी अन्न और बल से युक्त सबके द्वारा सेवा करने योग्य हैं।१। बुद्धिमान्, अद्भुत प्रकाश वाले अविनाशी अग्नि मेरे आह्वान को सुनें। उनके लाल रङ्ग के घोड़े उन्हें विभिन्न स्थानों में पहुँचाते हैं।२। अध्वर्युओं ने दो अरणियों से अग्नि को उत्पन्न किया। वे विविध भेषजों में गर्भ रूप से व्याप्त होते और रात्रि में अत्यन्त प्रकाश से युक्त होते हैं। वे अन्धेरे में छिप नहीं पाते।३। सर्वत्र गमनशील अग्नि महान् और सब लोकों के पालक हैं। वे वृद्धि को प्राप्त हुए हवियों द्वारा व्याप्त होते हैं। हम उन दर्शनीय अग्नि का घृतयुक्त हवियों से पूजन करते हैं।४। सर्वव्यापी यज्ञ की कामना वाले अग्नि को हम घृत से सींचते हैं। वे शान्तिपूर्वक उसे सेवन करें। अग्नि के पूर्ण प्रदीप्त होने पर उन्हें स्पर्श करने में कोई समर्थ नहीं।५। हे अग्ने! अपने तेज से शत्रुओं को हराते हुए हमारी कामना योग्य स्तुतियों को समझो। तुम्हारे आश्रय में हम मनु के समान स्तुति करते हैं। तुम धनदाता हो, हाथ में जुहू लेकर मैं तुम्हें स्तोत्रों से बुलाता हूँ।६। (२)

११ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता - इन्द्रः। छन्द—पंक्तिः बृहती, त्रिष्टुप्)

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्य स्याम ते दावने वसूनाम्।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥१
सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः।
अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥२
उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन्त्स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥३
शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥४
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम्।

उतो अपो द्या नम्नस्वामहन्नहि शूर वीर्येण ॥५॥२

हे इन्द्र ! मेरी स्तुति श्रवण करो। मेरा निरादर न करो। हम तुम से धन लेने के योग्य हैं। यह नदी की तरंग प्रवाहयुक्त हवि यजमान के लिए धन की कामना करती है। यह तुम्हें बढ़ावे ।१। हे वीर इन्द्र ! तुम्हारे द्वारा वर्जित जल पर वृत्र ने आक्रमण किया तुमने उस जल को मुक्त कर दिया। वह वृत्र अपने को अमर समझता था, परन्तु स्तुतियों से वृद्धि प्राप्त कर तुमने उसे धराशायी किया ।२। हे वीर इन्द्र ! तुम जिन सुखकारी स्तोत्रों की कामना करते हो, वे स्तोत्र प्रकाशमान हुए यज्ञ में तुम्हारे निमित्त प्रकट होते हैं ।३। हे इन्द्र ! स्तुतियों से हम तुम्हारा बल बढ़ाते और वज्र भेंट करते हैं। तुम उन दस्युओं को सूर्य के समान तेज से हराते हो ।४। हे इन्द्र ! गुफा में छिपे हुए जिस वृत्र ने अपनी अद्भुत शक्ति से अन्तरिक्ष और आकाश को आश्चर्यान्वित किया उसे तुमने अपने वज्र से मार डाला ।५। (३)

स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि।
स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू। ६
हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम्।
वि समना भूमिरप्रथिष्टारंस्त पर्वतश्चित्सरिष्यन् ॥७
नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन्त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान्।
दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि ॥८
इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः।
अरेजेता ... वृष्णो अस्य वज्रात् ॥९
... यन्मानुषो निजूर्वात्।
... ॥१०॥४

... गाते हैं और इन नवीन
... कर ... हुए वज्र की ध्वजा

गौ और अश्वों की स्तुति करते हैं ।६। हे इन्द्र ! तुम्हारे द्रुतगामी अश्व गंभीर मेघ की ध्वनि वाले हैं । समतल भूमि मेघ की गर्जना से प्रसन्न और मेघ भी सर्वत्र वर्षा करते हुये सुशोभित होते हैं ।७। मेघ अन्तरिक्ष पहुँच कर जल के साथ घूमने लगा । मरुद्गण ने उसके शब्द को बढ़ाते सर्वत्र व्याप्त किया ।८। महाबली इन्द्र ने सचारी मेघ में छिपे हुए वृत्र वध किया । इन्द्र के वज्र द्वारा जल-वर्षक शब्द से आकाश पृथिवी भय हुई कांप गई ।९। जब मनुष्यों का हित करने वाले इन्द्र के वृत्र को मा की इच्छा की तब उनका वज्र गरजने लगा । इन्द्र ने सोम पीकर दैत्य माया को छिन्न-भिन्न कर दिया ।१०।

पिपिदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतास. ।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रमाव ॥११
त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्त. ।
अवस्यवो धमहि प्रशस्ति सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥१२
स्याम ते इन्द्रः ये त ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः ।
शुष्मिन्तमं य चाकनाम देवास्मे रयिं रासि वीरवन्तम् ॥१३
रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शर्ध इन्द्र मारुत न. ।
सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पात्यग्रणीतिम् ॥१४
व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानस्तृपत्सोम पाहि द्रह्यदिन्द्र ।
अस्मान्त्सु पृत्स्वा तरुत्रावर्धयो द्या बृहद्भिरर्कैः ॥१५।५

हे इन्द्र ! इस निचोड़े हुए सोम को पीओ - वह तुम्हे प्रसन्नता दे । उससे तुम्हारी उदर-पूर्ति हो । उदर को पूर्ण करने वाला सोम तुम्हें तृप्ति दे ।११। हे इन्द्र ! हम बुद्धिमान तुम्हारे हृदय में स्थान प्राप्त करेंगे । कर्मफल की इच्छा से तुम्हारा यज्ञ करेंगे । तुम्हारे आश्रय के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं जिससे हम तुम्हारा दिया हुआ धन शीघ्र पा सकें ।१२। हे इन्द्र ! तुम्हारे आश्रय की कामना से तुम्हें हवियों से बढ़ाने वालों के समान हम भी तुम्हारा आश्रय प्राप्त करें । तुम हमको [illegible] वीर पुत्रयुक्त

[illegible] 'विश्वरूप' को नष्ट किया था। हमारे निमित्त [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] द्वारा [illegible] [illegible] के [illegible] को [illegible] के समान इन्द्र [illegible] [illegible] [illegible] शत्रु को नष्ट किया।२०। [illegible] है, [illegible] स्तुति [illegible] का अभीष्ट [illegible] [illegible] हमारे सिवाय किसी अन्य को मत देना। [illegible] इस [illegible] में तुम्हारी स्तुति करें।२१।

१२ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—गृत्समदः । देवता इन्द्रः । छन्द – त्रिष्टुप् ।)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥१
य. पृथिवी व्यथमानमदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥२
यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४
यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५।७

जो अपनी शक्ति सहित प्रकट होकर मनुष्यों मे अग्रगण्य हुए और जिन्होंने देवगण को वीर कर्मों से विभूषित किया। आकाश और पृथिवी जिनके बल से डर गयी, वे इन्द्र हैं।१। जिन्होंने कांपती हुए पृथिवी को दृढ़ता दी और भड़कते हुए पर्वतों को शांत किया, जिन्होंने अन्तरिक्ष को बनाकर आकाश को सहारा दिया, वे इन्द्र है।२। जिन्होंने वृत्र-वध करके सप्त नदियों को बहाया और राक्षस द्वारा रोकी हुई गायो को मुक्त किया, जो मेघो मे अग्नि उत्पन्न करते और युद्ध [illegible] शत्रुओं को मारते है, वह इन्द्र

।३॥ जिन्होंने ससार को रचा और दुष्टों को निम्न गुफाओं में बसाया, जो के धनों को जीतते हैं, वे इन्द्र हैं ॥ ४ ॥ जिनके सम्बन्ध में लोग जिज्ञासा ते और जिनकी चर्चा करते हैं। जो शत्रुओं के धन को शासक के समान र लेते हैं, व इन्द्र हैं ॥५॥　　　　　　　　　　　　　　　(७)

रध्रस्य चोदिता य कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
कप्राव्णो योऽविता सुशिप्र सुतसोमस्य स जनास इन्द्र ।६।
स्याश्वास प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथास. ।
सूर्यं य उषस जजान यो अपा नेता स जनास इन्द्र ।७।
क्रन्दसी सयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
मान चिद्रथमातस्थिवासा नाना हवेते स जनास इन्द्र ।८।
स्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो य युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
ो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्र. ।९।
श श्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
र. शर्धते नानुददाति शृध्या यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्र ।१०।८

अनन्त धन देने वाले, दरिद्र याचक और स्तुति करने वाले को धनदाता सुशोभित यजमानों के पालक जो हैं, वही इन्द्र हैं ॥६॥ जिनकी आज्ञा में अश्व, गौ, रथादि हैं, जो सूर्य और उषा के नियामक और जल प्रेरणा करने वाले हैं, वह इन्द्र हैं ॥ ७ ॥ युद्ध में जिन्हें आहूत करते हैं। ऊँच-नीच, शत्रु-मित्र सभी जिन्हें बुलाते हैं, वह हैं ॥ ८ ॥ जिनकी उपेक्षा से जय-लाभ नहीं होता, रक्षा के लिये जिनका आह्वान किया जाता है, जो दृढ़ पर्वतों को भी नष्ट करने में समर्थ हैं वही इन्द्र हैं ॥ ९ ॥ जिन्होंने पापियों, अकर्मवानों को नष्ट किया, जो स्वाभिमानी को सिद्धि देते और दुष्टों को मारते हैं, वे इन्द्र हैं ॥१०॥　　　(८)

य शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयान स जनास इन्द्रः ।११।

न्वेको वदति यद्दाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।
वश्वा एकस्य विनुदन्तिनिक्षते यस्ताकृणोः प्रथम सास्युक्थ्य ।३।
जास्य. पुष्टि विभजन्त आसते रयमिव पृष्ठ प्रभवन्तमायते ।
मासिन्वन्दष्ट्रै पितुरत्ति भोजन यस्ताकृणो प्रथम सास्युक्थ्यः ।४।
मधाकृणो पृथिवी सन्दृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक्पथः ।
त् त्वा स्तोमोभिरुदभिनं वाजिन देव देवा अजनन्त्सास्युक्थ्य ।५।१०

सोम वर्षा से उत्पन्न होता है, जल मे बढ़ता । जल की सारभूत सोम लता बढ़ती हुई निचोड़े जाने के योग्य होती है । वही अमृत तुल्य सोम इन्द्र का पेय है ।।१।। जल बहाने वाली नदियाँ सर्वत्र प्रवाहित हुई समुद्र मे जाती हैं । जल निचले मार्ग पर चलता है । हे इन्द्र ! तुम यह सब कार्य कर चुके हो, अत प्रशंसा के योग्य हो ।।२।। एक यजमान दान करता है दूसरा उसका गुणगान करता है । एक जल उत्तम पदार्थो को नष्ट करता, दूसरा अवगुणों का शोधन करता है । हे इन्द्र ! इन कर्मों के कर चुकने के कारण हो तुम प्रशंसित हो ।३। हे इन्द्र ! गृहस्थ जैसे अभ्यागतों का धन दान करते है, वैसे ही तुम्हारा धन प्रजाओ मे व्याप्त है, मनुष्य जैसे भोजन को पचाता है वैसे ही तुम प्रलय काल मे इस सृष्टि को पचा जाते हो । हे इन्द्र ! अतः कर्मों से ही तुम स्तुति के पात्र हो ।।४।। हे इन्द्र ! तुमने आकाश-पृथिवी को सुन्दर बनाया । नदियों के मार्ग को बनाया । तुम वृत्र के मारने वाले हो । जैसे तुम अश्व को पानी पि ते हो, वैसे ही साधक तुम्हे स्तुतियाँ भेंट करते है ।।५।। (१०)

यो भोजन च दयसे च वर्धनमार्द्राद्रा शुष्क मधुमद्दुदोहिथ ।
सः शेवधि नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ।६।
य. पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाधि दाने व्य वनीरधारयः ।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरूर्वां अभितः सास्युक्थ्य ।७।
यो नार्मर सहवसु निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावह ।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत्सास्युक्थ्यः ।८।

शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्
अरज्जौ दस्यून्त्समनुब्ददभीतये सुप्राव्यो
विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै
पलस्तम्ना विष्ठिरः पञ्च सन्दृशः परि प

हे इन्द्र ! तुम अन्न और धन देने
उपजाते तथा वर्षा से सूखा अन्न प्राप्त करा
नहीं हैं, इसलिये स्तुति के योग्य हो ॥ ६ ॥
की रक्षा करते हो, सूर्य को ज्योति देकर उसे
महत्ता से ही सब प्राणियों को प्रकट किया इस
हे असंख्यकर्मा इन्द्र ! हवि ग्रहण करने और अ
तुमने वज्र का मुख खोला । तुम प्रशंसा के
सहस्रों धनों के स्वामी हो । ऋषि के लिये तुमने
घेर कर मार डाला । इसलिये तुम प्रशंसा-योग्य हो
बल से बसती है । साधक इन्द्र को हवि देते
पृथिवी, दिवस रात्रि, जल तथा ओषधि आदि को
प्रशंसा के पात्र हो ॥१०॥

सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं यदेकेन क्रतुना विन्द
जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र
[illegible]

[illegible]

ग और अन्धे तथा प गु परावृज का उद्धार किया तुम स्तुति के योग्य हो
२॥ हे इन्द्र ! हमको उपभोग्य धन दो। तुम्हारा दान वास योग्य तथा दिव्य
। हम नित्य प्रति उसकी कामना करते हैं। हम सतानादि से युक्त हुए स्तुति
ते हैं ॥१३॥   (१२)

१४ सूक्त

(ऋषि—गृत्समद। देवता—इन्द्र। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति।)

ध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभि सिञ्चता मद्यमन्धः।
ामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥१॥
ध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम्।
स्मा एतं भरत तद्वशाय एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥२॥
ध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि बलं वः।
स्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जून वस्त्रैः ॥३॥
ध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून्।
ो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥४॥
ध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम्।
। पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥५॥
ध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः।
ो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै ॥६॥१३

हे अध्वर्युओ ! इन्द्र के निमित्त सोम लाओ। चमस द्वारा अग्नि मे
वि दो। सोम-पान के इच्छुक इन्द्र को सोम भेंट करो ॥ १ ॥ वज्र द्वारा
ल को रोकने वाले वृत्र के वधकर्त्ता इन्द्र के निमित्त सोम लाओ। इन्द्र
ोम पीने के योग्य हैं ॥ २ ॥ जिस इन्द्र ने गायों का उद्धार किया और राक्षसो
ो मारा उस इन्द्र के लिये सोम को व्याप्त करो और वस्त्र से आच्छादित
रने के समान इन्द्र को सोम से ढक दो ॥ ३ ॥ जिस इन्द्र ने निन्यानवे भुजा
ाले 'उरण' तथा 'अर्बुद' का हनन किया, उसी इन्द्र को सोम सिद्ध होने

पर भेंट करो ॥४॥ जिस इन्द्र ने 'अश्व' को मारा, 'शुष्ण' के करने [illegible] 'पिप्रु' 'नमुचि' और 'सधिक्ता' का हनन किया, उन्हीं इन्द्र को हवि दो ॥[illegible] जिस इन्द्र ने वज्र से 'शम्बर' के पाषाण नगरों का विध्वंस किया तथा 'वर्चि' एक लाख अनुयायियों को धराशायी किया, उन्हीं इन्द्र के निमित्त सोम [illegible] आओ ॥६॥

अध्वर्यवो य. शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्न्यावृणाभरता सोममस्मै ।७।
अध्वर्यवो यन्नर. कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।
गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोम यज्यवो जुहोत ।८।
अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।
जुषाणो हस्त्यमभि ववशे वा इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ।९।
अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद्दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ।१०।
अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो य: पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।
तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ।११।
अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राध: समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीरा: ।१२।४

जिस रिपुनाशक इन्द्र ने एक लाख दैत्यों को धराशायी किया तथा 'कु[illegible] आयु, और 'अतिथिग्व' के वैरियों को मारा, उसी इन्द्र के लिए सोम [illegible] आओ ॥७॥ हे अध्वर्युओ ! इन्द्र को सोम भेंट करने पर तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी, हाथों से सिद्ध किए उस सोम को लाकर इन्द्र को दो ॥८॥ अध्वर्युओ ! इनको हर्षित करने वा[illegible] सोम तैयार करो । [illegible] इन्द्र तुमसे सोम चाहते हैं, उनके लिए [illegible] सोम भेंट करो ॥९॥ अध्वर्युओ ! गौओं के [illegible] भर दो । मैं सोम [illegible] राजा है । [illegible] को सुखी करो ॥१०॥ इन्द्र [illegible]

जाता है। जैसे जौ से बर्तन भरा जाता है, वैसे ही सोम से इन्द्र को भर दो ॥११॥ हे उत्तम दान देने वाले इन्द्र! हमको मांगने योग्य धन दो तुम्हारा दान अद्भुत है, हम नित्य ही इसकी इच्छा करते हैं। श्रेष्ठ सन्तानों से युक्त हुए हम इस यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करें ॥ १२॥ (१४)

१५ सूक्त

(ऋषि—गृत्समद । देवता—इन्द्र । छन्द—पङ्क्ति, त्रिष्टुप्)

प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।
त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ।१।
अवंशे द्यामस्तभायद् बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम् ।
स धारयत्पृथिवी पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ।२।
सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।
वृथा सृजत्पथिभिर्दीर्घयाथै सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ।३।
स प्रवोलहॄन्परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ ।
सं गोभिरश्वैरसृजद्रथेभि सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ।४।
स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात्सो अस्नातृनपारयत्स्वस्ति ।
त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थु सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ।५।१४

शक्तिशाली हूं सत्य विचार वाले के महान् यशों का बखान करता हूं। इन्द्र ने सोम-पान से उत्पन्न बल से बढ़कर 'अहि' को मारा ॥ १ ॥ इन्द्र ने सूर्य मण्डल को रोक रखा है। आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष को तेज दिया है। इन्द्र ने यह सब कार्य सोम से उत्पन्न हुई शक्ति द्वारा किये हैं ॥ २ ॥ इन्द्र ने इस अखिल विश्व का मुख पूर्व की ओर रखा है। उन्होंने वज्र से नदी के द्वारों को खोल कर दीर्घकाल तक प्रवाहित रहने योग्य मार्गों पर बहाया। इन्द्र ने ये कार्य सोम से उत्पन्न बल से किये ॥३॥ 'दभीति' ऋषि को नगर से बाहर ले जाते हुए राक्षसों को रोक कर उनके शस्त्रों को इन्द्र ने

भस्म किया । फिर दभीति को गवादि धन दिया । सोम द्वारा उत्प[illegible]
इन्द्र ने यह कर्म किया ॥ ४ ॥ इन्द्र ने, पार जाने के लिये नदी को [illegible]
असमर्थ व्यक्तियों को पार लगाया । वे धन को लक्ष्य करते हुये नदी [illegible]
हुये । इन्द्र, ने सोम के आनन्द मे यह कार्य किया ॥५॥

सादन्च सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उपसः सं पिपपे ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ।६।
सा विद्वाँ अपगोहं कनीनामविर्भवन्नु दतिष्ठत्परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद्व्यन नगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ।७।
भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ।८।
स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ।९।
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहियदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ।१०।

इन्द्र ने अपनी महिमा से सिन्धु नदी को उत्तर की ओर प्रवाहित [illegible]
वज्र द्वारा उषा के रथ को तोड़ा । यह कार्य इन्द्र ने सोम के बल से किया ॥[illegible]
अपने विवाह को आई हुई कन्याओं को भागता देखकर परावृक्‌ पंगु होते [illegible]
भी उठकर दौड़ पड़े । नेत्र-विहीन होने पर भी देखने में समर्थ हुए उनको [illegible]
से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उन्हें पांव और नेत्र दिये । यह कार्य उन्होंने [illegible]
प्रसन्नता मे किया ॥७॥ अङ्गिरावंशियों की स्तुति पर इन्द्र ने बल को [illegible]
किया और पर्वत के द्वार को खोला तथा [illegible] बाधा [illegible] को । [illegible]
में इन्द्र ने यह काम किया ॥८॥ हे इन्द्र चुमुरि और धुनि नामक दैत्यों को [illegible]
मारा तथा दभीति ऋषि की रक्षा की । सोम के [illegible] में [illegible] यह किया ॥९॥
हे इन्द्र ! तुम्हारी ऐश्वर्य वाली दक्षिणा [illegible] का [illegible] पूर्ण करती है, [illegible]

इमे दो। किसी अन्य को न देना। हम सतानयुक्त होकर यज्ञ मे तुम्हारी स्तुति करेगे ॥१०॥ (१६)

१६ सूक्त

(ऋषि–गृत्समदः। देवता—इन्द्र। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे ॥१॥
यस्मादिन्द्राद् बृहतः किं चनेमृते विश्वान्यस्मिन्त्सम्भृताधि वीर्या।
जठरे सोमं तन्वी सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥२॥
न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥३॥
विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥४॥
वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ॥५॥१७

हम तुम्हारे निमित्त उन महानतम इन्द्र के प्रति प्रदीप्त अग्नि मे हवि देते हैं और सुन्दर स्तुति गाते है। उन अजर, परन्तु विश्व को बुढापा देने वाले सोम पायी इन्द्र का आह्वान करते है ॥ १ ॥ इन्द्र के बिना जगत् कैसा? वह सर्व शक्तिमान् और विराट है। सोम-रस धारण करने वाले बली और तेजस्वी हैं। वे ज्ञानी और वज्रधारी है ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! जब तुम अपने अश्व पर सुदूर गमन करते हो तब आकाश और पृथिवी तुम्हारे बल को जीत नही सकती। समुद्र और पर्वत तुम्हारे रथ को नही रोक सकते। तुम्हारे बल का सामना कोई नही कर सकता ॥ ३ ॥ यजने योग्य शत्रुहन्ता वर्धक इन्द्र का सभी यज्ञ करते हैं। हे विद्वान् ! तुम सोम देने वाले हो। इन्द्र के लिये यज्ञ करो। हे इन्द्र ! कामनाओ की वर्षा करने वाले अग्नि के साथ सोम पियो ॥४॥

भस्म किया । फिर दभीति को गवादि धन दिया । सोम द्वारा [illegible]
इन्द्र ने यह कर्म किया ॥ ४ ॥ इन्द्र ने, पार जाने के लिये नदी [illegible]
असमर्थ व्यक्तियों को पार लगाया । वे धन को लक्ष्य करते हुए [illegible]
हुये । इन्द्र, ने सोम के आनन्द में यह कार्य किया ॥५॥

सादञ्च सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उपसः सं पिपेे ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥[illegible]

सा विद्वाँ अपगोह कनीनामविर्भवन्नुदतिष्ठत्परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद्वयन नगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥[illegible]

भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येपां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥[illegible]

स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥[illegible]

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो [illegible] विदथे सुवीराः ॥[illegible]

स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।
शूरो यो युत्सु तन्व परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ।२।
अधाकृणोः प्रथम वीर्यं महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरय ।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युता प्र जीरय सिस्रते सध्र्यक् पृथक् ।३।
अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मनेशानकृत्प्रवया अभ्यवर्धत ।
आद्रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत्सीव्यन्तमांसि दुधिता समव्ययत ।४।
स प्राचीनान्पर्वतान्दृंहदोजसाधराचीनमकृणोदपामप. ।
अधारयत्पृथिवी विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रस ।५।१६

मनुष्यो ! अङ्गिराओ के समान नवीन स्तोत्रो से इन्द्र की पूजो । इन्द्र का तेज सूर्य रूप से उदय होता है । सोम से उत्पन्न हर्ष के कारण इन्द्र ने वृत्र द्वारा रोके हुये मेघ को खोला ।। १ ।। इन्द्र ने युद्ध काल मे, यजमान की इच्छा से सोम-पान के निमित्त अपनी महिमा को बढ़ाया वे इन्द्र प्रसन्न हों । उन्होने अपने मस्तक पर सूर्य लोक को धारण किया ।।२।। हे इन्द्र ! तुम पुरुषार्थी हो । स्तुति से प्रसन्न होकर तुमने शत्रु को नष्ट करने वाली शक्ति प्रकट की ।तुम्हारे रथ मे जुड़े हुये घोड़ो के कारण दुष्ट लोग दल बद्ध होकर और कुछ छिन्न-भिन्न होकर भाग गये ।।३।। बहुत अन्न वाले इन्द्र सब संसार के स्वामी है । उन्होने आकाश-पृथिवी को व्याप्त किया । उन्होंने अन्धकार को सबत्र प्रविष्ट करते हुये विश्व को ढक दिया ।।४।। इन्द्र ने गमनशील पर्वतो को अचल किया । ष से जल को गिराया । संसार को धारण करने धारण करने वाली पृथिवी को अपने बल से धारण किया और आकाश को इस प्रकार स्थापित किया, जिससे वह गिर न सके ।।५।।

(६)

सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि ।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक् तुविष्वणि. ।६।
अजातूरिव पितो. सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम् ।
कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो येन मामहः ।७।

मदकारी और इच्छितवर्षी सोम अनुष्ठान करने वालों के निमित्त इन्द्र ही को जाता है । अध्वर्यु पाषाण द्वारा सोम को कूटते छानते हैं ॥५॥

वृषा ते वज्र उत ते वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा ।
वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृष्णुहि ॥६॥
प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥७॥
पुरा सम्बाधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी ।
सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥८॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥

हे इन्द्र ! तुम्हारा वज्र, रथ, अश्व और आयुधों सभी अभीष्ट वर्ष करने वाले हैं । तुम हर्षकारी सोम के अधिकारी हो । अतः उसके द्वारा तृप्ति को प्राप्त करो ॥६॥ हे इन्द्र ! तुम रिपुहन्ता हो । स्तोता का युद्ध में नाव की तरह बचाते हो । यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करता हुआ मैं तुमको प्राप्त होता हूँ । हमारे स्तोत्र को भले प्रकार जानो । हम तुम्हें सींचेंगे ॥७॥ जैसे घास खाकर गाय बछड़े को लौटाती है, वैसे ही हमें भी अनिष्ट से लौटाओ । हे शतक्रतो इन्द्र ! जैसे पत्नियाँ पतियों को प्रसन्न करती हैं, वैसे ही हम भी अपने रुचिकर स्तोत्र द्वारा तुम्हें प्रसन्न करेंगे ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी ऐश्वर्यशाली दक्षिणा स्तोता के अभीष्ट पूर्ण करती है, वह दक्षिणा हमें प्रदान करो, किसी अन्य को नहीं । हम संतानयुक्त हुये इस यज्ञ में स्तुति करेंगे ॥९॥ (१८)

१७ सूक्त

(ऋषि-गृत्समदः । देवता—इन्द्रः छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते ।
विश्वा यद्गोत्रा सहसा परीवृता मदे सोमस्य ... ॥१॥

स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।
शूरो यो युत्सु तन्व परिव्रत शीर्षणि द्या महिना प्रत्यमुञ्चत ।२।
अधाकृणो. प्रथम वीर्य महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरय ।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युता प्र जीरय सिस्रते सध्र्यक् प्रथक् ।३।
अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मनेशानकृत्प्रवया अभ्यवर्धत ।
आद्रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत्सीव्यन्तमांसि दुधिता समव्ययत ।४।
स प्राचीनान्पर्वताम्द हदोजसाधराचीनमकृणोदपामप. ।
अधारयत्पृथिवी विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रस. ।५।१६

मनुष्यो ! अङ्गिराओ के समान नवीन स्तोत्रों से इन्द्र को पूजो । इन्द्र का तेज सूर्य रूप से उदय होता है । सोम से उत्पन्न हर्ष के कारण इन्द्र ने वृत्र द्वारा रोके हुये मेघ को खोला ।। १ ।। इन्द्र ने युद्ध काल मे, शत्रुनाश की इच्छा से सोम-पान के निमित्त अपनी महिमा को बढ़ाया वे इन्द्र प्रसन्न हो । उन्होने अपने मस्तक पर सूर्य लोक को धारण किया ।।२।। हे इन्द्र ! तुम पुरुषार्थी हो । स्तुति से प्रसन्न होकर तुमने शत्रु को नष्ट करने वाली शक्ति प्रकट की ।तुम्हारे रथ मे जुड़े हुये घोड़ो के कारण दुष्ट लोग दल बद्ध होकर और कुछ छिन्न-भिन्न होकर भाग गये ।।३।। बहुत अन्न वाले इन्द्र सब ससार के स्वामी है । उन्होने आकाश-पृथिवी को व्याप्त किया । उन्होने अन्धकार को सर्वत्र प्रेरित करते हुये विश्व को ढक दिया ।।४।। इन्द्र ने गमनशील पर्वतो को अचल किया । घ से जल को गिराया । ससार को धारण करने धारण करने वाली पृथिवी को अपने बल से धारण किया और आकाश को इस प्रकार स्थापित, किया, जिससे वह गिर न सके ।।५।।　　　　　　　　　　　　　　　　　(१६)

सास्मा अरं बाहुभ्या य पिताकृणोद्विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि ।
येना पृथिव्या नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक्तुविष्वणिः ।६।
अजाजूरिव पित्रो. स चा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम् ।
कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भाग तन्वो येन मामह. ।७।

आ विंसत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजान ।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ।५।२१

यह स्तुति के योग्य पवित्र यज्ञ उषाकाल मे प्रारंभ हुआ । इसमे चार पाषाण तीन स्वर सात छन्द और दश प्रकार के पात्र हैं । यह मनुष्यो को दिव्यता प्रदान करता है । यह रमणीय स्तोत्र और हवियो से सिद्ध होगा ॥१॥ यह यज्ञ तीनो सवनो मे इन्द्र को संतुष्ट करने वाला है । यह मनुष्यो के लिये शुभ फल वाला है । ऋत्विगण सिद्धि स्तोत्र प्रकट करते हैं । अभीष्ट पूरक यज्ञ अन्य देवताओ से सुसंगत होता है ॥ २ ॥ नवीन स्तोत्रो द्वारा इन्द्र के रथ मे अश्व संयोजित किये जाते हैं । इस यज्ञ मे अत्यन्त बुद्धिमान् स्तोता हैं । हे इन्द्र! अन्य यजमान तुम्हारी तृप्ति करने मे समर्थ नहीं हैं ॥३॥ हे इन्द्र ! आहूत हुये तुम अपने विभिन्न सख्यक अश्वो द्वारा सोम-पान के लिये आओ । यह सोम तुम्हारे निमित्त प्रस्तुत है, इसे त्यागना नहीं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ और सत्तर गति वाले घोड़ो को रथो से जोड़कर सोम पीने के लिये यहाँ आओ ॥५॥ (२१)

आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमान. ।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ।६।
मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य ।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथास्मिञ्छूर सवने मादयस्व ।७।
न म इन्द्रेण सख्यं वि योषदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत ।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवास. स्याम ।८।
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ।९।२२

हे इन्द्र ! अस्सी, नब्बे और सौ अश्वो द्वारा इधर को प्राप्त होओ । तुम्हारी प्रसन्नता के लिये पात्र मे सोम प्रस्तुत है ॥ ६॥ हे इन्द्र ! मेरी स्तुति से प्रसन्न होओ । संसार व्यापी अपने दोनो अश्वों को रथ मे जोड़ो ।

तुम्हें बहुत से यजमान बुलाते हैं। तुम इस यज्ञ में बल प्राप्त करो ॥७॥ ..
की मैत्री कभी न छूटे। यह दक्षिणा हमको इच्छित फल दे। हम इन्द्र की
विपत्ति को दूर करने वाले को पाहन हैं। हम सभी युद्धों में जीतें ॥८॥
हे इन्द्र ! तुम्हारी ऐश्वर्य वाली दक्षिणा स्तुति करने वाले की इच्छापूर्ण
करने वाली है, वह हमारे सिवाय अन्य को प्राप्त न हो। तुम स्तुति के योग्य
हो। हम सन्तानयुक्त हुये इस यज्ञ में स्तुति करेंगे ॥९॥ [२२]

१९ सूक्त

(ऋषि-गृत्समद. । देवता-इन्द्रा । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः।)

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः।
स्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥१॥
स्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत्।
यद्वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥२॥
स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम्।
अजनयत्सूर्यं विदद्गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥३॥
सो अप्रतीनि मनवे पुरूणीन्द्रो दाशद्दाशुषे हन्ति वृत्रम्।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत्पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ ॥४॥
स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिणङ्मर्त्याय स्तवान्।
आ यद्रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥५॥२३

सोम छानने वाले यजमान को हर्षवर्द्धक हवियों की प्रसन्नता के
लिये इन्द्र सेवन करे। इससे बढ़े हुये इन्द्र इसी में वास करते हैं। इन्द्र के
स्तोत्रों की कामना वाले ऋत्विक भी इसमें वास किये हुये हैं॥ १ ॥ इस
हर्ष सम्पन्न सोम से आह्लादित इन्द्र के वज्र धारण कर जल रोकने वाले
'अहि' को छेद डाला। उस समय पक्षियों के पुष्करिणी के सामने जाने के
समान प्रसन्नताप्रद जल-राशि समुद्र के सामने पहुँचने लगी ॥ २ ॥ पूजनीय
एवं अहिमर्दक इन्द्र ने जल-प्रवाह को समुद्र के ... । समुद्र को

बनाकर उसने गौऐं प्राप्त की और अपने तेज की शक्ति से सूर्य को प्रकाशित किया ।।३।। हविदाता यजमान को इन्द्र ने श्रेष्ठ धन दिया । वृत्र को मारा और सूर्य को पाने के लिए स्तुति करने वालों मे विरोध होने पर इन्द्र ने अपने साधकों को शरण दी ।। ४ ।। सोम छानने वाले 'एतश' के लिए, स्तुति किये, जाने पर इन्द्र सूर्य को लाये । क्योंकि पुत्र को पिता द्वारा धन देने के समान एतश ने यज्ञ मे इन्द्र को भेंट किया था । (२३)

स रन्धयत्सदिव सारथये शुष्णमशुष कुयव कुत्साय ।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्र पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ।६।
एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्त ।
अश्याम तत्साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयो ।।।
एवा ते गृत्समदा शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः ।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्ज सुक्षितिं सुम्नमश्यु. ।८।
नून सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ।९।२४

इन्द्र ने अपने सारथि 'कुत्स' के लिए 'शुष्ण', अशुष' और 'कुयव' को वश मे किया और 'दिवोदास' के लिए 'शम्बर' के निन्नानवे नगरों को तोड़ा ।।६।। हे इन्द्र ! अन्न की इच्छा से हम तुम्हें स्तुतियों से बलवान् बनाते हैं। तुम्हें प्राप्त कर हम सप्तपदी मैत्री का लाभ पावें । देवविरोधी "पीयु" के प्रति वज्र चलाओ ।।७।। हे इन्द्र ! जाने के लिए मार्ग साफ करने वाले के समान हम तुम्हारे लिए सुन्दर स्तोत्र रचते हैं। तुम्हारे स्तोत्रों की कामना कर अन्न, बल, निवास और सुख को प्राप्त करें ।।८।। हे इन्द्र तुम्हारी धन वाली दक्षिणा स्तोता की इच्छाऐं पूर्ण करती है। वह हमारे सिवा अन्य को न मिले । हम सतानयुक्त हुए इस यज्ञ मे तुम्हारी स्तुति करेंगे ।।९।। (२४)

२० सूक्त

(ऋषि–गृत्समदः देवता–इन्द्रः। छन्द–अनुष्टुप्, पंक्तिः।)

वय ते वय इन्द्र विद्धि षु णः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम्।
वि न्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नॄन् ।१।
त्वं न इन्द्र त्वाभिरूती त्वायतो अभिष्टिपासि जनान्।
त्वमिनो दाशुषो वरूतेत्थाधीरभि यो नक्षति त्वा ।२।
स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता।
यः शंसन्त यः शशमानमूती पचन्त च स्तुवन्त च प्रणेषत् ।३।
तमु स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे यस्मिन्पुरा वावृधुः शाशदुश्च।
स वस्वः काम पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः ।४।
सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान्ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन्।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ।५।२५

हे इन्द्र ! अन्न प्राप्ति के लिये ही रथ बनाने वाला, रथ बनाता है वैसे ही हम तुम्हारे लिये अन्न प्रस्तुत करते हैं। तुम हमसे भली-भाँति परिचित हो। हम स्तुति से तुम्हें प्रकाशमान बनाते है और तुमसे सुख की याचना करते हैं ।।१।। हे इन्द्र ! हमारे पालक और रक्षक होओ। तुम अपने उपासकों की शत्रुओं से रक्षा करते हो। तुम हविदाता के स्वामी हो और उनके शत्रु को भगाते हो हवि से सेवा करने वाले के लिये तुम यह कार्य करते हो ।। २ ।। हम यज्ञानुष्ठान करते है। स्तुति के योग्य, मित्र के समान सुख के देने वाले युवा इन्द्र हमारे रक्षक हों, स्तोता हविदाता और कर्मवान् व्यक्ति को इन्द्र आश्रय देते और कर्मों में निपुण बनाते हैं ।। ३ ।। मैं इन्द्र का स्तोता और उनका प्रशंसक हूँ। उनके स्तोता प्रथम वृद्धि को को प्राप्त हुये और फिर शत्रु का नाश कर पाये। जो नवीन स्तोता इन्द्र के निकट स्तुति-पाठ करते हैं, उनकी धन की कामना को इन्द्र पूर्ण करते हैं ।। ४ ।। अङ्गिरा वंशियों के स्तोत्रों से प्रसन्न हुये इन्द्र ने उन्हें गौयें पाने का मार्ग

। कर उनकी स्तुति पूर्ण की। स्तोताओं की प्रार्थना पर इन्द्र ने सूर्य द्वारा
। को छिपाकर अदन के नगरों का नाश किया ॥५॥   (२५)

ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः ।
त्र प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद्दासस्य स्वधावान् ॥६॥
वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनी पुरन्दरो दासीरैरयद्वि ।
जनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥७॥
स्मै तवस्य मनुदायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ ।
ति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून् पुर आयसीर्नि तारीत् ॥८॥
न सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥२६

तेजस्वी, यशस्वी एवं दर्शनीय इन्द्र साधक के लिये सदा तैयार रहते है। वे रिपुहन्ता बली इन्द्र प्राणियों को दुःख देने वाले दस्यु का मस्तक छिन्न कर फेंक देते है ॥६॥ वृत्र को मारने वाले तथा पुर तोड़ने वाले इन्द्र ने अन्ध-कार को उत्पन्न करने वाले दस्युओं को नष्ट किया। उन्होंने मनुष्य के लिये पृथिवी और जल बनाया। वह यजमान की सुन्दर कामनाओं को पूर्ण करें ॥७॥ जल की प्राप्ति के लिये स्तोताओं ने सदा इन्द्र का बढ़ाया। जब इन्द्र ने हाथ में वज्र लिया, तब उससे असुरों को मार कर उनके लौहपुरों को तोड़ डाला ॥८॥ हे इन्द्र! तुम्हारी ऐश्वर्य वाली दक्षिणा स्तोता की अभीष्ट पूर्ण करती है। उस दक्षिणा को हमारे सिवा अन्य को नहीं देना। हम सन्तानयुक्त हुये इस यज्ञ में स्तुति करेंगे ॥९॥   (२६)

२१ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप् जगती।)

विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते ।
अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥१॥
अ[illegible] [illegible]न्द्राय मन्दतेऽप्सराय तुराय सहमानाय वेधसे ।

तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥२॥
सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहश्च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षित.।
वृतंचय सहुरि विक्ष्वारित इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ॥३॥
अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्य।
रध्रचोदः श्नथनो वीलितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥४॥
यज्ञे न गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः
अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ।
इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥६॥

संसार को जीतने वाले, धन, मनुष्य, भूमि, अश्व, गौ और [illegible] को जीतने वाले अजेय इन्द्र के प्रति उनका इच्छित सोम लाओ ॥१॥ [illegible] हराने वाले, विकराल कर्म द्वारा विनाशक, किसी के द्वारा उल्लंघन [illegible] योग्य, संसार के रचयिता, सदा जयशील इन्द्र के लिए नमस्कार [illegible] वादन करो ॥२॥ बहुतों को हराने वाले, भजन योग्य, [illegible] सोम से आह्लादित, प्रजा का पालन करने वाले इन्द्र के पुरुषार्थ का [illegible] करते हैं ॥३॥ जिनके दान की तुलना हो सके, [illegible] वाले, इच्छित वर्षा करने वाले, दर्शनीय, कर्मों में कभी न हारने [illegible] याद को उत्साह देने वाले, सतारथधारी, महान इन्द्र ने [illegible] द्वारा [illegible] प्रकट किया ॥४॥ इन्द्र की स्तुति करने वाले अङ्गिराओं ने यज्ञ द्वारा [illegible] प्रेरित करने वाले इन्द्र से अपहृत गायों का मार्ग प्राप्त किया। [illegible] इन्द्र की रक्षा प्राप्ति की कामना से स्तुति और पूजा द्वारा [illegible] ॥५॥ हे इन्द्र ! हमको उत्तम धन और [illegible] प्रदान करो। [illegible] धन बढ़ाओ। हमारी वाणी में माधुर्य भरो, हमारे शरीर की [illegible] हमारे [illegible] सभी दिन सुख से पूर्ण हों ॥६॥

(ऋषि गृत्समद । देवता—इन्द्र । छन्द—अष्टि, शक्वरी)

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१॥
अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्द्रः ॥२॥
साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्द्रः ॥३॥
तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् !
यद्देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः ।
भुवद्विश्वमभ्यादेवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम् ॥४॥२८

अत्यन्त बली पूज्य इन्द्र ने अपनी इच्छानुसार "त्रिकद्रु" को यज्ञ मे मिलाया । सोम ने इन्द्र को महान् कार्य सिद्ध करने के लिये प्रसन्न किया । सत्य रूप उज्ज्वल सोम तेजस्वी इन्द्र को प्रसन्न करे ॥१॥ तेजस्वी इन्द्र ने "क्रिवि" को अपने बल से जीता । अपने तेज से आकाश-पृथिवी को पूर्ण किया । वे सोम के बल से वृद्धि को प्राप्त हुए । इन्द्र ने सोम का एक भाग अपने उदर मे धारण किया तथा शेष भाग को देवताओं के लिए दिया । यह सत्यरूप उज्ज्वल सोम इन्द्र को तुष्ट करे ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम बल रहित यत्न मे प्रकट हुये । तुमने पौरुष मे वृद्धि प्राप्त कर हिंसा करने वाले दुष्टो पर

का नाश करो ॥९॥ हे ब्रह्मणस्पति देव ! तुम पवित्र हो, [illegible] वाले हो। तुम्हारी सहायता से हम श्रेष्ठ अन्न पावेंगे हमको हराने वाला दुष्ट शत्रु हमारा स्वामी न बन जाय। हम उत्तम स्तोत्र द्वारा अपने को उन्नत बनावें ॥१०॥

अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद्दमिता वीळुहर्षिणः॥
अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति।
बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो वधो नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः॥
भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो गन्ता वाजेषु सनिता धनंधनम्।
विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वो मृधो बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथाँ इव॥
तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम्।
आविस्तत्कृण्ष्व यदसत्त उक्थ्यं बृहस्पते वि परिरापो अर्दय॥
बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्॥

हे ब्रह्मणस्पति देव ! तुम्हारा दान अनुपम है। तुम [illegible] युद्ध में शत्रुओं को दुःख देते और मारते हो। तुम अदृढ़ [illegible] एवं अहंकारियों को दबाते हो ॥११॥ हे ब्रह्मणस्पति ! जो [illegible] रहित मन वाला अहंकारी हमें मारना चाहता है, उसका नाश [illegible] न कर पावे। हम बलयुक्त हों और शत्रु के क्रोध को नष्ट [illegible] वान हों ॥१२॥ जो ब्रह्मणस्पति युद्ध काल में नमस्कार [illegible] के योग्य है, वे युद्ध करते तथा सब प्रकार का ऐश्वर्य [illegible] सबके स्वामी, हिंसक शत्रु की सेना का [illegible] करते हैं ॥१३॥ हे ब्रह्मणस्पते ! [illegible] पीड़ित करो। [illegible], तुम्हारे [illegible] तुम [illegible] दो ॥१४॥ [illegible]

यथा नो मीढ्वान्त्स्तवते सखा तव बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम्॥१॥
यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसोताऽदर्दर्मन्युना शम्बराणि वि।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरा चाविशद्वसुमन्तं वि पर्वतम्॥२॥
तद्देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन्दृळ्हाव्रदन्त वीळिता।
उद्गा आजदभिनद्ब्रह्मणा वलमगूहत्तमो व्यचक्षयत्स्वः॥३॥
अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत्।
तमेव विश्वे परिरे स्वर्दृशो बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम्॥४॥
सना ता का चिद्भुवना भवीत्वा माद्भिः शरद्भिर्दुरो वरन्त वः।
अयतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद्या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः॥५॥

हे ब्रह्मणस्पति देव। तुम विश्व के अधीश्वर हो। इसी [illegible]
स्वीकार करो। हम इस नवीन स्तोत्र द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं। [illegible]
मित्र हैं, हमको इच्छित फल दो। यह स्तोता तुम्हारा स्तवन करता है।
हे ब्रह्मणस्पति देव। तिरस्कार योग्य व्यक्ति को तुमने अपने [illegible]
स्कृत किया। शम्बर को चीर डाला। दृढ़ हुए बल को [illegible] और [illegible]
छिपी थी, उस पर्वत में घुस गये॥२॥ देवों में श्रेष्ठ ब्रह्मणस्पति [illegible]
पर्वत शिथिल हो गया तथा स्थिर वृक्ष टूट गया। उन्होंने [illegible]
ओर मन्त्र से बल नामक असुर को हटा दिया। सूर्य को [illegible]
को दूर कर दिया॥३॥ पाषाण के समान दृढ़ और मधुर [illegible]
मेघ का ब्रह्मणस्पति ने भेदन किया, सूर्य की किरणों ने [illegible]
जलमय वृष्टि को पृथिवी पर सींचा॥४॥ [illegible]
[illegible]
[illegible]॥५॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]

ते बाहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि नकिः षो अस्त्यरणो जहुर्हि तम् ।७।
ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्र तदश्नोति धन्वना ।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनय ।८।
स संनय. स विनय पुरोहित स सुष्टुत स युधि ब्रह्मणस्पति ।
चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धनादित्सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥६॥
विभु प्रथम मेहनावतो बृहस्पते सुविदत्राणि राध्या ।
इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभये भुञ्जते विश: ।१०।२

विद्वान् अङ्गिराओ ने खोज कर "पणियों" के दुर्ग में छिपाये गए धन को प्राप्त किया । फिर माया को ध्वस्त कर पूर्व स्थान को प्राप्त हुये ॥ ६ ॥ विद्वान अङ्गिराओ ने माया को ध्वस्त कर उसी ओर गमन किया उन्होंने अग्नि को प्रज्ज्वलित कर पर्वत पर फेंका । ये पर्वतों को जलाने वाले अग्नि देव पहले वहाँ नहीं थे ॥७॥ ब्रह्मणस्पति बाण फेंकने में कुशल है । वह अपना इच्छित अभीष्ट धनुष द्वारा प्राप्त कर लेते है । उनका फेंका हुआ बाण कार्य सिद्ध करने में समर्थ होता है । वे बाण दर्शनार्थ कान से प्रकट होते है ॥८॥ ब्रह्मणस्पति पुरोहित रूप है । वे सब पदार्थों को पृथक करते और मिलाते हैं । सब उनका स्तवन करते हैं । वे संग्राम में प्रकट होते हैं । वे जब अन्न-धन धारण करते है । तभी सूर्योदय होता है ॥६॥ बृहस्पति वृष्टि देने वाले है । उनका धन सर्वत्र व्याप्त और श्रेष्ठ है । उन्हीं ने अन्न युक्त सम्पूर्ण धन दिया है । यजमान और स्तोता दोनों ही इस धन का ध्यान-रत रहते हुए भोग करते है ॥१०॥ (२)

यो ऽवरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु रण्वः शवसा ववक्षिथ ।
स देवो देवान्प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः ॥११॥
विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम् ।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नोऽन्नं युजेव वाजिना जिगातम् ।१२।
उताशिष्ठा अनु शृण्वन्ति वह्नयः सभेयो विप्रो भरते मती धना ।
वीळुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः स ह वाजी समिथे ब्रह्मणस्पतिः ।१३।

ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः ।
यो गा उदाजत्स दिवे वि चाभजन्महीव रीतिः शवसासरत्पृथक् ॥१४॥
ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः
वीरेषु वीरौ उप पृङ्धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥१५॥
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीरा ॥१६॥

सब ओर रमे हुए स्तुति योग्य ब्रह्मणस्पति अपने बल से विद्वान और बली दोनों प्रकार के मनुष्यों की रक्षा करते हैं । वे दानशील स्वभाव वाले देवताओं से प्रतिनिधि रूप से प्रसिद्ध हैं और वे सभी जीवों के स्वामी हैं ॥११॥ हे इन्द्र हे ब्रह्मणस्पते ! तुम ऐश्वर्यवान् हो ! सम्पूर्ण धन तुम्हारा है तुम्हारे उद्देश्य को कोई नही रोक नही सकता । रथ में जुते अश्वों के अन्न के प्रति दौड़ने के समान तुम भी हमारी हवियों के प्रति दौड़े हुये आओ ॥१२॥ ब्रह्मणस्पति के अश्व हमारी स्तुति श्रवण करते हैं । विद्वान अध्वर्यु सुन्दर स्तोत्र युक्त हवि देते हैं । ब्रह्मणस्पति हमारे निकट आकर मन्त्र स्वीकार करें ॥१३॥ ब्रह्मणस्पति के किसी कर्म में लगने पर उनका मन्त्र फलदायक होता है । उन्होंने गौओं को निकाला, सूर्यलोक के लिये उनका भाग किया । वे गौऐं महान् स्तोत्र के समान पृथक्-पृथक् अपने बल को गतिवती हुई ॥१४॥ हे ब्रह्मणस्पति देव ! हम श्रेष्ठ नियम वाले अन्न युक्त धन के स्वामी बनें । तुम हमारे योद्धा पुत्र को सन्तान दो तुम सबके स्वामी हमारी स्तुति और अन्न रूप हवि की कामना करते हो ॥१५॥ हे ब्रह्मणस्पते ! तुम विश्व के नियामक हो । हमारे स्तोत्र को जानते हुए हमारी सन्तानों को सुखी बनाओ । देवगण जिसकी रक्षा करते हैं, वह कल्याण वाहक है । पुत्र-पौत्र युक्त हुये हम इस यज्ञ में स्तवन करेंगे ॥१६॥ (३)

२५ सूक्त

ऋषि – गृत्समदः । देवता—ब्रह्मणस्पतिः । छन्द- जगती । }
इन्धानो अग्नि वनवद्वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद्रातहव्य ।

जातेन जातमति स प्र सर्सृते य यं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ।१।
वीरेभिर्वीरान्वनवद्वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद् बोधति त्मना ।
तोकं च तस्य तनयं च वर्धते य य कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ।२।
सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वध्रीँरभि वष्ट्योजसा ।
अग्नेरिव प्रसितिर्नाह वर्तवे य य युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ।३।
तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः स सत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति ।
अनिभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा य य युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ।४।
तस्मा इद्विश्वे धुनयन्त सिन्धवोऽच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि ।
देवानां सुम्ने सुभगः स एधते यय युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ।५।८

अग्नि को प्रज्ज्वलित करने वाला यजमान शत्रु-वध मे समर्थ हो। स्तुति और हवि दान द्वारा समृद्ध हो। जिस यजमान से ब्रह्मणस्पति सख्य भाव रखते है, वह पौत्र से भी अधिक समय तक जीवित रहता है ।।१।। यजमान अपने वीर पुत्रो द्वारा शत्रु के पुत्रो पर विजय प्राप्त करावे। वह गोधन युक्त प्रसिद्ध एवं सर्वज्ञाता है। जिसे ब्रह्मणस्पति सखा मानते है, उनके पुत्र पौत्र भी समृद्ध होते हैं ।।२।। नदी के वेग से कगार टूटते है, साड बैलो को हराता है, उसी प्रकार ब्रह्मणस्पति का सेवन अपने बल से शत्रुओ के बल को तोडता हुआ पराजित करता है। अग्नि की शिखा को जैसे कोई नही रोक सकता, वैसे ही ब्रह्मणस्पति से सख्य-भाव पाये हुये यजमान को कोई नही रोक सकता ।।३।। ब्रह्मणस्पति की सेवा करने वाला यजमान सर्वप्रथम गोधन पाता है। वह अपने बल से शत्रुओ को मारता है। जिसे वे सखा रूप में स्वीकार करते हैं, वह दिव्य रसास्वादन करने में समर्थ होता है ।।४।। जिस यजमान को ब्रह्मणस्पति सखा-भाव से देखते है, उसको और सभी रस प्रवाहित होते हैं। वह विविध सुखो का उपभोग करने वाला श्रेष्ठ भाग्य से युक्त हुआ समृद्धि प्राप्त करता है ।।५।।   (४)

२६ सूक्त

(ऋषि—गृत्समद. । देवता—ब्रह्मणस्पतिः । छन्द—जगती)

ऋजुरिच्छंसो वनवद्वनुष्यतो देवयन्निददेवयन्तमभ्यसत् ।
सुप्रावीरिद्वनवत्पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् ॥१॥
यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥२॥
स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥३॥
यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिरविधत्प्र तं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।
उरुष्यतीमंहसो रक्षती रिषोंऽहोश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः ॥४॥

ब्रह्मणस्पति की स्तुति करने वाला शत्रुओ को नष्ट करे । देवो के उपासक देव-विहीनो को हरावे । ब्रह्मणस्पति को सन्तुष्ट करने वाला युद्ध में भयकर शत्रुओ का सहार करता है । याज्ञिक यज्ञ-द्वेषियो का धन प्राप्त करता है ॥१॥ ब्रह्मणस्पति का स्तवन करो । अहकारी शत्रुओ पर आक्रमण करो । सग्राम मे दृढ होओ । ब्रह्मणस्पति के लिये हवि तैयार करने पर उत्तम धन प्राप्त करोगे । हम उनकी रक्षा चाहते हैं ॥२॥ देवो के पिता ब्रह्मणस्पति की जो यजमान श्रद्धापूर्वक सेवा करता है, वह अपने स्वजन एव सन्तान से युक्त हुआ अन्न और धन पाता है ॥३॥ जो यजमान घृत-युक्त हवि से ब्रह्मणस्पति की सेवा करता है, उसे वे सुगम मार्ग पर चलाते हैं और पाप दारिद्र्य तथा शत्रु से बचाते हैं । वे उसके कार्य सिद्ध करते है ॥४॥ (४)

२७ सूक्त

(ऋषि—कूर्मो, गार्त्समदो, गृत्समदो वा देवता—आदित्याः । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्ति ।)

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो ... ंशः ॥१॥

अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥९॥
त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ता ।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षेऽश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥१०॥

हे अर्यमा ! मित्र वरुण तुम्हारा मार्ग सुगम और निष्कंटक है। हे आदित्यो ! हमको उसी मार्ग पर चलाओ । मधुर वचन कहते हुए दिव्य सुख प्रदान करो ॥६॥ माता अदिति हमको शत्रुओं से पार लगावें । अर्यमा हमको सुगम मार्ग पर ले चले । हम बहुत से वीरों से युक्त हुये अहिंसक रहें तथा मित्र और वरुण हमको सुख दें ॥७॥ आदित्य पृथिवी, अन्तरिक्ष, सर्व, मर्त्य जन तथा सत्य लोकों के धारण हैं । यह तीन सवन युक्त यज्ञ वाले, यज्ञ से ही महिमावान् हुए है, हे अर्यमा ! मित्र और वरुण तुम्हारा कर्म प्रशंसनीय है ॥८॥ स्वर्ण के समान तेजस्वी वर्ण वाले, दीप्तिमान, वृष्टि के कारणभूत, सचेष्ठ, न झुकने वाले नेत्रों से युक्त अहिंसित, स्तुत्य आदित्य जगत् के निमित्त अग्नि, वायु और सूर्य का रूप धारण करते हैं ॥ ॥ वरुण तुम देवता हो या मनुष्य सबके स्वामी हो हमको सौ वर्ष देखने के योग्य करो, जिससे हम पूर्वजों की आयु को भोग सकें ॥१०॥ (३)

न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥११॥
यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश य वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।
स रेवान्याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्त. ॥१२॥
शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीर. ।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥१३॥
अदिते मित्र वरुणोत मृल यद्वो वयं चकृमा कच्चिदागः ।
उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन्तमिस्राः ॥१४॥
उभे अस्मै पीपयतः समीची दिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन् ।
उभा क्षयावाजयन्याति पृत्सुभावर्धौ भवतः सा[illegible] ॥१५॥

या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ता ।
अश्वीव ताँ अति येषं रथेनारिष्टा उरावा शर्मन्स्याम ॥१६॥
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापे ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१७॥८

वास देने वाले आदित्यो। हम दाहिने, बाँये, सामने पीछे सन्देह मे नही पड़ने मैं। कच्ची बुद्धि वाला, अधीर होकर भी भ्रम मे न पड़ूं। मैं तुम्हारे द्वारा सुगम मार्ग पर चलाया जाता हुआ आनन्द रूप तेज प्राप्त करूं ॥११॥ यज्ञ-स्वामी आदित्य गण को हवि देने वाले यजमान को उनकी कृपा से पोषण सामर्थ्य प्राप्त होती है। वह धनयुक्त, प्रसिद्ध एवं प्रशंसित हुआ रथ पर चढ़कर यज्ञ स्थान को प्राप्त होता है ॥१२॥ वह यजमान तेजवान्, अहिंसित, अन्नवान्, पुत्रवान् हुआ श्रेष्ठ जल के निकट वास करता है। आदित्यो के आश्रम मे रहने वाले को कोई शत्रु मार नही सकता ॥१३॥ हे अदिति, मित्र, वरुण ! हम यदि तुम्हारे प्रति कोई अपराध करें, तो भी उसे क्षमा करो हे इन्द्र। हम विस्तृत तेज और अभय प्राप्त करें। हमको अँधेरी रात नष्ट न करें ॥१४॥ आदित्यो का अनुसरण करने वाले को आकाश-पृथिवी पुष्ट करते हैं। वह भाग्यवान् दिव्य रस प्राप्त कर समृद्ध होता है। युद्ध मे शत्रु को हराता हुआ चलता है। संसार के आधे भाग मे (पृथिवी पर) वह कर्म-साधक करने वाला होता है ॥ १५॥ हे पूज्य आदित्यो। विद्रोहियों को तुमने माया-पूर्वक वश मे किया और शत्रुओ के लिये पाश रचा, हम उस माया और पाश को घोड़े पर सवार मनुष्य के समान लांघे और हिंसा-रहित हुये, परम सुख से सुन्दर गृह मे रहे ॥१६॥ हे वरुण। मुझे किसी ऐश्वर्यवान् व्यक्ति के समक्ष अपनी दारिद्र्यगाथा न कहनी पड़े। मुझे आवश्यक धन की कमी कभी न खटके। हम सन्तानयुक्त हुये इस यज्ञ में स्तुति करेंगे ॥१७॥ (८)

२८ सूक्त

(ऋषि-कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा। देवता-वरुणः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)
इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना ।

अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्ति भिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥१॥
तव व्रते सुभगाय स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टवांसः ।
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥२॥
तव स्याम पुरुवीरस्य शर्मन्नुरुशंसस्य वरुण प्रणेतः ।
यूयं नः पुत्रा अदिते रदब्धा अभि क्षमध्वं देवा. ॥३॥
प्र सीमादित्यो असृजद्विधर्ता ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति ।
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते वयो न पप्तू रघुया परिज्मन् ॥४॥
वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धिय मेम मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः ॥५॥

स्वयं प्रकाशित और अपनी महिमा से संसार के जीवों को रखने वाले वरुण के लिये यह हवि रूप अन्न है। वे अत्यन्त तेजस्वी वरुण यजमान को सुख देते हैं। मैं उनका स्तवन करता हूँ ॥१॥ हे वरुण ! हम तुम्हारी स्तुति ध्यान और सेवा करते हुये भाग्यवान् बनें रश्मि वाली उषा के प्रकट होने पर प्रतिदिन तुम्हारी स्तुति करते हुए हम तेजस्वी बनें ॥२॥ हे विश्व के स्वामी वरुण ! तुम वीरों के अधिपति को बहुत से साधक पूजा करते हैं। हम तुम्हारे दिये हुए वास स्थान को प्राप्त करें। अहिंसक तेजस्वी आदित्यो ! हमारे प्रति मित्र भाव रखो और हमारे दोष दूर करो ॥३॥ विश्व को धारण करने वाले अदिति वरुण जल की रचना करते हैं और उन्हीं की महिमा से नदियाँ बहती हैं। ये सदा चलती रहती हैं और पीछे की ओर लौटती नहीं। यह वेग सहित पृथिवी पर आती हैं ॥४॥ हे वरुण ! मैं पाप के बन्धन में रस्सी के समान बंधा हूँ। उससे मुझे मुक्त करो। हम तुम्हारे द्वारा नदियों को जल से पूर्ण करें। हमारा बुनने का तार कभी न टूटे। हमारे यज्ञ की समृद्धि असमय में न रुके ॥५॥ (१)

अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं मत्सम्राळृतावोऽनु मा गृभाय ।
दामेव वत्साद्वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥६॥
मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृ[illegible]सुर भ्रीणन्ति ।

मा ज्योतिष प्रवसथानि गन्म वि षू मृध शिश्रथो जीवसे न ।७।
नम पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम ।
त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दुर्लभ व्रतानि ।८।
पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान्वरुण तासु शाधि ।९।
यो मे राजन्युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह ।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ।१०।
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापे ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीरा ।११।१०

हे वरुण ! मेरा भय मिटाओ। हे सत्य से युक्त स्वामिन् ! हम पर कृपा करो। रस्सी से गोवत्स को छुड़ाने के समान मुझे पाप से छुड़ाओ। तुम्हारी कृपा के बिना कोई समर्थ नहीं हो पाता ॥६॥ हे वरुण ! यज्ञ में अपराध करने वालों को जो शस्त्र दण्डित करते है, वे हमको दण्डित न करें। हम प्रकाश से वंचित न हों। हमारे हिंसक को हमसे दूर करो ॥७॥ हे बहुकर्मा इन्द्र ! हमने भूतकाल मे तुमको नमस्कार की, वर्तमान और भविष्य काल मे भी तुमको प्रणाम करेंगे। तुम हिंसा के योग्य नहीं हो। तुम मे सभी पराक्रमयुक्त कर्म पर्वत के समान निहित है ॥८॥ हे वरुण ! हमारे पूर्वजो ने जो ऋण किया था, उससे उऋण करो। अब मैंने जो ऋण किया है, उससे भी छुड़ाओ। मुझे दूसरे से धन माँगने की आवश्यकता न पड़े। उषाओं को इस प्रकार करो कि वे ऋण ही न होने दें। हम ऋण रहित उषाओं मे जीवित रहे ॥ ९ ॥ हे वरुण ! मैं भयभीत हूँ। मित्रों द्वारा बतायी गयी भयङ्कर स्वप्न की बातों से मेरी रक्षा करो। मैं उनमें न पड़ूँ। मुझे जो दस्यु मारना चाहे उससे भी रक्षा करो ॥ १० ॥ हे वरुण ! किसी उदार धनिक को मुझे अपनी दारिद्र्य गाथा न सुनानी पड़े। आवश्यक धन की कमी मुझे कभी न व्यापे। हम सन्ताप वाले होकर इस यज्ञ में स्तुति करेंगे ॥११॥ (१०)

२६ सूक्त

(ऋषि-कूर्मो गार्त्समदो गृत्समद दो वा। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द

धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत्कर्त रहसूरिवाग।
शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वां अवसे हुवे वः ॥१॥
यूयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत।
अभिक्षत्तारो अभि च क्षमध्वमद्या च नो मृनयतापरं च ॥२॥
किमू नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन।
यूय नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात ॥३॥
हये देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृलत नाधमानाय मह्यम्।
मा वो रथो मध्यमवालृते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ॥४॥
प्र व एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास।
आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥५॥
अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम्।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्त्तादवपदो यजत्राः ॥६॥
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विद शूनमापेः।
मा रायो राजत्सुयमादव स्था बृहद्वदेम विदथे सुवीरा. ॥७॥१॥

हे व्रतयुक्त देवो! तुम शीघ्रगामी और सबके द्वारा प्रार्थना किये जाते हो। गुप्त रहस्य को छिपाने के समान मेरा अपराध दूर फेंको। हे मित्र हे वरुण! मै तुम्हारी कल्याणकारी भावनाओ को जानता हूँ इसलिये रक्षा के निमित्त आह्वान करता हूँ। हमारे स्तोत्र को सुनो ॥ १ ॥ हे देवो! तु अनुग्रह पूर्वक शक्ति प्रदान करो। वैरियो को हमसे हटाओ। हिंसा करने वाले शत्रुओ को ह-ाओ। वर्तमान तथा भविष्य मे भी हमको सुख दो ॥ २ ॥ हे विश्वेदेवताओ! हम तुम्हारा कौन-सा कार्य-साधन कर सकेंगे? मित्र, रुण, अदिति, इन्द्र और मरुतो! हमारा कल्याण करो ॥ ३ ॥ हे वताओ! तुम हमारे मित्र हो। हम पर कृपा करो। हम तुम्हारी स्तुति

करते है । हमारे यज्ञ में आते समय तुम्हारे रथ की चाल धीमी न हो । तुम्हारी मित्रता पाकर हम थकें नहीं ॥ ४ ॥ हे देवताओ ! तुम्हारे आश्रित होकर मैंने अनेकों पापों को मिटा डाला । कुमार्गगामी पुत्र को पिता द्वारा उपदेश देने के समान, तुमने मुझे सीख दी है । हमारे सब पाप और बन्धन हट जावें तुम व्याध द्वारा पक्षी को मारने के समान मुझे न मारना ॥५॥ हे पूज्य विश्वेदेवो ! हमारे समान प्रवक्ता होओ । मैं भयभीत हूँ अतः तुम्हारी शरण प्राप्त करूँ । हमको शत्रु द्वारा हिंसित होने से बचाओ । विपत्ति डालने वाले से हमारी रक्षा करो ॥६॥ हे वरुण ! मुझे किसी उदार, धनिक के सामने अपनी दरिद्रता की बात न कहनी पड़े । मुझे आवश्यक धनकी कमी-कभी न पड़े । हम सन्तानयुक्त हुये इस यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करें ॥७॥ (११)

३० सूक्त

(ऋषि गृत्समद देवता—इन्द्र प्रभृति । छन्द-पंक्ति, त्रिष्टुप्)

ऋत देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आप. ।
अहरहर्यात्यक्तुरपा कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम् ।१।
यो वृत्राय सिनमत्राभरिप्यत्प्र त जनित्री विदुष उवाच ।
पथो रदन्तीरनु जोपमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम ।२।
ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षेऽधा वृत्राय प्र वध जभार ।
मिह वसान उप हीमदुद्रोत्तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ।३।
बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।
यथा जघन्थ धृपता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ।४।
अव क्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः ।
तोकस्य सातौ तनयस्य भूरेरस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ।५।१२

वर्षक, तेजस्वी, प्रेरणाप्रद, वृत्रनाशक इन्द्र के यज्ञ लिये जल नहीं रुकता, उसका स्रोत सदा गतिमान रहता है । उसकी सृष्टि अन्य कार्य के

लिये नहीं हुई थी ।।१।। वृत्र को पुष्ट बनाने वाले की बात अदितिने इ
बताई । यह नदियां नित्य प्रति अपने मार्ग पर चलती हुई इन्द्र की इच्छा
समुद्र में जाती हैं ।।२।। अन्तरिक्ष में उठकर सब पदार्थों को आच्छादित
लेने के कारण वृत्र पर इन्द्र ने वज्र चलाया । वृष्टिप्रद मेघ से ढका हुआ
इन्द्र के समाने आया, तब तीखे शस्त्र वाले इन्द्र ने उसे परास्त किया ।।
हे वृहस्पते ! वज्र के समान चमकने हुये आयुध से वृक द्वारा दस्युओं
मारो । इन्द्र ! जैसे पुरातन समय में तुमने अपने बल से शत्रुओं का
किया था, वैसे ही हमारे शत्रु को मारो ।।४।। हे इन्द्र ! तुम उन्नत हो । तुं
करने वालो के मन्त्र से तुमने जिस पाषाण-वज्र से शत्रुओं को मारा है
उसी वज्र को आकाश से नीचे की ओर चलाओ । जिस समृद्धि को पाकर हम
पुत्र, पौत्र तथा गवादि धन प्राप्त कर सके, वही हमको दो ।।५।। (१४)

प्र हि क्रतुं वृहथो य वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ ।
इन्द्रासोमा युवमस्मां अविष्टमस्मिन्भयस्थे कृणुतमु लोकम् ।६।
अ मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोम ।
यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ।७।
सरस्वति त्वमस्मां अविड्ढिमरुत्वती धृपती जेपि शत्रुन् ।
त्य चिच्छर्धन्तं यविपीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् । ।
यो न. सनुत्य उत वा जिघ नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य ।
वृहस्पत आयुधैर्जेपि शत्रुन्द्रुहे रीषन्तं परि वेहि राजन् ।६।
अस्माकेभिः सत्वभिः शूर शूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि ।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि ।
तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।१०।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ।११।१३

हे इन्द्र ! हे सोम ! तुम जिसे मारना चाहते हो, उसे समूल न
करो । शत्रुओं के विरुद्ध अपने मायको को प्रेरणा दो । तुम मेरी रक्षा करो

वा हम संग्राम में भय को प्राप्त न हों ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! मुझे रमण और ग्लानि बचाकर आनन्द सहित करो । हम सोम के अभिषव का सदा समर्थन करें । तुम मेरा अभीष्ट पूर्ण करने और दक्षिणा धन देने वाले हो । तुम यज्ञ को जानकर अभिषव करने वाले के समक्ष गौओं सहित आते हो ॥७॥ हे सरस्वति ! हमारी रक्षा करो । मरुद्गण सहित जाकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो । इन्द्र ने वीरता का अहङ्कार करने वाले युद्धाभिलाषी 'शण्डामर्क' का वध किया था ॥ ८ ॥ बृहस्पते ! जो छिपकर हमको मारना चाहता है, उसे ढूंढ कर अपने आयुध से छेद डालो । हमारे शत्रुओं पर अपने शस्त्र से विजय प्राप्त करो । विद्रोहियों पर सब ओर से प्राण घातक वज्र का प्रहार करो ॥९॥ हे वीर इन्द्र शत्रुओं का संहार करने वाले हमारे वीर कर्मों का सम्पादन करो । हमारे शत्रुओं ने जिसे हटा लिया, उनको मार कर उनका धन हमको प्रदान करो ॥१०॥ हे मरुद्गण ! सुख प्राप्ति की कामना से नमस्कार युक्त स्तुति द्वारा हम तुम्हारे दिव्य बल का स्तवन करते हैं, जिसके द्वारा हम वीरों वाले होकर प्रशंसा पावें और ऐश्वर्य का भोग करने में समर्थ हों ॥११॥ (१३)

३१ सूक्त

(ऋषि— गृत्समद । देवता—विश्वेदेवा । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति,)

अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
प्र यद्वयो न पप्तन्वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः ॥१॥
अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम् ।
यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः ॥२
उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः ।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये ॥३॥
उत स्य देवो भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद्रथम् ।
इला भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरन्धिरश्विनावधा पती ॥४॥
उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा ।

आशीर्वाद देने पर पुत्र नमस्कार करे उसी प्रकार हे रुद्र ! तुम्हारे आने पर हम तुमको नमस्कार करते हैं। तुम अनेक धनों के देने वाले और सज्जनों के पालक हो। स्तुति किए जाने पर तुम्हारा दान चलता है ॥१२॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारी विशुद्ध औषधि अत्यन्त सुख को देने वाली है। जिस औषधि को हमारे पूर्वज मनु ने प्राप्त की थी रुद्र भय का नाश करने वाली थी। उसी औषधि की हम कामना करते हैं ॥ १३ ॥ रुद्र का आयुध हम पर न गिरे। तेजस्वी रुद्र की भीषण क्रोध बुद्धि हमारे ओर न हो। हे सेचन समर्थ रुद्र ! अपने यजमान के प्रति धनुष की प्रत्यंचा ढीली करो। हमारे पुत्र-पौत्र को सुख प्रदान करो ॥१४॥ हे अभीष्ट-वर्षक सामर्थ्य वाले रुद्र ! तुम पीत-वर्ण वाले हमारे आह्वान को सुनते हो। हम पुत्र-पौत्रादि सहित इस यज्ञ में स्तुति उच्चारण करेंगे ॥ १५ ॥

(१८)

३४ सूक्त

(ऋषि गृत्समद। देवता-मरुत। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ।१।
द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्यभ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः ।
रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ।२।
उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः ।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ।३।
पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ।४।
इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।
आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ।५।१९।

यह मरुद्गण जल धार द्वारा आकाश को आच्छादित करते हैं। उनका बल शत्रु को हराता है। वे पशु के समान विकराल हैं और संसार

करता हूं । धूप से व्याकुल मनुष्य द्वारा छाया का आश्रय ग्रहण करने के समान मैं भी पाप रहित हुआ रुद्र का दिया सुख ग्रहण करूँगा । मैं उनकी सेवा करूँगा ॥६॥ हे रुद्र ! तुम्हारा सुख का दान करने वाला बाहु कहाँ है ? उसके द्वारा औषधि देते हुये सबको सुखी बनाते हो । तुम अभीष्ट वर्षण में समर्थ हो। ...रे पाप को हटाकर मुझे क्षमा दान दो ॥७॥ अभीष्ट वर्षा करने वाले पालक और श्वेत आभायुक्त रुद्र के प्रति हम महत्व वा ? स्तुति करते हैं । हे स्तोता ! तेजवान् रुद्र को नमस्कार द्वारा पूजो । हम उनके गुणों का गान करते हैं ॥८॥ बहुत रूप वाले दृढ़ शरीर वाले विकराल, पीतवर्ण युक्त रुद्र उज्ज्वल तेज से प्रकाशित हैं । वे सब भुवनों के स्वामी और भरण-पोषण करने वाले हैं । वे सदा बल से युक्त रहते हैं । ९॥ हे धनुर्धारी पूजनीय रुद्र ! तुम अनेक रूप से ... हुये रक्षा करते हो । तुम्हारे समान बली अन्य कोई नहीं है ॥१०॥ (१३)

स्तुति श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृला जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥११॥

कुमारश्चित्पितरं वदमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥१२॥

या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयोभु ।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥१३॥

परि णो हेति रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृल ॥१४॥

एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि ।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५॥१८

हे स्तोताओ ! प्रसिद्ध रथ पर आरूढ़ हुये विकराल ... वाले, ... संहारक युवा रुद्र का स्तवन करो । हे रुद्र ! तुम स्तुति करने पर सुख दो ... ॥ ११ ॥

हे मरुद्गण ! [illegible] हमारे छाने हुए सोम के प्रति आओ। घोड़ा के समान [illegible] को नीचे [illegible] दूर करो। यजमान का यज्ञ अनुकूल है ॥६॥ हे मरुद्गण ! तुम हमें अन्न और पुत्र दो। तुम्हारे आने पर यह तुम्हारा यजमान [illegible] करेगा। स्तुति करने वालों को तुम अन्न देते हो। [illegible] की उपासना [illegible] अनुकूल शक्ति प्रदान करो ॥७॥ मरुद्गण के हृदय उदार हैं। उनका दान सब का कल्याण करता है। वे जब अपने रथ में अश्व [illegible] करते हैं तब [illegible] को [illegible] द्वारा दूध देने के समान हविदाता को अभीष्ट अन्न प्रदान करते हैं ॥८॥ हे मरुद्गण ! जो हिंसक हमसे वृक के समान शत्रुता करता है, उससे रक्षा करो। उसे अपने ताप से [illegible]। हे रुद्रो ! जब तुमने 'पृश्नि' के [illegible] भाग को दोहा था, तब स्तोता की निन्दा करने वाले का वध किया था। 'त्रित' के शत्रुओं का भी संहार किया था। उसी समय तुम्हारी सामर्थ्य सब पर विदित हुई ॥१०॥　　　　(२०)

तान्वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।
हिरण्यवर्णान्ककुहान्यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥११॥
ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।
उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा ॥१२॥
ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः ।
निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥१३॥
ताँ इयानो महि वरूथमूतय उप घेदेना नमसा गृणीमसि ।
त्रितो न यान्पञ्च होतॄनभिष्टय आववर्तदवराञ्चक्रियावसे ॥१४॥
यया रध्रं पारयथात्यंहो यया निदो मुञ्चथ वन्दितारम् ।
अर्वाची सा मरुतो या व ऊतिरो षु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु ॥१५॥२१॥

हे उत्तम कर्म वाले मरुद्गण ! तुम यज्ञ में सदा जाते हो। सोम के सिद्ध होने पर तुम बुलाये जाते हो। स्तोतागण स्रुक हाथ में लेकर मरुद्गण

शब्दवान् जल पौत्र अग्नि हमको प्रचुर अन्न और मनोहर रूप दें। वे स्तुतिकी कामना करते हैं, इसलिये मैं उनकी स्तुति करता हूं ॥१॥ हम उनके निमित्त हार्दिक भावसे रची यह स्तुति करेंगे। वे हमारी स्तुति को भले प्रकार जानें। उन्होंने जीवों के हितकारी बल द्वारा समस्त संसार की रचना की है ॥ २ ॥ जलों के साथ जल मिलते हैं। वे सब समुद्र में बडवानल को बढ़ाते हैं। निर्मल और पवित्र जल अपान्नपात नामक देवता को घेरे रहता है ॥ ३ ॥ अहङ्कार रहित युवती, शृङ्गार से सज्जित हुई अपने तेजस्वी पति को प्राप्त होती , वैसे ही ईंधन-रहित घृत से सिंचित अग्नि धनयुक्त अन्न की प्राप्ति के लिये जलों के मध्य तेज से प्रदीप्त होते हैं ॥४॥ इला, सरस्वती, भारती यह त्रिदेवियां त्रास रहित अपान्नपात देव के निमित्त अन्न धारण करती हैं। वे जल में उत्पन्न पदार्थ को बढ़ाती हैं। अपान्नात (सर्व प्रथम प्रकट जल) के सार का हम पान करते हैं ॥५॥ (२२)

अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिष सम्पृच पाहि सूरीन्।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्य नारातयो वि नशन्नानृतानि ।६।
स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति ।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्व न्तर्वसुदेयाय विधते वि भाति ।७।
यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति ।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ।८।
अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः ।९।
हिरण्यरूपः स हिरण्यसन्दृगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः ।
हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ।१०।२३

अपान्नपात द्युत समुद्र में उच्चैःश्रवा अश्व उत्पन्न हुआ । हे विद्वान् तुम द्रोही हिंसकों से स्तोताओं को बचाओ। अदानशील, मिथ्याचारी व्यक्ति इस देवता को प्राप्त नहीं होते ॥ ६ ॥ जो देवता अपने गृह में निवास करते हैं उनका दोहन सरलता से किया जाता है, वे देवता वर्षा के लिये

दिव्य अपाम्नपात नामक अग्नि पृथिवी पर अन्य रूप से रहते है ॥ १३ ॥ अपाम्नपात् का श्रेष्ठ स्थान है । तेजस्वी और प्रदीप्त है । जल-समूह उनके लिये अन्न वहन करते और गतिमान् रहते हुए उनको ढक रहते हैं ॥१४॥ हे अग्ने ! तुम सुन्दर हो । पुत्र प्राप्ति के लिए मैं तुम्हारे समक्ष उपस्थित हुआ हूं । यजमान के हित के लिए सुन्दर स्तोत्र वाला हूं । देवगण का समस्त कल्याण हमको प्राप्त हो । हम पुत्र-पौत्र वाले होकर इस यज्ञ मे तुम्हारी स्तुति करेंगे ॥ १५ ॥ (२४)

३६ सूक्त

(ऋषि— गृत्समद । देवता - इन्द्रो मधुश्च । छन्द—त्रिष्टुप् जगती ।

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपोऽधुक्षन्त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः ।
पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ।१।
यज्ञैः सम्मिश्ला· पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ।२।
अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ।३।
आ वक्षि देवा इह विप्र यक्षि चोशन्होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात्तव भागस्य तृप्णुहि ।४।
एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धन· सह ओज· प्रदिवि बाह्वोर्हित· ।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्पिब ।५।
जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ।६।२५

हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे निमित्त दूध और रस से युक्त है । यज्ञ मे विद्वज्जन इसे पत्थर से कूट कर सिद्ध करते हैं । तुम जगत के स्वामी हो । सब देवों मे प्रथम तुम अग्नि मे स्वाहाकार द्वारा डाले सोम का पान करो ॥१॥ हे मरुतो ! तुम रथारूढ़ रथ से युक्त, अस्त्रो से सुशोभित, रुद्र के पुत्र

अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् ।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥५॥
जोष्यग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम् ।
विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन्देवाँ

उशतः पायया हविः ॥६॥

हे धनदाता अग्ने ! होता द्वारा दिए गए यज्ञ में अन्न ग्रहण कर हृष्ट पुष्ट बनो। हे अध्वर्युओ ! अग्नि पूर्णाहुति की कामना करते हैं, उन्हें सोम भेंट करो। यह धनदाता अग्नि मनोरथ पूर्ण करते हैं। हे अग्ने ! होता के यज्ञ में ऋतुओं सहित सोम को पीओ ।१। हमने पूर्वकाल में जिनका आह्वान किया था, अब भी उन्हीं का आह्वान करते हैं। वे दाता और सबके स्वामी आह्वान करने योग्य हैं। अध्वर्युओं ने उनके लिए मधुर सोम सिद्ध किया है। हे द्रव्यदाता अग्ने ! होता के यज्ञ में ऋतुओं सहित सोम पान करो ।२। हे द्रव्यदाता। अग्ने ! तुम्हारा वाहन अश्व तृप्त हो। हे वनस्पते ? तुम दृढ़ एवं अहिंसक होओ। नेष्टा के यज्ञ से ऋतुओं सहित सोम पान करो ।३। हे धनदाता अग्ने। जिन्होंने होता के यज्ञ में सोम पिया और पोता के यज्ञ में हृष्ट हुए, नेष्टा के यज्ञ में अन्न सेवन किया, वे सुवर्ण देने वाले ऋत्विक् के मृत्यु निवारक सोम रस को पीवें ।४। हे अश्विद्वय ! शीघ्रगामी, इच्छित स्थान पर पहुंचाने वाला जो तुम्हारा वाहन रथ है, उसी को आज इस यज्ञ में जोड़ो। हमारी हवि को स्वादिष्ट बनाओ तुम अन्न वाले हो हमारे सोम रस का पान करो ॥५॥ हे अग्ने तुम समिधा, आहुति, स्तोत्र द्वारा स्तुति प्राप्त करो। तुम हमारी हवियों की कामना वाले सबके आश्रयदाता हो। हमारी हवि की कामना वाले सब देवताओं, ऋभुओं और विश्वेदेवाओं के साथ सोम पान करो ।६। [१]

३८ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः देवता—सविता। छन्द - त्रिष्टुप् पंक्ति।)

उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात् ।

त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्थुः ।
वनानि विभ्यो न किरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ।७।
आद्राघ्य वरुधो योनिमप्यमनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्ताण्डो व्रजमा पशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ।८।
न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिमन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिद स्वस्ति हुवे देव सवितार नमोभिः ।९।
भगं धिय वाजयन्तः पुरन्धि नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्या ।
आये वामस्य सङ्गथेरयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ।१०।
अस्मभ्य तद्दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राध आ गात् ।
श यत्स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ।११।३

सविता के दिव्य व्रत की समाप्ति पर रण में विजय की कामना करने वाला नृप वापिस लौटता है। सभी जङ्गम पदार्थ अपने निवास स्थान की इच्छा करते और कार्यों में लगे व्यक्ति अपने कार्य को अधूरा रहने पर भी घर की ओर चल देते हैं ।।६।। हे सविता देव ! अन्तरिक्ष में तुम्हारे द्वारा स्थित जल भाग को खोज करने वाले पाते हैं। तुमने पक्षियों के निवास के लिए वृक्षों का विभाजन किया। तुम्हारे कार्य को कोई नहीं रोक सकता ।।७।। सूर्यास्त होने पर गतिमान वरुण सभी जङ्गम पदार्थों को सुख देने वाले आवश्यक और सुगम निवास को प्राप्त होते हैं ।८। इन्द्र वरुण,मित्र, अर्यमा, रुद्र तथा शत्रु भी जिसके व्रत को नहीं रोक सकते, उन्हीं प्रकाशवान सूर्य को मंगल के लिये, हम नमस्कार पूर्वक बुलाते हैं ।९। सब मनुष्य जिसकी स्तुति करते हैं, जो देव पत्नियों की रक्षा करते हैं वे सूर्य हमारी रक्षा करें। भजन और ध्यान के योग्य अत्यन्त मेधावी सूर्य को हम प्रसन्न करते हैं धन और पशु को पाकर सुरक्षित रखने की इच्छा से हम सविता देव का सद्भाव चाहते हैं ।।१०।। हे भास्कर ! तुमने हमको जो विश्वास और मनोरथ धन दिया है, वह दिव्य लोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष से हमको मिले। जो धन स्तुति करने वालों के वंशजों के लिए कल्याणकारी है।

नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्नमथाभजद्वीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥१
विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणि सिसर्ति।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद्वातो रमते परिज्मन् ॥२
आशुभिश्चिद्यान्वि मुचाति नूनमरीरमदतमान चिदेतोः।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ।३।
पुनः समव्यद्विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः।
उत्संहायास्थाद्व्यृतूंरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ।४।
नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः।
ज्येष्ठमाता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ।५।२

संसार को वहन करने वाले प्रकाशमान सवितादेव प्रसव के निमित्त नित्यप्रति मुकट होते हैं। यही उनका नित्य नियम है। वे स्तुति करने वालों को रत्नादि धन देते और यजमान को कल्याण का भागी बनाते है। १॥ लम्बी भुजा और प्रकाश से युक्त सवितादेव संसार को आनन्दित करने के लिए हाथ फैलाते हैं। उनके निमित्त अत्यन्त पवित्र जल बहता और वायु अन्तरिक्ष में विचरता है ॥२॥ जब सवितादेव द्रुतगामी किरणों द्वारा छोड़े जाते हैं, तब निरन्तर चलने वाले पथिक भी रुक जाते हैं। शत्रु के विरुद्ध आक्रमण के निमित्त जानने वालो की इच्छा भी उस समय निवृत हो जाती हैं। सविता के कर्म कर लेने पर रात्रि का आविर्भाव होता हैं ॥३॥ वस्त्र बुनने वाली स्त्री के समान रात्रि आलोक को छिपा लेती हैं। बुद्धिमानो के किये हुए कर्म बीच मध्य मार्ग मे रुक जाते हैं। ऋतुओं का विभाजन करने वाले सूर्य जब पुनः उदय होते हैं, तब लोग विस्तरों को त्याग देते हैं ॥४॥ अग्नि गृह में उत्पन्न तेज यजमान के अन्न-कोष्ठो मे व्याप्त होता है। उषा माता सविता द्वारा प्रेरित यज्ञ का उत्तम भाग अग्नि को दे चुकी हैं ॥५॥ (२)

समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत्।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ।६।

४१ सूक्त

(ऋषि—गृत्समद । देवता-इन्द्र वायु, मित्रावरुणौ, प्रभृति छन्द—
गायत्री, अनुष्टुप् उष्णिक बृहती

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि । नियुत्वान्त्सोमपीतये ।१।
नियुत्वान्वायवा गह्यय शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ।२।
शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वत । आ यातं पिबतं नरा ।३।
अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ।४।
राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे अदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आसते ।५।७

हे वायो ! अपने सहस्र रथ द्वारा, निवृत्गण से युक्त होकर सोम-पान के निमित्त पधारो ॥ १ ॥ नियुतगण सहित पधारो । तुमने तेजयुक्त सोम को पान किया है । तुम सोम सिद्ध करने वाले के गृह को प्राप्त हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र और वायो ! तुम नियतगण से युक्त हुए सोम के लिए यहाँ आओ और दुग्ध मिश्रित सोम का पान करो ॥३॥ हे मित्रावरुण ! यह सोम तुम्हारे निमित्त सिद्ध किया गया है । तुम सत्य की वृद्धि करने वाले हो । हमारे आह्वान को सुनो ॥४॥ द्वेष रहित, सबके स्वामी मित्र और वरुण इस सवश्रेष्ठ, स्थिर तथा स्तम्भ वाले स्थान पर विराजमान हो ॥५॥   (७)

ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ।६।
गोमद्र षु नासत्याश्वावद्यातमश्विना । वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ।७।
न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू । दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ।८।
ता न आ वोळहमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम् ।
                                        धिष्ण्या वरिवोविदम् ।९।
इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् ।
                                        स हि स्थिरो विचर्षणि ।१०।८

वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१७॥

इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥१८॥

प्रेतां यज्ञस्य शम्भुवा युवामिदा वृणीमहे । अग्निं च हव्यवाहनम् ॥१९॥

द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ।
यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥२०॥

आ वामुपस्थमद्रुहा देवा सीदन्तु यज्ञियाः ।
इहाद्य सोमपीतये ॥२१॥१०॥

माताओ, नदियों में श्रेष्ठत्व प्राप्त सरस्वती हम धनहीनों को धनी बनावें ॥१६॥ हे सरस्वती ! तुम कांतिमय हो। तुम्हारे आश्रय में अन्न का वास है। यज्ञ में सोम पीकर तृप्ति को प्राप्त करो। हे सरस्वती ! तुम हमको पुत्ररूप सन्तति दो ॥ ७ ॥ अन्न और जल युक्त श्रेष्ठ देवी सरस्वती इस हवि को स्वीकार करें। यह हवि रमणीय है देवगण इसे चाहते हैं। गृत्समदवंशी इस हवि को तुम्हें देते हैं ॥ १८ ॥ हे आकाश पृथिवी ! तुम यज्ञ की सुखस्पादिका हो। इस यज्ञ में पधारो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं तथा हवि वाहक अग्निदेव का भी स्तवन करते हैं ॥ १९ ॥ हे आकाश पृथिवी ! तुम स्वर्ग आदि की साधना सुफल करने वाले हो और देवताओं की ओर गमन करती हो। हमारे इस यज्ञ को देवताओं के पास पहुँचाने वाली होओ ॥ २० । हे आकाश-पृथिवी ! तुम द्वेष और शत्रुता से रहित हो। इस यज्ञ में आने वाले देवगण आज सोम पीने के लिये तुम्हारे पास आकर विराजमान हों ॥२१॥   (१०)

४२ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—कपिञ्जल इवेन्द्रः। छन्द-त्रिष्टुप्।)

कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम् ।

मर्वत सम्राट, घृत रूप अन्न का सेवन करने वाले, दानशील, अदिति-पुत्र मित्र वरुण सपल स्वभाव वाले यजमान का कार्य करते हैं ॥ ६ ॥ असत्य-रहित दोनों अश्विनीकुमारों रुद्रद्वय, यज्ञ में अग्रणि जो सोम-रस पावेंगे उस सोम को गौ और अश्व युक्त रथ पर यहाँ लाओ ॥ ७ ॥ धन की वर्षा करने वाले दोनों अश्विनीकुमार दूर या समीप के उस धन को जिसे मनुष्यों का शत्रु छीन नहीं सकता, हमको प्रदान करें ।८। हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारे निमित्त विभिन्न प्रकार का, पालन करने वाला उत्तम धन लेकर पधारो ॥९॥ वे इन्द्र अत्यन्त मेधावी हैं । वे हमको समर के अपमान जनक और पराजयकारी भय से छुड़ाते हैं ॥१०॥ (८)

इन्द्रश्च मृलयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ।११।
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून्विचर्षणिः ।१२।
विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत ।१३।
तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः एतं पिबत काम्यम् ।१४।
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः ।
विश्वे मम श्रुता हवम् ।१५।८।

इन्द्र हमको सुख देने की इच्छा करे तो पाप हमारे पास नहीं आवेगा हमको कल्याण प्राप्त होगा । ११॥ इन्द्र बुद्धिमान शत्रुओं को जीतने की सामर्थ्य रखते हैं । वे ही हमको निर्भय बनावें ॥ १२ ॥ हे विश्वे देवाओ ! यहाँ पधारो हमारे आह्वान को सुनते हुए इस कुश पर विराजमान होओ ॥ १३ ॥ विश्वे-देवताओ ! जृत्समद वंशवालों के पास अत्यन्त हर्षप्रदायक रसयुक्त पुष्टि वर्द्धक सोम तुम्हारे निमित्त हैं । इस बलयुक्त सुन्दर सोमरस का पान करो ।१४। जिन मरुद्गण में इन्द्र श्रेष्ठ हैं, जिनको पूषा दान देने वाले हैं वे मरुद्गण हमारे आह्वान को श्रवण करें ॥१५॥ (९)

अम्बितमे नदीतमे सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ।१६।

समय-समय अन्न की खोज करने वाले पक्षीगण स्तुति करने वालो की तरह परिक्रमा करते हुए सुन्दर शब्द उच्चारण करें । सोम गायकों द्वारा गायत्री छन्द और त्रिष्टुप छन्द उच्चारण करने के समान, कपिञ्जल भी दोनो प्रकार की वाणी उच्चारण करता हुआ सुनने वालो को मोहित कर लेता है ।१। हे शकुनि! साम के उद्गाता जैसे सोम-गान करते हैं, वैसे ही तुम भी सुन्दर गान करो । यज्ञ मे ऋत्विगण जैसे शब्द करते है, तुम भी वैसा ही करो । तुम सब ओर हमारे लिए पुण्य बढाने वाला कल्याण सूचक शब्द सुनाओ ।२। हे शकुनि ! तुम्हारा शब्द सुनकर हम अपने कल्याण की सूचना प्राप्त करते हैं । जब तुम मौन धारण कर बैठते हो तब हमसे प्रसन्न नहीं रहते जान पड़ते । जब तुम उड़ते हो तब ककरि के समान मधुर शब्द करते हो । हम पुत्र और पौत्रवान हुए इस यज्ञ मे रची हुई स्तुतियों का गान करेंगे ।।३।। (१२)

।। द्वितीय मडल समाप्तम् ।।

—०

।। अथ तृतीय मडण्लम् ।।

१ सूक्त [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—गाथिनो विश्वामित्र । देवता—अग्नि. । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति.)

सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै ।
देवाँ अच्छा दीद्यद्युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ।।१।
प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन् ।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित्तवसे गातुमीषुः ।२।
मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः ।
अविन्दन्नु दर्शतमप्स्वन्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसॄणाम् ।३।
अवर्धयन्त्सुभगं सप्त यह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा ।
शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन्वपुष्यन् ।४।

सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥१॥
मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान्वीरो अस्ता।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत्सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥२॥
अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥१

बारम्बार शब्द करने वाला, भविष्य का निर्देश करने वाला कपिंजल जैसे नाव को चलाता है, वैसे ही वाणी को प्रेरणा देता है। हे शकुनि ! तुम मंगलप्रद होओ। किसी प्रकार की भी पराजय, कहीं से भी आकर तुमको प्राप्त न हो ॥१॥ शकुनि ! बाज पक्षी तुम्हारी हिंसा न करे। गरुण भी तुमको न मारे। वह वीर, बली हाथ में धनुष बाण लेकर भी तुम्हें प्राप्त न कर सके तुम दक्षिण दिशा में बारम्बार शब्द करते हुए सूचक हुए हमारे निमित्त प्रिय वचन बोलो ॥२॥ हे शकुनि ! तुम घर की दक्षिण दिशा में मधुर वाणी से कल्याण की सूचना देने वाले शब्द उच्चारण करो दुष्ट वंचक अथवा असुर हमारे स्वामी एवं घातक न बन बैठें। पुत्र पौत्र युक्त होकर हम इस यज्ञ में स्तोत्र उच्चारण करेंगे ॥३॥ (११)

४३ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—कपिञ्जल इवेन्द्रः। छन्द जगती, अष्टि)

प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः।
उभे वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥१॥
उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥२॥
आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः।
यदुत्पतन्वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥२

वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये नि पाहि ।१०।१४।

अग्नि जल के सब ओर गमन करते है । वह जल अग्नि को नही बुझाता और अग्नि द्वारा नही सूखता । अन्तरिक्ष के पुत्र रूप अग्नि वस्त्र द्वारा ढके नही जाते । परन्तु जल के ढक होने के कारण नग्न भी नही है । सनातन नित्य और तरुण सप्त नदियाँ अग्नि को गर्भ रूप से धारण करती हैं ॥ ६ ॥ जल-वर्षा के पश्चात जल के गर्भ रूप अग्नि की विभिन्न रूप वाली किरणे व्याप्त होती है । इस विद्युत रूप अग्नि मे जल रूप गौएँ सबके निमित्त वर्षा रूप दुग्ध देती हैं । *इस सुन्दर अग्नि के माता पिता पृथिवी और आकाश हैं ॥ ७॥* । हे बल के पुत्र अग्ने ! सबके द्वारा धारण करने पर तुम उज्ज्वल और वेगयुक्त रश्मियों द्वारा प्रकाशित होओ । जब अग्नि यजमान के स्तोत्र से वृद्धि को प्राप्त होते हैं, तब श्रेष्ठ जल की वर्षा होती है ।८। प्रकट होते ही अग्नि ने अन्तरिक्ष के निचले स्तन, जल प्रदेश को जान लिया और वृष्टि के निमित्त वज्र को गिराया । यह अग्नि उत्तम कर्म वाले वायु आदि बाधवो के साथ चलते और अन्तरिक्ष के सन्तानभूत जलो के साथ रहते हैं । तब अग्नि को कोई नही जान सकता ॥९॥ *अग्नि पिता-माता की गोद को अकेले ही भर देते हैं ।* वही बढे हुए अग्नि ओषधियो को खाते है । समान रूप से पति-पत्नी के समान आकाश-पृथिवी अग्नि के पालनकर्त्ता हैं । हे अग्ने ! तुम आकाश और पृथिवी की रक्षा करो ॥१०।

उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धापो अग्निं यशस स हि पूर्वी. ।
ऋतस्य योनावशयद्दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसृणाम् ।११।
अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीक. ।
उदुस्रिया जनिता यो जजानापा गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ।१२।
अपां गर्भं दर्शतमोषधीना वना जजान सुभगा विरूपम् ।
देवाश्चिन्मनसा स हि जग्मु पनिष्ठं जात तवसं दुवस्यन् ।१३।
बृहन्त इद्भानवो भाऋजीकमग्नि सचन्त विद्युतो न शुक्राः ।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्तरपार ऊर्वे अमृत दुहानाः ।१४।

शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥५॥ ३॥

हे अग्ने ! यज्ञ के लिये तुमने मुझे सोम को प्रस्तुत करने को कहा, इसलिए मुझे शक्ति दो । तेजस्वी होता हुआ देवों के प्रति सोम कूटने के लिये पत्थर हाथ मे लेता और स्तुति करता हूं । तुम मेरे देह की रक्षा करो ॥१॥ हे अग्ने ! हमने उत्तम रूप से यज्ञ किया है, हमारी स्तुति बढ़े । समिधा और हवि से हम अग्नि की सेवा करें । आकाशवासी देवो ने स्तुति करने वालों का स्तोत्र बताया । स्तोता, स्तुति के योग्य अग्नि की स्तुति करना चाहते हैं ॥२॥ जो बुद्धिमान अ[illegible]त वती और जन्मजात श्रेष्ठ मित्र है, जो आकाश मे सुख को स्थापित करते है, उन दर्शनीय अग्निदेव को देवताओ न नदियों के जल मे से यज्ञ के लिए प्राप्त किया ॥ ३ ॥ सुशोभित धन से युक्त, उ[illegible] महिमावान प्रदीप्त अग्नि को प्रकट होते ही सप्त नदियो ने बढ़ाया । जैसे घोड़ी नवजात बालक को प्राप्त होती है वैसे ही नदियां सद्य उत्पन्न अग्नि के समीप पहुंची । अग्नि के उत्पन्न होते ही देवताओ ने उन्हें प्रकाश युक्त किया ॥ ४ ॥ उज्ज्वल वर्ण के तेज से अन्तरिक्ष को प्राप्त कर अग्नि स्तोता को तज से पवित्र करते तथा उसे अन्न धनादि दते है ॥५॥ (११)

[illegible]व्राजा सीमनदतीरदब्धा दिवो यह्वीरवसाना अनग्ना ।
[illegible]ना अत्र युवतयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्त वाणीः ॥६॥
[illegible]तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।
[illegible]स्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना मही दस्मस्य मातरा समीची ॥७॥
[illegible]भ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद्दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।
[illegible]श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥८॥
[illegible]पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद्वि धेनाः ।
[illegible]गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ॥९॥
[illegible]पितुश्च गर्भं जनितुश्च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत्पीप्यानाः ।

एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्व्याय नूतनानि वोचम् ।
महन्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदा ॥२०॥
जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥२१॥
इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो रराणः ।
प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नोऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥२२॥
इलामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥२३॥१६॥

हे नीतिवन्त अग्ने ! हम तुम्हारी शरण माँगते है । हम सब धनो को प्राप्त करने वाला कर्म करते हुए हवि देते हैं । हम तुमको पुष्टिदायक हवि देकर देव विरोधी शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर सकें ।१६। हे अग्ने ! तुम देवताओ से प्रशंसित इनके दूत हो । तुम सब स्तोत्रो को जानते हो । तुम मनुष्यो के बरसाने वाले रथी हो । तुम देवताओ का कार्य साधन करने के लिए उनका अनुसरण करते हो ।१७। राजा के सामने अग्नि यज्ञ-साधन करते हुए साधक के घर मे विराजमान होते हैं । वे सब स्तोत्रो के ज्ञाता हैं । अग्नि का शरीर घृत से प्रदीप्त होता है । वे अग्नि सूर्य के समान प्रकाशित होते है ।१८। गमन करने के इच्छुक अग्नि कल्याणमयी मैत्री और महती रक्षा से युक्त हुए हमारे पास पधारो और हमको अधिक सत्य मे, सुखदायक सुशोभित प्रशंसा योग्य धन प्रदान करो ।१६। हे अग्ने ! तुम पुरातन हो । तुम्हारे प्रति हम प्राचीन और नवीन स्तोत्रो से स्तुति करते है । सब प्राणियो मे व्याप्त अग्नि मनुष्यो मे वास करते हैं । उन अभीष्टवर्षी अग्नि के प्रति ही हमने यह स्तुति की है ।२०। सब मनुष्यो मे रमे हुए, सब प्राणियो मे व्याप्त अग्नि को विश्वामित्र ने चैतन्य किया । हम उनकी कृपा से यज्ञ योग्य अग्नि के प्रति उत्तम भाव रखें ।२१। हे अग्ने ! तुम बलवान् और उत्तम कर्म वाले हो । तुम हमारे यज्ञ को देवो के निकट पहुँचाओ हे देवताओं का आह्वान करने वाले अग्निदेव ! हमको अन्न और धन प्रदान करो ।२२। हे अग्नि ! स्तुति करने वाले को अनेक कर्मो की साधक तथा गौ देने वाली

इले कि च त्वा यजमानो हविर्भिरीले सखिन्व सुमति निकामः
देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ।।१५।।

यह महान अग्नि विस्तार वाले अन्तरिक्ष मे बढ़ते है वहा बहुत
वाला जल उनको भले प्रकार बढाता है । जल के गर्भ स्थान अन्तरिक्ष में
करने वाले अग्नि अपनी वहन रूप नदियो के जल मे शान्ति पूर्वक रहते है ।।
जो अग्नि संसार के पिता, जल से उत्पन्न मनुष्यो की रक्षा करने वाले शत्रुओं
पर आक्रमण करने वाले, युद्ध मे अपनी सेना की रक्षा करने वाले, सबके दे
योग्य तथा अपने तेज से प्रकाशित है, उन्होने यजमान के लिए पोषण सामर्थ्य
दी ।।१२।। सुन्दर अरणि ने जल और औषधियो के गर्भभूत तेजस्वी अग्नि को
उत्पन्न किया । सब देवता स्तुति के योग्य, बढ़े हुए तुरन्त उत्पन्न अग्नि के
समीप स्तुतियुक्त हुए पहुंचे अग्नि की उन्होने सेवा की ।।१३।। विद्युत के
अत्यन्त कांतियुक्त सूर्य अत्यन्त गम्भीर समुद्र मे अमृत मथन कर गुहा के
अपने घर अन्तरिक्ष मे बढ़ते हुए प्रकाशमान अग्नि का आश्रय प्राप्त करते
।।१४।। मैं यजमान हवियो सहित तुम्हारी स्तुति करता हूं । अग्ने ! देवता
सहित मुझ स्तुति करने वाले के पशु आदि की तथा मेरी, दमन करने योग्य सेना
से रक्षा करो ।।१५।।

(१५)

उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधाना ।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभिष्याम पृतनायूंरदेवान् ।।१६।
आ देवा नामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।
प्रति मर्ता अवासयो दमूना अनु देव.न्रथिरो यासि साधन् ।।१७।
नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।।१८।
आ नो गहि सख्येभि शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ।
अस्मे रयिं बहुलं सन्तरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ।।१९।

कामना करने वाले ऋत्विगण कुश को बिछाते और स्रुक को उठाकर अन्न देने वाले, तेजस्वी, हितकारी, दुखनाशक तथा यज्ञ-साधक अग्नि का स्तवन करते हैं ।५।   (१७)

पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नर· ।
अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते प्रविणं धेहि तेभ्य· ।।६
आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।
सो अध्वराय परिणीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ।।७
नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत्पुरोहितः ।।८
तिस्रो यह्वस्य समिध· परिज्मनोऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः ।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमुद्वे उप जामिमीयतु· ।।९
विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिष· सं सीमकृण्वन्त्स्वधितिं न तेजसे ।
स उद्वतो निवतो याति वेविषत्स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् ।।१०।।१८

पवित्र तेज वाले देव-आह्वाक अग्निदेव ! तुम्हारी सेवा करने के इच्छुक यजमान यज्ञ में कुश बिछाकर तुम्हारे यज्ञ स्थल को सजाते हैं। उनके लिये धन प्रदान करो ।६। अग्नि ने आकाश और पृथिवी को पूर्ण किया। यजमानो ने उनको तुरन्त प्रकट अग्नि को धारण किया सर्व व्यापक अन्न देने वाले अग्नि देव घोड़े के समान अन्न प्राप्त करने को प्रदीप्त किये जाते हैं।७। यज्ञ के स्वामी दर्शनीय अग्नि देवताओं को प्राप्त हुये। वे हवि देने वाले, सुन्दर यज्ञ से युक्त यथा जयमान का हित करने वाले हैं। उन अग्नि की नमस्कार पूर्वक सेवा करो ।८। अमरत्व प्राप्त देवताओं ने अग्नि की इच्छा से विश्वव्यापी अग्नि को पार्थिव, विद्युत और सूर्य रूप दिये। उन्होंने उन तीनों में से संसार के पालन कर्त्ता पार्थिव अग्नि को पृथिवी पर तथा शेष दोनों को आकाश में स्थापित किया ।९। धन की कामना करने वाले मनुष्यों ने अपने स्वामी अग्निदेव को तलवार के समान तीक्ष्ण करने के लिये सस्कारित

भूमि दो । हमारे वन की वृद्धि करने वाला और सन्तान को जन्म देने वाला पुत्र दो । हे अग्ने ! हम पर कृपा करो ॥२३॥

२ सूक्त

(ऋषि— विश्वामित्रः । देवता—अग्निर्वैश्वानरः । छन्द जगती)

वैश्वानराय विपणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि ।
द्विता होतार मनुपश्च वाधतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति ॥१
स रोचयज्जनुपा रोदसी उभे स मात्रोरभवत्पुत्र ईड्यः ।
हव्यवालग्निरजरश्चनोहितो दूलभो विशामतिथिविभावसुः ॥२
क्रत्वा दक्षस्य तरुपो विधमणि देवासो अग्नि जनयन्त चित्तिभिः ।
रुरुचान भानुना ज्योतिपा महामत्य न वाज सनिष्यन्नुप ब्रुवे ॥३
आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम् ।
राति भृगूणामुशिज कविक्रतुमग्नि राजन्त दिव्येन शोचिपा ॥४
अग्नि सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तवर्हिपः ।
यतस्रुचः सुरुच विश्वदेव्यं रुद्र यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ॥५॥१७

यज्ञ के बढाने वाले वैश्वानर देव के प्रति हम शुद्ध घृत के समान सुख देने वाली स्तुति करेंगे । जैसे कठोर से रथ को ठीक किया जाता है, वैसे ही यजमान और ऋत्विक् देवताओं का आह्वान करने वाले गार्हपत्य और आहवनीय रूपों वाले अग्नि को संस्कारित करते हैं ॥१॥ वे अग्नि प्रकट होते ही आकाश पृथिवी को प्रकाशमान करते हैं । वे माता-पिता के प्रेम पात्र पुत्र हैं । हवि वहन करने वाले, अजर, अहिंसित, अन्न देने वाले, कान्तियुक्त अग्नि मनुष्यों में अतिथि के समान पूजनीय हैं ॥२॥ मेधावी जन विपत्ति से बचाने वाले बल से अग्नि को यज्ञ में प्रकट करते हैं । जैसे बोझा ढोने वाले अश्व की प्रशंसा होती है, वैसे ही मैं अन्न की कामना से कान्तियुक्त अग्नि का स्तवन करता हूँ ॥३॥ स्तुति के योग्य वैश्वानर के उत्तम प्रशंसनीय अन्न की अभिलाषा से भृगुओं की इच्छा पूर्ण करने वाले, इच्छा करने योग्य, मेधावी, दिव्य तेज से सुशोभित अग्नि की सेवा करता हूँ ॥४॥ कुश की

३ सूक्त

ऋषि विश्वामित्र । देवता— वैश्वानरोऽग्नि । छन्द—जगती पंक्ति)

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥१॥
अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥२॥
केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।
अपांसि यस्मिन्नधि संदधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चके ॥३॥
पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः ॥४॥
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः ॥५॥२०

सन्मार्ग प्राप्ति के निमित्त बुद्धिमान स्तोता अत्यन्त यशी वैश्वानर के प्रति यज्ञ मे सुन्दर स्तुति करते है । अविनाशी अग्निदेव हवि वहन करते हुये देवताओं की सेवा करते है । इस पुरातन यज्ञ को कोई अपवित्र नही कर सकता ।१। प्रकाशमान होता अग्नि देवताओं के दूत हुये आकाश पृथिवी के मध्य गमन करते है । देवताओं द्वारा प्रेरित बुद्धिमान् अग्नि स्तोता के समक्ष स्थापित हुये यज्ञशाला को सुशोभित करते है ।२। यज्ञों को बताने वाले, यज्ञ-कार्य के साधन करने वाले अग्नि को विद्वज्जन अपने कर्म द्वारा पूजते है । स्तोतागण अपने कर्मों को जिन अग्नि को भेंट करते है, उन्ही अग्नि मे यजमान की कामनायें आश्रय प्राप्त करती हैं ।३। यज्ञ पिता, स्तुति करने वालो को बल देने वाले, ज्ञान के कारण तथा कर्मों के साधक अग्नि अपने पार्थिव और विद्युतादि रूप से लोको मे व्याप्त होते हुये, यजमान द्वारा पूजित होते है ।४। सबको आनन्द देने वाले, सुवर्णमय रथ वाले, पीतवर्ण वाले, जल मे वास करने वाले, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, द्रुतगामी, बली, पोषक, प्रदीप्त, वैश्वानर अग्नि को ऋषियों ने स्थापित किया ।५। (२०)

किया वे ऊँचे नीचे स्थलो को व्याप्त कर चलते और सब लोको मे सब औ
को धारण करते हैं ।१०।

(१८)

स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान्वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः ।
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे ।११।
वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद्दिवस्पृष्ठं मन्दमानः सुमन्मभिः ।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ।१२।
ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य मा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम् ।
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे । ३।
शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो अग्निं रोचनस्थामुषर्बुधम् ।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् । ४।
मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ।१५।१६

सद्यःजात वैश्वानर अग्नि अभीष्टवर्षक है । वे सिंह के समान गर्जते हुये बढाते है । वे अविनाशी अत्यन्त तेज वाले हैं । यजमान को उपभोग्य वस्तु प्रदान करते है ।११। स्तोताओ से स्तुत्य अन्तरिक्ष की पीठ सूर्य लोक पर चढ़ते हैं । प्राचीन ऋषियो के समान चैतन्य होकर यजमान को धन देते हुऐ सूर्य रूप से घूमते हैं ।१२। महाबली, मेधावी, स्तुत्य, आकाशवाणी विन अग्नि को वायु ने आकाश से लाकर पृथिवी पर प्रतिष्ठित किया, उन्ही विभिन्न गति वाले,पीत वर्ण तेजस्वी अग्नि से हम नवीन धन की याचना करते हैं ।१३। यज्ञ में प्रेरित करने वाले ज्ञान के कारणभूत, प्रदीप्त, ध्वज रूप सूर्य रूप से अवस्थित, उषाकाल मे चैतन्य होने वाले अग्नि को स्तोत्र द्वारा पूजा करता हूँ ।१४। स्तुति के योग्य, देवताओ का आह्वान करने वाले पवित्र, मोदे, मंत्र, सर्वदाता, दर्शनीय, विभिन्न वर्ण वाले, मनुष्यो के लिये कल्याणकारी अग्निदेव से मैं धन माँगता हूँ ।१५।

(११)

जाते हो ।१०। वैश्वानर अग्नि की दुःख नाशिनी क्रिया द्वारा महान् धन प्राप्त होता है। वे यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों की कामना से यजमान को धन दिया करते हैं। वे पौरुषयुक्त अग्नि आकाश पृथिवी रूप पिता-माता का स्तवन करते हुये प्रकट होते हैं ॥२१॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　(२१)

४ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्र । देवता—आप्रिय । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

समित्समित्सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः ।
आ देव देवान्यजथाय वक्षि सखा सखीन्त्सुमना यक्ष्यग्ने ॥१
यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद्घृतयोनिं विधन्तम् ॥२
प्रदीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै ।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान्यक्षदिषितो यजीयान् ॥३
ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्यूर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि ।
दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः ॥४
सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।
नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभी मं यज्ञं वि चरन्त पूर्वीः ।५।२२।

हे अग्ने तुम समृद्धि को प्राप्त होओ अनुकूल मन से चैतन्यता प्राप्त करो। तुम द्रुतगति वाले हो। अपने तेज से हम पर धन-युक्त दृष्टि करो। देवताओं को इस यज्ञ में लाओ, क्योंकि तुम देवताओं के मित्र हो। उत्तम मन से अपने मित्र देवताओं का यजन करो।१। वरुण, मित्र और अग्नि जिनका प्रतिदिन तीनों समय यज्ञ करते है वे तनूनपात अग्नि हमारे जल की कामना वाले यज्ञ का फल वर्षा के रूप में दें।२। देवों का आह्वान करने वाले अग्नि को सब की प्रिय स्तुति प्राप्त हो। सुख उत्पन्न करने के लिये इन्हा अभीष्ट पूरक पूज्य अग्नि के पास पहुंचे। यज्ञ-कुशल अग्निदेव हमारे निमित्त यजन करें।३। यज्ञ में अग्नि के लिये एक उन्नत मार्ग निश्चित है। उज्ज्वल हवि ऊपर उठती है। प्रकाशमान यज्ञशाला के नाभि

वैसा ही पुष्ट वीर्य हमको प्रदान करो ।६। हे वनस्पते ! तुम देवों को यहाँ ले आओ । प्राणों का संस्कारित करने वाले अग्निदेव देवाह्वान यज्ञ करें क्योंकि वही देवताओं के ज्ञाता है ।१०। हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान हुये इन्द्रादि देवताओं के सहित एक रथ पर चढ़कर शीघ्रता से यहाँ आओ । पुत्रों सहित अदिति हमारे कुश के आसन पर विराजमान हों । अग्नि रूप से स्वाहाकार युक्त हुए देवगण तृप्त हों ।११ ॥ (२३)

५ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्र । देवता—अग्नि । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

प्रत्यग्निरुषसः चितानोऽबोधि विप्रः पदवी कवीनाम् ।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धोऽप द्वारा तमसो वह्निराव ।१।
प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतृणां नमस्य उक्थैः ।
पूर्वीऋ्र्तस्य सन्दृशश्चकानः स दूतो अद्यौदुषसो विरोके ।२।
अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्ष्व पां गर्भो मित्र ऋतेन साधन् ।
आ हर्यतो यजतः सान्वस्यादभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ।३।
मित्रो अग्निर्भवति यत्समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।
मित्रो अध्वर्युरिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ।४।
पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ।५।२४

अग्नि उषा के ज्ञाता हैं वे विद्वानों का अनुसरण करने के लिये चैतन्य होते है । वे अत्यन्त तेजस्वी हैं । देवताओं की कामना करने वाले व्यक्ति उन्हें प्रज्वलित करते हैं तब वे ज्ञान का द्वार खोलते हैं ।१। पूजनीय अग्नि स्तुति करने वालों के स्तोत्र, वाणी और मन्त्र से बढ़ते है । वे अग्नि देवताओं के दूत रूप से प्रदीप्त होने के अभिलाषी हुये उषा काल मे प्रज्ज्वलित होते हैं ।२। यजमानों के सखा रूप अग्नि यज्ञ अभीष्ट फल देने के निमित्त मनुष्यों में विराजमान होते है । वे स्पृहणीय अग्नि यज्ञ योग्य है, वे मेधावी स्तुति करने वालों की स्तुति के पात्र है ।३। जब अग्नि प्रवृद्ध होते

समान सुशोभित औषधियाँ जल द्वारा वृद्धि को प्राप्त होती और फलयुक्त होती हैं। पृथिवी से आकाश तक उठते हुये अग्नि हमारे रक्षक हो।८। हमारे द्वारा प्रदीप्त और स्तुत्य अग्नि सब के मित्र. स्तुत्य और अरणियो द्वारा प्रदीप्त होते हैं। वे देवताओ के दूत होकर हमारे यज्ञ मे उन्हे बुलावें।६। जब मातरिश्वा ने भृगुओ के निमित्त गुफा मे विराजमान हविवाहक अग्नि को चैतन्य किया तब तेजस्वी, श्रेष्ठ अग्नि ने अपने तेज से सूर्य लोक को भी स्तब्ध कर दिया।१०। हे अग्ने ! तुम अपने स्तोता को अनेक कर्मों के फल रूप गवादि धन युक्त भूमि सदा देते रहो। हमारे वश की वृद्धि करने वाला सन्तानोत्पादन मे समर्थ पुत्र हो। यह सब तुम्हारी कृपा से ही होगा।११। (२५)

६ —सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्र । देवता—अग्नि । छन्द त्रिष्टुप् पंक्ति)

प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीची नयत देवयन्त ।
दक्षिणावाड्वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥१
आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्ररिक्था अग नु प्रयज्यो ।
दिविश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यता ते वह्नय. सप्तजिह्वा ॥२
द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतार सादयन्ते दमाय ।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीलते शुक्रमर्चि. ॥३
महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तोऽन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥४
व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ।५२६।

हे यज्ञ करने वालो ! तुम सोम की कामना करते हो। मन्त्र से प्रेरणा पाकर देवोपासना मे साधन रूप स्रुक् को यहाँ लाओ। जिसे आहवनीय अग्नि दक्षिण दिशा मे ले जाते हैं, जिसका अग्रभाग पूर्व मे रहता है,

है। तब वे सखा भाव युक्त होते हैं, व मित्र होता और सबको जानने वाले वरुण हैं। वे मित्र भाव वाले ज्ञानमय स्वभाव युक्त अध्वर्यु और प्रेरणा देने वाले वायु रूप हैं। वे नदियों और पर्वतों से भी सख्य भाव रखते हैं॥ सर्वव्यापक अग्नि पृथिवी के प्रिय स्थान के रक्षक है। वे सूर्य के घूमने के स्थान की रक्षा करते हैं, अन्तरिक्ष में मरुद्गण का पालन करते और देवताओं को प्रसन्न करने वाले यज्ञ को पुष्ट करते हैं।५। (२४)

ऋभुश्चक्र ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान्।
ससस्य चर्म घृतवत्पदं वेस्तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥६
आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात्पृथुप्रगाणमुशन्तमुशान।
दीद्यानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनः पुनर्मातरा नव्यसी कः ॥७
सद्यो जात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन।
आप इव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ॥८
उदुष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद्वर्ष्मन्दिवो अधि नाभा पृथिव्याः।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्षद्यजथाय देवान् ॥९
उदस्तम्भी समिधा नाकमृष्वो ग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम्।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे ॥१०
इलामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११॥२५

सब ज्ञाता महान् अग्नि प्रशंसा योग्य रमणीय जल को उत्पन्न करने वाले हैं। अग्नि के सुप्त रहने पर भी उनका रूप चमकता रहता है। वे अग्नि सावधानी से अपने रूप की रक्षा करते हैं।६। स्तुति किये हुये, प्रकाश युक्त अपने स्थान से प्रेम करने वाले अग्निदेव विराजमान हुये। वे प्रकाशमान, तेजस्वी, पवित्र अग्नि आकाश पृथिवी रूप अपने पिता-माता को अभिनवता प्रदान करते हैं।७। अग्नि अपने जन्म से ओषधियों द्वारा धारण किये जाते हैं। उस समय मार्ग में बहते हुये जल

अश्वों के यज्ञ के सामने जोड़ो । फिर सब देवताओं को बुलाओ । तुम सब को यज्ञ-मय बनाओ ।६। हे अग्ने तुम जंगल में जल को सुखाते हो तब तुम्हारे प्रकाश सूर्य से भी अधिक प्रतीत होता है । तुम सुन्दर कांतिमती उषा के पीछे प्रकाशित होते हो । स्तोतागण, स्तुति के पात्र होता रूप अग्नि का स्तवन करते हैं ।७। जो देवगण विस्तृत अन्तरिक्ष में सुखी हैं, जो देवता प्रकाशमान आकाश में वास करते हैं, जो 'उम' संज्ञक पितरगण आह्वान पर आते हैं, वे सब रथ-युक्त अग्नि के अश्व रूप हैं ।८। हे अग्ने ! उन सभी देवताओं के सहित रथारूढ़ हुये हमारे पास आओ । तुम्हारे अश्व तुम्हें यहाँ लाते लाकर सोम द्वारा बलिष्ठ बनाओ ॥९॥ विशाल आकाश और पृथिवी सभी यज्ञों में जिन अग्निदेव की समृद्धि के निमित्त स्तुति करती है, वे देवताओं के होता, जल सम्पन्न, सुन्दर रूप वाली सत्य, रूपिणी आकाश-- हे अग्ने ? तुम स्तुति करने वाले को विविध कर्मों की कारणभूत गौ युक्त भूमि सदा प्रदान करो । हमको वंश की वृद्धि करने वाला सन्तानोत्पादन में समर्थ पुत्र दो । यही तुम्हारा अनुग्रह होना चाहिये ॥११॥ (२७)

॥ इति द्वितीयोऽष्टकः समाप्तः ॥

नदियाँ अग्नि का पालन करती हैं। त्वष्टा के पुत्र, अजर महान् तथा सम्पूर्ण जगत् को धारण करने की इच्छा करते है। युवा पुरुष के पत्नी के निकट जाने समान जल के निकट प्रदीप्त हुये अग्नि आकाश और पृथिवी में व्याप्त होते ॥४॥ कामनाओं के वर्षक अहिंसक अग्नि के आश्रय में उत्पन्न सुख को जानने वाले उपासक उनके आदेश मे उपस्थित रहते हैं। जिन स्तोताओं की स्तुति रूप वाणी उल्लेख योग्य होती है, वे आकाश को प्रकाशित करने वाले सुशोभित हुए स्वयं भी प्रकाशमान होते हैं ।५। (१)

उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम् ।
उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोरनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ॥६
अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥७
दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥८
वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वीर्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।
देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान्महो देवान् रोदसी एह वक्षि ॥९
पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः ।
उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य ॥१०
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११॥

दिव्य होता स्वरूप दो अग्नियो को मै सजाता हूँ। सप्त होता, सोम कि पर प्रसन्न होते हैं। वे होता स्तुति करते हुए यज्ञ की रक्षा करते हुए को ही सत्य बतलाते है। ।८। देवाह्वानकर्ता एवं प्रकाशमान अग्नि महान अभीष्टवर्धक है। हे अग्ने ! तुम्हारी आज्ञाकारिणी ज्वालायें विस्तृत होती सर्वत्र व्यापती हैं तथा वृषभ तुल्य प्रभाव वाली होती है। तुम हर्ष युक्त ज्ञानवान् हो। हमारे यज्ञ कर्म मे देवताओ और आकाश पृथिवी के बुलाने ब हो।९। सदा गतिमान् अग्नि के लिये जिस उषाकाल मे हवि देते हुए किया जाता है, वह उषा काल शुभोभित स्तुति रूप वाणी तथा ऋषियो अ मनुष्यों के श्रेष्ठ शब्दो से सुसज्जित है, वह उषा काल धनैश्वर्य से युक्त हो प्रकाशित होता । हे अग्नेय ! तुम अपनी महती कृपा द्वारा यजमान द्वारा कर्म का नाश करने मे समर्थ हो।१०। हे अग्ने ! स्तुति करने वाले को विवि कर्म की हेतु और गवादि धनयुक्त भूमि दो। हमें वंश बढ़ाने वाला, सतानोत्पा दन मे समर्थ पुत्र दो। तुम्हारा यही अनुग्रह हम चाहते है।११। (३)

८ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्र. । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्ति ।)

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥१
समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद् ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम् ।
आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२
उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन्पृथिव्या अधि ।
सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥३
युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥४
जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः ।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र [illegible] ॥५॥१३

हे यूपो ! देवताओं की कामना करने वाले, कर्मों के पालक अध्वर्यु गण तुम्हें गड्ढे में फेंकते हैं । हे वनस्पते ! तुम कुठार से काटे गये हो । तुम उत्कृष्ट काष्ठ वाले हो । हमको सन्तानयुक्त श्रेष्ठ धन प्रदान करो ॥ ६ ॥ जो कुठार से काटे जाकर ऋत्विजों द्वारा गड्ढे में डाल दिए जाते हैं तथा जो यज्ञ का साधन करने वाले हैं, वे यूप हमारी हवियों को देवताओं के समीप पहुँचावें ॥ ७ ॥ आदित्यगण, रुद्र, वसु भले प्रकार सत्कृत होकर सूर्य मण्डल, पृथ्वी और अन्तरिक्ष तीनों स्थानों में व्याप्त हों और यज्ञ का पालन करें । वे ही यज्ञ की ध्वजारूप को बढ़ावें ॥ ८ ॥ सुन्दर त्वचा से ढके हुए, हंस के समान श्वेत खण्डयुक्त यूप हमको प्राप्त हों । विद्वान् अध्वर्युओं के द्वारा के पूर्व की ओर उठे हुए उज्ज्वल यूप देवताओं के मार्ग पर जाते हैं ॥ ९ ॥ काँटे आदि हटाने के पश्चात् सुन्दर हुए यूप पृथिवी पर उत्तम सींग वाले पशुओं के सींगों की भाँति लगते हैं । यज्ञ में ऋत्विजों के स्तोत्र श्रवण करने वाले यूप, युद्ध में हमारे रक्षक बनें ॥ १० ॥ हे वनस्पते ! तुम मूल से पृथक् हुए, तीक्ष्ण धार वाले कुठार ने तुम्हें अत्यन्त भाग्यवान् बनाया । तुम सहस्र शाखाओं से युक्त हुए उत्तम प्रकार से उत्पन्न होओ । हम भी सहस्र शाखा वाले होते हुए उत्तम प्रकार से ॥ ११ ॥

९ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्र । देवता—अग्नि । छन्द—बृहती पंक्तिः)

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥१
कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद्दूरे सन्निहाभवः ॥२
अति तृष्टं ववक्षिथाथैव सुमना असि ।
प्रप्रान्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि श्रितः ॥३
ईयिवांसमति स्रिधः शश्वतीरति सश्चतः ।
अन्वीमविन्दन्निचिरासो अद्रुहोऽप्सु

समृवासमिव त्मनाग्निमित्था तिरोहितम् ।
ऐनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ॥५॥

हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ ऐश्वर्य वाले, अविनाशी, प्रकाशमान, उपद्रव-रहित विश्व को प्राप्त होने वाले हो। हम मनुष्य तुम्हारे मित्र के समान हैं। हम तुमको अपने रक्षक रूप से वरण करते है ॥ १ ॥ अग्ने ! तुम सब जङ्गलो के रक्षक हो। तुम अपने आश्रयभूत जलो में वास कर शान्त होओ। तुम अपने शान्त भाव से जब ऊब जाते हो, तब दूर रहते हुए भी हमारे कोष्ठ मे प्रकट होते हो ॥२॥ हे अग्ने ! स्तुति करने वाले की कामना की पूर्ति का तुम विशेष रूप से विचार करते हो। तुम सदा तृप्त रहते हो। तुम्हारे मित्रभाव को प्राप्त करने वाले सोहल ऋत्विज हविदान करते हैं और तुम्हारे चारों ओर बैठते हैं ॥३॥ गुफा मे रहने वाले, शत्रु और उनकी सेनाओं को पराजित करने वाले अग्नि को, द्वेष-शून्य विश्वेदेवताओं ने प्राप्त किया ॥४॥ स्वेच्छाचारी पुत्र को पिता अपनी ओर आकर्षित करता है, वैसे ही स्वेच्छापूर्वक रमे हुए अग्नि को मथ कर मातरिश्वा देवताओं के लिए ले आए ॥५॥ (५)

तं त्वा मर्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन ।
विश्वान्यद्यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठय ॥६
तद्भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति ।
त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपिशर्वरे ॥७
आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम् ।
आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ॥८
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥६॥६

मनुष्यों के हित साधक, सतत युवा अग्नि देव ! तुम अपनी महत्ता से यज्ञ की रक्षा करते हो। तुम हवि वहन करने वाले को मनुष्यों ने देवताओं के निमित्त वरण किया ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! सायंकाल में

प्रदीप्त होने पर सब पशु तुम्हारे आश्रय में बैठते हैं। तुम्हारा धूम्र स्वर्ग के समान सूर्य को भी अभीष्ट देकर तृप्त करता है ॥७॥ उन काष्ठादि में प्रथम कर्म वाले तथा पवित्र प्रकाश वाले अग्नि का यजन करो। इन प्राचीन, सर्व व्याप्त, दूत रूप स्तुत्य अग्नि का यजन करो ॥८॥ उन अग्नि को तीन सौ उनतालीस देवताओं ने पूजा, घृत से उन्हें सींचा है और उनके कुश बिछाये हैं। फिर उन्होंने अग्नि को होता रूप में वरण कर कुश पर प्रतिष्ठित किया है ॥९॥

१० सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्र। देवता—अग्नि। छन्द—उष्णिक् गायत्री)

त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम्।
देव मर्तास इन्धते समध्वरे।

त्वा यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीलते।
गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे।

स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे।
सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति।

स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरा गमत्!
अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते।

प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत्।
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे।

हे प्रजास्वामी अग्निदेव! तुम प्रकाशमान हो। तुम्हें मेधावी चैतन्य करते है।। १ ॥ हे अग्नि! तुम होता हो। तुम्ही ऋत्विक् हो। अध्वर्युगण यज्ञ मे तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम यज्ञ गृह में प्रकाशित होकर यज्ञ की रक्षा करो॥ २ ॥ हे अग्ने! तुम जन्म से ही मेधावी हो। जो यजमान तुमको हवि देते है, वे उत्तम वीर्यवान् पुत्र प्राप्त करते हुए पुत्र एवं ऐश्वर्य द्वारा समृद्ध होते है ॥ ३ ॥ यज्ञ को प्रकाशित करने वाले अग्निदेव सात होताओ द्वारा घृत से सींचे जाते है। वे देवताओ के साथ यजमान के पास आवें ॥ ४ ॥ हे ऋत्विजो! मनुष्यो मे बुद्धि रूप तेज व्याप्त

रने वाले, जगत् के रचयिता देवताओं के आह्वानकर्ता अग्नि के लिये पुरातन
ौर महान् स्तोत्रों का सम्पादन करो ॥५॥ (७)

अग्नि वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्य ।
महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ।६।
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान्देवयते यज ।
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ।७।
स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम् ।
भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ।८।
तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ।९।८।

अग्निदेव अन्न और धन के लिये दर्शन करने योग्य है जिस वाणी से उनकी प्रशंसा होती है हमारी वही वाणी स्तुति रूप में उस अग्नि को बढ़ावे ।६। अग्ने ! यज्ञकर्त्ताओं में तुम सर्वश्रेष्ठ हो । यजमानों के निमित्त यज्ञ में देवताओं के प्रति यजन करो । तुम यजमानों को सुख देने वाले रूप हो शत्रुओं को पराजित कर सुशोभित होते हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम पवित्र हो । हमको अत्यन्त शोभायमान दमकता हुआ ऐश्वर्य प्रदान करके स्तुति करने वालों का मङ्गल करने के लिए उन्हें प्राप्त होओ ।८। हे अग्ने ! तुम हविवाहक हो । अविनाशी हो । मन्थन रूप बल से बढ़े हुए हो । अत्यन्त विद्वान् स्तुतिकर्त्ता तुमको भले प्रकार चैतन्य करते है ।९। [८]

११ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्र । देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री)

अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ।१।
स हव्यवाळमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ।२।
अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः । अर्थं ह्यस्य तरणि ।३।

अग्नि सूनुं सनश्रु तं सहसो जातवेदसम् । वह्निं देवा अकृण्वत ।
अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुपीणाम् ।

तूर्णी रथः सदा नवः ॥

अग्नि यज्ञ के होता, पुरोहित और विशेष द्रष्टा हैं। वे यज्ञकर्म के ज्ञाता हैं ॥१॥ वे हविवहन करने वाले, अविनाशी देवताओ के दूत, अन्न हवियो की कामना वाले अग्निदेव अत्यन्त मेधावी है ॥ २ ॥ यज्ञ मे कर्ता पुरातन अग्नि अपनी बुद्धि के बल से सब कर्मों के ज्ञाता हैं। इनका तेज को नष्ट करने में समर्थ है ॥ ३ ॥ प्राचीन रूप मे प्रसिद्ध, जन्म से ही बल के पुत्र उन अग्निदेव को देवताओं ने हवि वहन करने वाला बनाया। मनुष्यो के नायक शीघ्रता से कार्य करने वाले, रथ के समान और सतत अग्नि की हिंसा करने में कोई समर्थ नही है ॥४॥

साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥
अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः क्षयं पावकशोचिषः ॥
परि विश्वानि सुधिताग्नेरश्याम मन्मभिः । विप्रासो जातवेदसः ॥
अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे । त्वे देवास एरिरे ॥९॥

शत्रु की समस्त सेना को जीत लेने वाले, शत्रुओं द्वारा अधर्षणीय तथा देवताओं को पुष्ट करने वाले अग्निदेव अन्न राशियो से युक्त है ॥६॥ हवि देने वाला मनुष्य, हवि वहन करने वाले, अग्नि से समस्त अन्नो को पाता है। वह पवित्र करने वाले प्रकाशमान अग्नि यजमान को सुन्दर निवास स्थान प्राप्त कराते है ॥७॥ स्वयम् विद्वान अग्निदेव की स्तुति करते हुए हम सम्पूर्ण इच्छित धनों को प्राप्त करने वाले हो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! हम समस्त इच्छित धनो को प्राप्त करें, समस्त देवगण तुममें ही बसे हुये है ॥९॥

(१०)

१२ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्र । देवता इन्द्राग्नि । छन्द गायत्री)

इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥१
इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अया पातमिमं सुतम् ॥२
इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥३
तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥४
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥५॥११

हे इन्द्राग्ने ! स्तोत्रों द्वारा बुलाये जाकर तुम दिव्य, वरण करने योग्य सोम के निमित्त यहाँ आओ । हमारी साधना से प्रसन्न हुए इस सोम-रस का पान करो ॥१॥ हे इन्द्राग्ने ! स्तुति करने वाले की सहायता करने वाला यज्ञ का साधनभूत इन्द्रियों को पुष्ट करने वाला सोम प्रस्तुत है । इस निचोड़े हुए सोम-रस का पान करो ॥२॥ यज्ञ का साधन करने वाले सोम के द्वारा प्रेरणा प्राप्त कर स्तुति करने वालों को सुखी बनाने वाले इन्द्र और अग्नि का मैं पूजन करता हूँ । वे दोनों इस यज्ञ में सोम-रस पीकर तृप्ति को प्राप्त करें ॥३॥ शत्रु का नाश करने वाले, वृत्र-संहारक, विजयशील, किसी के द्वारा न जीते जाने वाले और बहुत सा अन्न देने वाले इन्द्राग्नि का आह्वान करता हूँ ॥४॥ हे इन्द्र, अग्ने ! स्तोतागण मन्त्र द्वारा तुम्हें पूजते हैं । स्तोत्रों के ज्ञाता मेधावी जन तुम्हारा पूजन करते हैं । अन्न प्राप्ति के लिये मैं भी तुम्हारा पूजन करता हूँ ॥५॥ (११)

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥६
इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या अनु ॥७
इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ॥८
इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥९॥१२

हे इन्द्राग्ने ! तुमने प्रथम चेष्टा से ही असुरों के नब्बे नगरों को एक साथ कम्पा दिया ॥६॥ हे इन्द्राग्ने ! स्तुति करने वाले विद्वान यज्ञ मार्ग पर चलते हुए हमारे कर्मों को विस्तृत करते हैं ॥७॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम दोनों का बल और अन्न प्रसिद्ध ही है वर्षा को प्रेरित करने वाला कार्य तुम्हीं दोनों में स्थित है ॥८॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम दिव्य लोक को सुशोभित करते हो। युद्ध में होने विजय तुम्हारी ही सामर्थ्य का परिणाम है ॥९॥ (१२)

१३ सूक्त

(ऋषि—प्रथमो वैतरामिर. । देवता—अग्नि । छन्द उष्णिक्, अनुष्टुप्)

प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै ।
गमद्देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ॥१॥
ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः ।
हविष्मन्तस्तमीलते तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥२॥
स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः ।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥३॥
स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा ।
यतोः नः प्रुष्णवद्वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥४॥
दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभि. ।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥५॥
उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।
शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥६॥
नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमद्वसु ।
द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥७॥२३॥

अध्वर्युओ ! अग्निदेव के लिये स्तुति करो । वह अग्नि देवताओं के सहित यहाँ पधारें । यजन करने वालों में सर्वोपरि अग्निदेव कुश के

पर विराजमान हो ।। ।। आकाश पृथिवी जिनके वश में है, देवगण जिनकी शक्ति की सेवा करते है उन अग्नि का व्रत निरर्थक नहीं होता मेधावी अग्निदेव यजमानों को प्रेरणा देने वाले है। वे पुन पुन यह कार्य करते है। वे सबको बार-म्बार कर्मों मे लगाते है। व मनुष्यो को उन कर्मों का फल देते है। वे धन देने वाले है। उन अग्निदेव की सेवा करनी चाहिए ।।३।। वे अग्निदेव हमारे भोगने योग्य श्रेष्ठ धन और घर दे। आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष का महान् धन अग्नि मे निहित है वह हमको प्राप्त होता है ।। ४ ।। स्तुति करने वाले मेधावी जन प्रकाशित, नवीन, देवताओ को बुलाने वाले, प्रजाओ का पालन करने वाले अग्निदेव को मनोरम स्तोत्रो द्वारा प्रदीप्त करते है।। ५ ।। हे अग्ने ! स्तुति के समय हमारे रक्षक होओ। तुम सहस्र सख्यक धन देने वाले हो। मरुद्गण तुम्हे बढ़ाते है। तुम हमारे सुख को बढाओ ।। ६ ।। हे अग्निदेव ! तुम हमको पुत्र सहित, पालन करने योग्य, यश देने वाला सर्वकार्य मे समर्थ, क्षय न होने वाला बहुत-सा अथवा सहस्र सख्या वाला धन प्रदान करो ।।७।। (१३)

१४ सूक्त

(ऋषि—ऋषभो वैश्वामित्र । देवता—अग्नि । छन्द – त्रिष्टुप्, पंक्ति)

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात्सत्यो यज्वा कवितम स वेधाः ।
विद्युद्रथ सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केश. पृथिव्या पाजो अश्रेत् ।।१।।

अ यामि ते नमउक्ति जुषस्व ऋतावस्तुभ्य चेतते सहस्व. ।
विद्वा आ वक्षि विदुषो नि षत्सि मध्य आ वर्हिरूतये यजत्र ।।२।।

द्रवता त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।
यत्सीमजन्ति पूर्व्यं हविर्भिरा वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ।।३।।

मित्रश्च तुभ्य वरुण: सहस्वोऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन् ।
यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन्त्सूर्यो नृन् ।।४।।

वय ते अद्यररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।

१५ सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि—उत्कील कात्य । देवता—अग्नि । छन्द-त्रिष्टुप् पंक्ति)

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवा ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥१
त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपा ।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात ॥२
त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ॥३
अषाल्हो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वाः सौभगा सञ्जिगीवान् ।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते ॥४
अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि देवाँ अच्छा दीद्यानः सुमेधाः ।
रथो न सस्निरभि वक्षि वाजमग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके ।५
प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजानग्ने त्वं रोदसी नः सुदोघे ।
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परिष्ठात् ॥६
इलामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥७।१५

हे अग्ने ! विस्तृत तेज वाले तुम अत्यन्त प्रकाशित हो । तुम वैरि ो और दुष्ट राक्षसों का नाश करो । हम सर्वश्रेष्ठ महान्, सुख देने वाले और श्रेष्ठ आह्वान से युक्त हो । मैं तुम्हारे आश्रय को प्राप्त करने का इच्छुक हूँ ॥१॥ हे अग्ने ! तुम ऊषा के प्रकट होने के पश्चात् सर्वोदय काल में हमारी रक्षा के लिये प्रज्वलित होओ ! तुम स्वयं प्रकट होने वाले हो। पिता के पुत्र को प्राप्त करने के समान, तुम भी हमारी स्तुति को प्राप्त करो॥ २ ॥ हे अग्निदेव ! तुम इच्छितवर्षी हो। मनुष्यों को देखने वाले हो । तुम अन्धकार युक्त रात्रि में अधिक प्रकाशित होते हो। तुम्हारी लपटें बहुत हैं। तुम पितृ-रूप से हमको कर्मों का फल दो । हमारे पाप दूर करते हुये

..न को इच्छा वाले बनाओ ..।। हे अग्ने ! तुम्हें शत्रु हरा नहीं सकते। अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो। तुम शत्रुओं के नगरों को धन सहित जीत प्रकाशित होते हो। तुम जन्म से ही मेधावी, महान् और शरण देने वाले हमारे यज्ञ के सम्पादन करने वाले बनो ॥४॥ हे अग्ने ! तुम संसार को निर प्रधाना बनाते हो। तुम उत्तम बुद्धि वाले और प्रकाशमान हो। देवताओं के निमित्त तुम हमारे यज्ञ कर्मों को निर्दोष बनाओ तुम रथ के समान यहां एक देवताओं के लिये हमारी हवियां पहुँचाओ। आकाश और पृथिवी को हमारे यज्ञ ..ा व्याप्त करो ॥५॥ हे अग्ने ! तुम अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो हमको बढ़ाओ। हमको अन्न दो। उत्तम प्रकाश द्वारा शोभायमान तुम देवताओं के साथ मिलकर आकाश पृथिवी को अन्न दोहन के उपयुक्त करो। कुबुद्धि कभी भी ..मारे निकट न आवे ॥६॥ अग्ने ! तुम अनेक कर्मों के कारणभूत धन देने वाली ..पचो स्तुति करने वाले को दो। वंश को बढ़ाने वाला, सन्तानोत्पादन में समर्थ हमको मिले। तुम्हारी यह कृपा हम पर होनी चाहिये ॥७॥ (१५)

१६ सूक्त

(ऋषि—उत्कील. कात्य। देवता—अग्नि। छन्द—अनुष्टुप्, पंक्ति)

..ग्नि. सुवीर्यस्येशे मह. सौभगस्य।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥१॥

इम नरो मरुत सश्चता वृध यस्मिन्राय शेवृधासः।
अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुमादभुः ॥२॥

स त्वं नो राय. शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य।
तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोऽनमीवस्य शुष्मिणः ॥३॥

..चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिश्चक्रिर्देवेष्वा दुवः।
आ देवेषु यतत आ सुवीर्य आ शस उत नृणाम् ॥४॥

.. नो अग्नेऽमतये मा वीरनायै रीरधः।
मा गोतायै सहसस्पुत्र मा निदेऽप द्वेषांस्या कृधि ॥५॥

समिध अग्ने मुनग प्रजावनोऽग्ने वृहतो अध्वरे ।
न गाया भूमा मूज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता ।।६।।

हे अग्ने ! तुम महान् सामर्थ्य से युक्त, श्रेष्ठ सौभाग्य के अधिपति गवादि धनो मे सम्पन्न, सन्तानयुक्त ऐश्वर्यों के स्वामी तथा वृत्र वध करने वालो के नायक हो ।।१।। हे मरुद्गण ! तुम नायक रूप से सौभाग्य को बढाने वाले अग्निदेव से युक्त होओ । यह अग्नि सुख बढाने वाले धन से युक्त है । जिस सग्राम मे सेनाये युद्ध करती है, उसमे मरुद्गण शत्रुओं को हराते है । वे शत्रुओ के संहारक हैं ।।२।। हे अग्निदेव ! तुम अत्यन्त धन वाले तथा अभीष्टो की वर्षा करने वाले हो । हमको सन्तान वाला, आरोग्यतादायक, शक्ति और सामर्थ्य से युक्त धन देकर वृद्धि प्रदान करो ।।३।। वे अग्निदेव ससार के सभी कर्मों को पूर्ण करते हुए उनमे व्याप्त है । वे सभी भार को सहते हुये देवताओ को हवि पहुँचाते है । वे अग्नि स्तुति करने वालो से साक्षात् करते है । वे यज्ञानुष्ठान करने वालो की स्तुतियो के प्रति आते है । तथा युद्ध काल मे रणक्षेत्र मे पधारते है ।।४।। हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम हमको शत्रुओ से पीडित न होने देना, हम वीरो से शून्य न हो । पशुओ रहित एवं निन्दा भी न हो । तुम हमसे रुष्ट न होओ ।।५।। हे अग्ने ! तुम यज्ञ मे प्रकट हुए सन्तानवान् ऐश्वर्यों के स्वामी हो । हे वरणीय अग्निदेव ! तुम अत्यन्त वैभववान् हमको सुख देने वाला, यज्ञ बढाने वाला धन प्रदान करो ।।६।। (१६)

१७ सूक्त

(ऋषि—कतो वैश्वामित्र । देवता-अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः ।
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक्पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ।।१।।
यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ।
एवानेन हविषा यक्षि देवान्मनुष्वद्यज्ञं प्र तिरेममद्य ।।२।।
त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।

ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥३
अग्नि सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेड्यं जातवेदः ।
त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥४
यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुः ।
तस्यानु धर्म प्रयजा चिकित्वोऽथा नो धा अध्वरं देववीतौ ॥५॥१७

हे अग्निदेव ! धर्म को धारण करने वाले, ज्वाला रूप केश वाले, प्रदीप्त पवित्र और सत्कर्मों के कर्ता है । वे यज्ञ के आरम्भ काल मे प्रज्वलित होकर बढ़ते हुए देव यज्ञ को घृतादि युक्त हवियो से सींचते हैं ॥१॥ हे अग्ने तुम जन्म से ही मेधावी और सर्वज्ञ हो । तुमने जैसे पृथिवी और आकाश को हवियाँ दी थी वैसे ही हमारी हवियो को देते हुए देवताओ का यजन करो हमारे यज्ञ को मनु के समान ही सम्पन्न करो ॥२॥ हे जन्म से बुद्धिमान् अग्निदेव ! तुम्हारा अन्न आज्य, औषधि और सोम रूप तीन रूपों वाला है । एकाह, आहीन और समस्त रूप तीन उषा देवताएँ तुम्हारी मातृ रूप हैं । हे मेधावी ! तुम उनके सहित देवताओ को हविया देते हो । तुम यजमान को सुख और कल्याण प्राप्त कराने मे समर्थ होओ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम स्वयं दीप्तिमान्, मेधावी, उत्तम दर्शन वाले, स्तुत्य हो । हम तुमको नमस्कार करते हैं । देवताओ ने तुम्हें मोह रहित और हवि पहुचाने वाले दौत्य कर्म मे नियुक्त किया है । तुम अमृत के नाभि रूप हो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ? जो यज्ञकर्ता होता मध्यम और उत्तम स्थानों पर स्वधायुक्त बैठे हुये सुखी हैं, तुम उनके कर्तव्य को देखते हुये यज्ञ करो । फिर देवताओ को प्रसन्न करने के लिए हमारे इस यज्ञ को धारण करो ॥५॥ (१७)

१८ सूक्त

(ऋषि–कतो वैश्वामित्रः देवता–अग्नि । छन्द त्रिष्टुप्)

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥१
तपोष्वग्ने अन्तरा अमित्रान् तपा शसमररुषः परस्य ।

तरो वमो विकिशानो अचित्तान्ति ते तिष्ठन्तामजरा अयास. ॥२
इध्मेनाग्ने इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्य तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमा धिय शतसेयाय दवीम् ॥३
उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो वृहद्वय. शशमानेषु धेहि ।
रेवदग्ने विश्वामित्रपु शं योर्ममृ॑ज्मा ते तन्व भूरि कृत्व ॥४
कृधि रत्न सुनितर्धनाना स घेदग्ने भवसि सत्समिद्धः ।
स्तोतुदरोण सुभगस्य रेवत्सृप्रा करस्ना दधिषे वपू पि ॥५॥१८

हे अग्ने ! मित्र अथवा माता पिता के समान हितैषी बनो। हमसे प्रसन्न होओ। जो हम मनुष्यो के शत्रु अन्य विरुद्ध आचरण करने वाले मनुष्य हैं उनको भस्म कर डालो ॥१॥ हे अग्ने ! शत्रुओ के मार्ग मे बाधक बनो। जो दुष्ट हवि नही देते उनके अभीष्ट व्यर्थ हो। तुम उत्तम निवास-स्थान देने वाले, एव सर्वज्ञाता हो, *जिनका मन चलायमान हो उन मनुष्यो को दुख दो।* उनके लिये तुम्हारी जरा रहित किरणें बाधक बनें ॥२॥ हे अग्ने ! मैं धन की इच्छा से तुम वेगवान् और शक्तिशाली को समिधा और घृत युक्त हवि देता हूँ। मैं तुम्हारी स्तुति करके जब तक प्राणवान् रहूँ, तब तक मुझे धन देते रहो। धन देने के लिये मेरी स्तुति को प्रकाशमान बनाओ ॥३॥ हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम अपने तेज से प्रदीप्त होओ। तुम विश्वामित्र के वंशजों द्वारा स्तुति किये जाकर उन्हें धन सम्पन्न बनाओ। अन्न देते हुए आरोग्यता और निर्भयता भी दो। तुम कर्म करने वाले हो, हम साधक बारम्बार तुम्हारी साधना करेंगे ॥४॥ हे अग्निदेव ! तुम सब धनों के दाता हो, हमको धनो मे जो श्रेष्ठ धन है, वह प्रदान करो। जब तुम समिधाओ से युक्त होओ, तभी हमको प्रवृद्ध धन दो। तुम अपनी प्रकाशमान बाहुओं को स्तुति करने वाले के घर की ओर धन दान के निमित्त फैलाओ ॥५॥

१६ सूक्त

(ऋषि—तुविकपुत्रो गाथी। देवता—अग्नि। छन्द त्रिष्टुप्, पंक्ति)

अग्नि होतार प्र वृणे मियेधे गृत्स कवि विश्वविदममूरम्।
स नो यक्षद्देवताता यजीयान्राये वाजाय वनते मघानि।१।
प्र ते अग्ने हविष्मतीतियर्म्यच्छा सुद्युम्नां रातिनी घृताचीम्।
प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः स रातिभिर्वसभिर्यज्ञमश्रेत।२।
स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षो।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभतो भूयाम ते सष्टुतयश्च वस्वः।३।
भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीकाग्ने देवस्य यज्यवो जनासः।
स आ वह देवताति यविष्ट शर्धो यदद्य दिव्य यजासि।४।
यत्त्वा होतारमनजन्मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः।
स त्व नो अग्नेविनेहबोध्यधि श्रवांसि धेहि नस्तनूपु।५।१६।

हे अग्निदेव! तुम देवताओं के स्तोता, सर्वज्ञ प्रज्ञावान् हो। हम यज्ञ में तुम्हें होता रूप से ग्रहण करते हैं। वे अग्नि यज्ञ कर्मो में लग कर ताओं का यजन करें। वे धन और अन्न देने की इच्छा करते हुए हमारी हवि स्वीकार करें।१। हे अग्ने! मैं हवियुक्त हवि देने का साधन, घृत से पूर्ण को तुम्हारे सम्मुख करता हूँ। वे देवताओं के सम्मान करने वाले अग्नि हमको देने योग्य धन के सहित यज्ञ में भाग लें।२। हे अग्ने! तुम्हारी रक्षा प्राप्त कर साधक का हृदय अत्यन्त बल प्राप्त करता है। उसे सन्तानयुक्त धन दो। तुम फल देने की इच्छा वाले एवं महान् धन प्रदान करते हो, हम तुम्हारी महती रक्षा से निर्भय होते हुये-तुम्हारी स्तुति करें और धन के स्वामी बनेंगे। ३। हे अग्ने! तुम प्रकाशमान हो। यज्ञ करने वाले ने तुम्हें प्रदीप्त किया है। तुम यज्ञ में दिव्य तेज की साधना करने वाले हो, अतः देवताओं को आहूत करो।४। हे अग्ने! यज्ञ में विराजमान मेधावी ऋत्विग्गण तुम्हें होता कहते हैं। तुम हमारी रक्षा के निमित्त होओ। हमारे करो।५।

॥ प्रथम खण्ड समाप्त ॥

वेद, उपनिषद्, दर्शन, स्मृतियां, पुराण,
यंत्र, मंत्र, तंत्र, कर्मकाण्ड, स्वास्थ्य,
व्यायाम, योग, वेदान्त, ज्योतिष,
आयुर्वेद, होमियोपैथिक,
व
प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी
श्रेष्ठतम साहित्य
का

सूची पत्र

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान,
ख्वाजा कुतुब, वेद नगर,
बरेली—२४३००१

वेद

१—ऋग्वेद ४ खण्ड सम्पूर्ण	(भा० टी०)	... ... ३६)
२—अथर्व वेद २ खण्ड-सम्पूर्ण	(भा० टी०)	... ... १८)
३—यजुर्वेद-सम्पूर्ण	(भा० टी०)	... ... ६)
४—सामवेद-सम्पूर्ण	(भा० टी०)	... ... ८)
५—वेद महाविज्ञान		... ... १२)
६—वेद में अध्यात्म विद्या		... ... ६)५०
७—शत्पथ ब्राह्मण	(भा० टी०)	... ... १२)

उपनिषद्

८—१०८ उपनिषद् ३ खण्ड	(भा० टी०)	... ... ३०)
९—उपनिषद् रहस्य		... ... ६)५०
१०—वृहदारण्यकोपनिषद्	(भा० टी०)	... ... ४)
११—छान्दोग्योपनिषद्	(भा० टी०)	... ... ४)५०

गीता

१२—गीता विश्वकोश २ खण्ड		... ... १२)
१३—ज्ञानेश्वरी भगवद्गीता	(भा० टी०)	... ... १०)

दर्शन

१४—वैशेषिक दर्शन	(भा० टी०)	... ... ६)२५
१५—न्याय दर्शन	(भा० टी०)	... ... ५)७५
१६—सांख्य दर्शन	(भा० टी०)	... ... ५)७५
१७—योग दर्शन	(भा० टी०)	... [illegible])७५
१८—वेदान्त दर्शन	(भा० टी०)	...
१९—मीमांसा दर्शन	(भा० टी०)	...

पुराण

कथा, इतिहास

वेद

१—ऋग्वेद ४ खण्ड सम्पूर्ण (भा० टी०) ... ... ३६)
२—अथर्व वेद २ खण्ड-सम्पूर्ण (भा० टी०) ... ... १८)
३—यजुर्वेद-सम्पूर्ण (भा० टी०) ... ... ६)
४—सामवेद-सम्पूर्ण (भा० टी०) ... ... ८)
५—वेद महाविज्ञान ... ... १२)
६—वेद में अध्यात्म विद्या ... ... ६)५
७—शतपथ ब्राह्मण (भा० टी०) ... ... १२)

उपनिषद्

८—१०८ उपनिषद् ३ खण्ड (भा० टी०) ... ... ३०)
९—उपनिषद् रहस्य ... ... ६)५०
१०—बृहदारण्यकोपनिषद् (भा० टी०) ... ... ४)
११—छान्दोग्योपनिषद् (भा० टी०) ... ... ४)५०

गीता

१२—गीता विश्वकोश २ खण्ड ... ... १२)
१३—ज्ञानेश्वरी भगवद्गीता (भा० टी०) ... १०)

दर्शन

१४—वैशेषिक दर्शन (भा० ...
१५—न्याय दर्शन (भा
१६—सांख्य दर्शन (भा
१७—योग दर्शन (
१८—वेदान्त दर्शन (
१९—मीमांसा दर्शन

७१—मानस मन्त्र सिद्धि ... ... ४)
७२—कृष्ण नाम सिद्धि ... ... ४)
७३—शाबर मन्त्र सिद्धि ... ... ३)५०
७४—लक्ष्मी सिद्धि (भा० टी०) ... ... ८)७५
७५—गणेश सिद्धि ... ... ६)
७६—हनुमत् सिद्धि ... ... ६)५०
७७—बगलामुखी सिद्धि ... ... ५)७५
७८—काली सिद्धि ... ... ४)५०
७९—महामृत्युञ्जय साधना (भा० टी०) ... ... २)२५

तन्त्र साहित्य

८०—तन्त्र महाविज्ञान २ खण्ड (प्रेस में) ... ... २२)
८१—तन्त्र विज्ञान ... ... ६)
८२—तन्त्र रहस्य ... ... ६)
८३—तन्त्र महाविद्या ... ... ६)
८४—तन्त्र महासिद्धि ... ... ६)
८५—तन्त्र महासाधना (भा० टी०) ... ... १०)
८६—शारदा तिलक (भा० टी०) ... ... १०)
८७—यन्त्र महासिद्धि ... ... ४)५०

गायत्री साहित्य

८८—गायत्री रहस्य ... ... ५)
८९—गायत्री महासाधना ... ... ६)
९०—गायत्री महाविद्या ... ... ४)
९१—गायत्री सिद्धि ... ... ५)७५
९२—गायत्री तन्त्र ... ... ५)७५
९३—गायत्री योग ... ... ६)
९४—गायत्री साधना के चमत्कार ... ... ३)
९५—गायत्री की उच्च साधनायें ... ... ४)
९६—गायत्री का मर्म चिन्तन ... ... ३)५०
९७—सरल गायत्री साधना ... ... ३)५०

धर्म शास्त्र

नीति शास्त्र

धर्म, अध्यात्म

मन्त्र साहित्य

तन्त्र साहित्य

गायत्री साहित्य

कर्म काण्ड

१२७—षोडश संस्कार पद्धति ... ... ८)
१२८—गृह्य सूत्र संग्रह (भा० टी०) ... ... १०)
१२९—नित्य कर्म विधि ... ... ४)५०
१३०—सन्ध्या विधि ... ...)५०

स्तोत्र

१३१—वृहत् स्तोत्र-रत्नाकर ... ... १०)५०
१३२—संकट नाशक स्तोत्र ... ... ५)
१३३—गोपाल सहस्रनाम ... ... १)२५
१३४—सुन्दर काण्ड (ग्लेज) ... ...)७५

योग साहित्य

१३५—योग चिकित्सा २ खण्ड ... ... १२)५०
१३६—योग और यौवन ... ... ६)
१३७—योग और पुरुषत्व ... ... ६)
१३८—योग और महिलायें ... ... ६)२५
१३९—योग के चमत्कार ... ... ४)५०
१४०—प्राणायाम के असाधारण प्रयोग ... ... ५)७५
१४१—योगासन से रोग निवारण ... ... ६)
१४२—सूर्य नमस्कार से रोग निवारण ... ... १)५०
१४३—अष्टांग योग सिद्धि ... ... ६)
१४४—अष्टांग योग रहस्य ... ... ६)
१४५—भारत के योगी ... ... ३)७५
१४६—योग साधना (भा० टी०) ... ... ६)७५
१४७—हठयोग प्रदीपिका (भा० टी०) ... ... ४)२५
१४८—घेरण्ड संहिता (भा० टी०) ... ... १)७५
१४९—शिव संहिता (भा० टी०) ... ... ३)२५
१५०—गोरक्ष संहिता (भा० टी०) ... ... ३)२५
१५१—श्री गोरख नाथ चरित्र ... ... १)
१५२—बृहद् शिव स्वरोदय (भा० टी०) ... ... १)५०

वेदान्त

स्वास्थ्य, चिकित्सा, व्यायाम

प्राकृतिक चिकित्सा

आयुर्वेद साहित्य

जीवनोपयोगी

राजनीति

संस्कृत साहित्य

होमियोपैथिक

ज्योतिष और सामुद्रिक

जीवनोपयोगी

राजनीति

संस्कृत साहित्य

डॉ० चमन लाल गौतम द्वारा रचित–सम्पादित ग्रन्थ

डॉ० चमन लाल गौतम द्वारा रचित-सम्पादित ग्रन्थ

ग्रन्थ		मूल्य
१—मंत्र महाविज्ञान ४ खण्ड	...	३४)
२—तंत्र महाविज्ञान २ खण्ड (प्रेस मे)	...	२२)
३—उपासना महाविज्ञान	...	९)
४—देव रहस्य	...	९)
५—शिव रहस्य २ खण्ड	...	११)५०
६—पूजा रहस्य	...	५)७५
७—श्रीमद् भागवत सप्ताह कथा (भाषा)	...	१४)
८—वैदिक मंत्र विद्या	...	८)
९—ओंकार सिद्धि	...	५)७५
१०—प्राणायाम के असाधारण प्रयोग	...	५)७५
११—योगासन से रोग निवारण	...	६)
१२—अष्टांग योग सिद्धि	...	६)
१३—अष्टांग योग रहस्य	...	६)
१४—तंत्र विज्ञान	...	६)
१५—तंत्र रहस्य	...	६)
१६—तंत्र महाविद्या	...	६)
१७—तंत्र महासिद्धि	...	६)
१८—गायत्री रहस्य	...	५)
१९—गायत्री महासाधना	...	६)
२०—गायत्री की उच्च साधनायें	...	४)
२१—महाभारत (भाषा)	...	८)
थ ब्राह्मण (भा० टी०)	...	१२)
ति (भा० टी०)	...	९)
चदशी पीताम्बरी (भा० टी०)	...	१०)
—ब्रह्मसूत्र (भा० टी०)	...	१०)
२६—लक्ष्मी सिद्धि (भा० टी०)	...	८)७५
२७—गणेश सिद्धि	...	९)